अमेरिकन सरकार की फैडरल सिक्युरिटी एजेंसी द्वारा प्रकाशित एक अंग्रेज़ी पुस्तक का अनुवाद

इस पुस्तक के चित्र तैयार करने में फैलोशिप स्कूल, बम्बई के प्रिंसिपल से जो सहायता प्राप्त हुई है प्रकाशक उसके आभारी हैं।

अनुवादक—मुनीश सक्सेना

मूल्य चार रुपये आठ आने

प्रकाशक—राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई।

मुद्रक—गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली।

सूची

६ से १२ वर्ष तक के बच्चे कैसे होते हैं



समझदार माता-पिता अपने बच्चों के बाल्यकाल के सुहाने दिनों की अपेक्षा उनके जीवन की उस अवस्था में, जब वे स्कूल जाने लगते हैं, ज्यादा दिलचस्पी रखते हैं। बच्चों के जीवन का यह काल वह होता है जब वे अपनी योग्यताओं और अपनी शक्तियों को आजमाते हैं, और उनमें आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का विकास होता है। इस अवस्था में बच्चों को अपने माता-पिता की देखभाल और उनकी तथा दूसरे परिवार वालों की सहायता की आवश्यकता भी रहती है और वे इस सहायता की आशा भी करते हैं, परन्तु वे दिन-प्रतिदिन अपनी समस्याओं को अधिकाधिक स्वयं हल करने लगते हैं। इस विचार से कि परिवार के प्रति उनके हृदय में जो लगाव है और परिवार वालों की वे जो सेवा करते हैं, उसकी लोग प्रशंसा करते हैं, उनको बहुत खुशी होती है।

बच्चे के जीवन के इस काल में जब कि उसका व्यक्तित्व दिन-प्रतिदिन अधिक जटिल होता जाता है, उसको समझना प्रायः असम्भव-सा हो जाता है। उसकी दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई स्वच्छन्दता और स्वयं सोचने और तर्क करने की बढ़ती हुई क्षमता पर कभी-कभी तो झुँझलाहट होने लगती है। जब हमारे बच्चे हमारी राय के बारे में शंकाएँ उठाने लगते हैं और अपने विचारों को बड़ी दृढ़ता से व्यक्त करते हैं तो हमारी बड़प्पन की भावना को ठेस-सी लगती है।

"मैं अपने लिए उतना ही बड़ा हूँ," उसने कहा, "जितना तुम अपने लिए हो।"

बच्चों की इस धारणा से बहुत से प्रौढ़ लोग चिढ़ते हैं। जब तक बच्चा बहुत छोटा रहता है और बहुत अबोध भी होता है तब तक [illegible] अपने बड़प्पन और अपनी शक्ति को निश्चिन्ततापूर्वक [illegible] छोटेपन और उसकी निस्सहायता की तुलना में [illegible] देने लगते हैं। जीवन को जब बच्चा अपने [illegible] सोचकर खुश होते हैं—'ओह, हम तो [illegible] लेकिन जब बच्चे बड़े हो जाते हैं और दूसरी तरह [illegible]

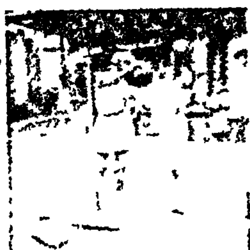
स्वयं सोचने लगते हैं और तर्क करने लगते हैं।

जब बच्चे स्कूल जाने लायक उम्र के हो जाते हैं तो हम उनको इतने ध्यान से नहीं देखते क्योंकि कई प्रकार से उनके विकास में छोटे बच्चों की अपेक्षा अनोखेपन की कमी हो जाती है; उनकी शारीरिक वृद्धि बहुत धीमी हो जाती है; उनका विकास इतनी खामोशी से होता है कि वह एक अनिवार्य-सी बात मालूम होती है। जिस समय बच्चा बोलना सीख रहा होता है उस समय उसकी हर बात अनोखी और आकर्षक मालूम होती है, लेकिन जब वह बाल्यावस्था के मध्य काल में पहुँचता है उस समय तक चीज़ों को समझने की और अपने-आपको व्यक्त करने की उसकी क्षमता इतनी बढ़ चुकी होती है कि जो-कुछ वह कहता है उसमें कोई महत्त्व नहीं मालूम होता; उसकी तर्क-शक्ति पहले से बहुत उन्नति कर चुकी होती है; वह अब इस प्रकार का तर्क नहीं देता कि मक्खन मक्खी से बनता है क्योंकि दोनों शब्दों की ध्वनि में समानता है; वह अब यह नहीं सोचता कि हवा को पेड़ चलाते हैं।

इस अवस्था में पहुँच जाने पर उसके स्वास्थ्य की ओर भी उतना ध्यान नहीं रखना पड़ता जितना पहले रखना पड़ता था। स्कूल जाने लायक उम्र के फौरन पहले वाले वर्षों को बच्चा ज्यों ही पार कर लेता है, उसके माता-पिता उसकी ओर से अपेक्षतः कम चिन्तित रहने लगते हैं और उसकी ओर कम ध्यान देने लगते हैं, क्योंकि बच्चे के जीवन के यही वर्ष होते हैं जब उसको बचपन के रोगों के लगने का सबसे अधिक खतरा रहता है। इसके बाद तो वह अधिकांश समय अपनी देखभाल स्वयं करने लगता है; जरा देर के लिए भी आँख से ओझल होने पर अब उसके माता-पिता पहले की तरह उसके लिए चिन्तित नहीं हो उठते।

बच्चे स्वयं सीखते हैं

सारांश यह कि इस उम्र में पहुँचकर बच्चा एक स्वयं-प्रेरित, स्वयं-संचालित और स्वयं-प्रेरित व्यक्ति बन जाता है। वह अब भी अपने माता-पिता से लगाव रखता है; दूसरों का उसकी ओर ध्यान देना, प्रेम और सहानुभूति, उसे अब भी अच्छी लगती है; परन्तु फिर भी वह अपनी मर्ज़ी के अनुसार चलने लगता है, अपने दोस्त ढूँढता है, अपनी रुचियों को प्रकट करता है, और तरह-तरह के नये कामों में हाथ डालता है—वह एक स्फूर्तिमय, योग्य, उत्सुक, मस्त जीव बन जाता है जिसकी हरकतें कभी-कभी तो बिलकुल पागल बना देती हैं। अपने चारों तरफ की चीज़ों में और जीवन में उसकी दिलचस्पी बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। जैसे-









शारीरिक विकास और कुशलताएँ : [illegible] दो पक्के दाँत होते हैं। स्कूल जाना आरम्भ करने से पहले वाले दिनों के 'छोटे हुए बच्चे' अब नहीं हैं। बहुत क्रिया-शील. स्थिर बैठना कठिन होता है; खाना खाते समय विशेष रूप से चुलबुलापन। खुद नहाना पसन्द करता है, केवल कानों की ओर गरदन तथा पीठ को कोई दूसरा साफ कर दे। अपने-आप कपड़े पहन सकता है, जूते की डोरी भी बाँध सकता है।

सामाजिक प्रगति : सामूहिक खेलों में बहुत मन लगता है पर समूह छोटे होते हैं। लड़के और लड़कियाँ साथ खेलते हैं। लड़के कुश्ती लड़ना, मुक्केबाजी करना आरम्भ कर देते हैं, बहुधा अपने गहरे दोस्तों से। अपना पुरुषत्व प्रमाणित करने की तीव्र इच्छा। पार्टियों में जाने का बहुत शौक होता है पर उनमें उनका व्यवहार ठीक नहीं होता. घर में 'अच्छा' व्यवहार और बाहर में 'बुरा' व्यवहार।

मानसिक विकास और काम : साधारणतया [illegible],५०० से अधिक शब्द प्रयोग करता है। कल्पनापूर्ण नाटकीय अभिनय में आनन्द लेता है; टेलिफोन पर खेलने के बाद बड़ी देर तक किसी कल्पित मनुष्य के साथ बातचीत करता है। समझता है कि रेडियो के नाटक के पात्र वास्तविक होते हैं। किस्से का वास्तविक महत्व समझता है। अब से लगभग १० वर्ष की आयु तक कहानियाँ, कविता और नाटकों में दिलचस्पी रहती है। परियों आदि का विश्वास कम होता जाता है।

जैसे वह दस बरस का होने लगेगा, उसकी दिलचस्पी अपने साथ के [illegible] लगेगी. लेकिन इस अवस्था में तो उसके विचार अपने [illegible] वस्तुगत संसार की ओर ही आकर्षित होते हैं।

तो क्या इसका अर्थ यह है कि सब बच्चे एक जैसे ही होते [illegible] नहीं। उनकी अपनी-अपनी विशेषताएँ उनके [illegible] और [illegible]

इतनी ही भिन्न और आश्चर्यजनक होती हैं जितनी कि उनकी सूरतें, परन्तु कुछ विचार, कुछ भावनाएँ, कुछ हरकतें और चीजों को देखने के कुछ ढंग ऐसे होते हैं जो उनके विकास की किसी-न-किसी अवस्था में हर बच्चे में पाए जाते हैं।

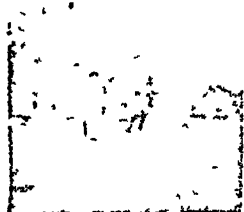
शारीरिक कुशलताएँ बड़ी तेज़ी से बढ़ती हैं

ज्यों ही बच्चे को अपने शरीर पर अच्छी तरह काबू हो जाता है, वह अपनी शक्ति को तरह-तरह के कौशल सीखने में और अपनी विभिन्न क्षमताओं को, जो अब तक केवल आंशिक रूप से ही पनप पाई थीं, विकसित करने में लगा सकता है।

उदाहरण के तौर पर ६ से १० वर्ष तक की लड़कियों को लँगड़ी खेलने में ज्यादा आनन्द आता है, क्योंकि इनमें स्नायुओं को ज्यादा कुशलतापूर्वक प्रयोग करना पड़ता है जबकि बचपन में वे केवल बड़े-बड़े स्नायुओं का ही प्रयोग करती थीं। रस्सी कूदने, या बाइसिकल पर या पहिएदार जूतों (स्केट) पर तरह-तरह के करतब दिखाने के लिए जिस कौशल और ठीक समय पर काम करने की क्षमता का परिचय देना पड़ता है और शरीर को जितना काबू में रखना पड़ता है वह ४ या ५ वर्ष की अवस्था में सम्भव नहीं हो सकता था। सीटी बजाना, कलाबाजी खाना, हथेली पर बाँस को खड़ा करके साधना, गेंद को नियमित गति से इस प्रकार उछालना कि उस विशेष शारीरिक क्रिया के अनुकूल वह ठीक समय पर फिर वापस आ जाय—ये सब ऐसे कौशल हैं जो ऐसे लड़कों और लड़कियों को अच्छे लगते हैं जिनको प्रतिदिन अपने स्नायुओं पर अधिक काबू होता जाता है। लिखना सीखने के लिए यह आवश्यक है कि हाथ और आँखें बहुत सधी हुई हों और उन दोनों में आपस में सहयोग हो। (वह दिन याद है जब आपको यह प्रयत्न करना पड़ता था कि 'ङ' कि दुम कहीं बहुत लम्बी न हो जाय या 'भ' कहीं 'म' न हो जाय?) चूँकि बाल्यावस्था का आखिरी भाग एक ऐसा काल होता है जब उँगलियों का प्रयोग करने की निपुणता बहुत बढ़ जाती है, इसलिए यदि इस अवस्था में बच्चे को बाजा बजाने या टाइप करने का अभ्यास आरम्भ करा दिया जाय तो आगे चलकर वह बहुत उन्नति कर सकता है।

ऐसे खेल, जिनमें शरीर की फुरती दिखाने का काम हो, खेलते हुए बच्चे कभी नहीं थकते। भागकर एक-दूसरे को पकड़ना, पेड़ पर चढ़ना, भिंकाई देकर भाग जाना—ये सब ऐसे खेल हैं जिनसे उनको अपार आनन्द मिलता है।









शारीरिक विकास और कुशलताएँ : साल-भर में ३ से ५ पौंड तक वजन बढ़ता है। ऊँचाई धीरे-धीरे, पर नियमित रूप से, बढ़ती है। नाखून चबाना, [illegible] सी-सी करना, इधर-उधर [illegible], [illegible] आदि 'घबराहट की आदतें' बहुत पाई जाती हैं। ६ वर्ष की अपेक्षा कम उद्दंड और उद्योगशील होता है।

सामाजिक प्रगति : सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकारों का कुछ-कुछ ज्ञान होता है। स्कूल में और खेल में प्रतियोगिता का आरम्भ हो जाता है। इस समय से अपने मित्रों की तरह कपड़े पहनने और उनके जैसा व्यवहार करने में दिलचस्पी बढ़ जाती है। मित्रों के चुनाव में उनकी सामाजिक या आर्थिक स्थिति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परिस्थितियों के आधार पर [illegible] की शिक्षा इस अवस्था में लाभदायक होती है। अपने और दूसरों के घरों के अन्तर का आभास होने लगता है।

मानसिक विकास और काम : जो [illegible] चाहता है उसके अनुसार अभी उसमें चीज़ें बनाने की क्षमता नहीं होती। १, २, ५ और १० के [illegible] होते हैं। [illegible] सकता है, [illegible] का भी ज्ञान होता है। इधर-उधर सन्देश ले जा सकता है, बाज़ार से चीज़ें खरीद कर ला सकता है। जो कुछ उससे कहा जाता है उसके बारे में [illegible]। पेट और बच्चे के जन्म के बारे में [illegible]।

झूले पर झूलना—यदि बाग में झूला पड़ा हो [illegible] किसी पेड़ से लटकती हुई किसी मज़बूत-सी बेल पर—[illegible] है कि वे मिट्टी के माधो नहीं बने रहेंगे। [illegible] आई, 'चोर-चोर'—[illegible] उत्साह हो, स्कूल जाने के शुरू-शुरू में [illegible]

क्योंकि उस समय उनकी प्रकृति बिलकुल 'जंगलियों' की-सी होती है।

प्रकृति का द्वार सबके लिए खुला है

गुफाएँ और पेड़ों पर रहने योग्य स्थान, नदियों के बाँध और तालाब, आग जिसमें मजे से आलू भूनकर खाए जायँ, चढ़ने के लिए पेड़ और नई जगहों की खोज में घूमने-फिरने के लिए दलदलें—प्रकृति की ये सारी चीजें शायद बच्चों के लिए ही बनाई गई थीं। इस अवस्था में पहुँचकर बच्चे की कल्पना बहुत तीव्र हो जाती है और वह अपने-आपको उन्हीं रूपों में देखने लगता है जिनके बारे में उसने पढ़ा है, या सुना है, या उसे बताया गया है; लड़के घर बनाने लगते हैं और लड़कियाँ उनमें गृहस्थी का काम-काज करने लगती हैं।

बच्चों को जानवर बहुत प्रिय हो जाते हैं। बच्चे जानते हैं कि

> "···कुत्ते के पिल्लों से खेलने के लिए यह जरूरी है कि पहले उसकी माँ को थपको और बिल्ली से खेलने के लिए पहले उसे पुचकारो।"

कोई भी बालक और उसका कुत्ता एक-दूसरे के साथ अदृश्य और अटूट बन्धनों से बँधे होते हैं। वे जिस प्यार से किसी घायल चिड़िया की या अपनी माता से बिछड़े हुए भेड़ के बच्चे की देखभाल करते हैं उससे अन्दाजा होता है कि हमारे बच्चे कितने संवेदनशील प्राणी होते हैं। शायद इसके बाद उनको यह जानने का इससे अच्छा अवसर न मिले कि

> "कछुआ अपनी पीठ कैसे सँभाले रहता है
> और कठफोड़वा अपने रहने के लिए पेड़ में खोह कैसे बनाता है
> और छछूँदर अपना बिल कैसे खोदता है।"

प्रकृति के जगत् में आनन्द प्राप्त करने के साथ ही बच्चे उसी उत्साह के साथ अपने हाथों से काम लेना भी शुरू करते हैं।

स्कूल जाने लायक उम्र के बच्चे अपने मन से और बड़े उत्साह के साथ तरह-तरह की चीजें बनाते हैं। गाड़ियाँ, पतंगें, हवाई जहाज और नाव आदि बनाने में बच्चे काफी निपुणता का प्रमाण देते हैं। इन कामों में उनको कितनी सफलता मिलती है यह इस पर निर्भर होता है कि विभिन्न अवस्थाओं में उनमें कितनी कुशलता होती है और कौन बच्चा अपने हाथों को कितनी निपुणता से प्रयोग कर सकता है। लड़कियाँ कागज की दर्जनों गुड़ियाँ और उनके लिए बीसियों जोड़े

शारीरिक विकास और कुशलताएँ : १० [illegible] [illegible] पक्के दाँत। ऐसे खेलों के प्रति [illegible] हुई रुचि [illegible] छोटे-छोटे स्नायुओं के परस्पर सहयोग की आवश्यकता होती है (चलती हुई चीज पर निशाना लगाना, [illegible] खेलना, एक हाथ से गेंद को फेंकना, आदि)। [illegible] की क्षमता धीरे-धीरे उन्नति कर रही है। यदि [illegible] अवसर मिला हो तो [illegible] सकता है। [illegible] है पर अच्छी तरह पूरी सफाई नहीं [illegible]।

सामाजिक प्रगति : [illegible] का प्रभाव [illegible] दिन अधिक [illegible] है, [illegible] के [illegible]। सामूहिक योजनाओं में भी लगने लगता [illegible] खेल अच्छी तरह नहीं खेल सकता। [illegible] घर के [illegible] ज्यादा [illegible] और [illegible] देता है। मित्र चुनने में बड़ी [illegible] है। खिलौनों के द्वारा परिवार के जीवन की [illegible]।

मानसिक विकास और काम [illegible] बातों में रुचि पैदा होने लगती है ([illegible])। तथा बरतन आदि बनाने में दिलचस्पी [illegible])। लड़के-लड़कियों दोनों [illegible] पसन्द होती है। दिन, तारीख, महीना [illegible] ठीक बता सकता है। [illegible] सकता है। [illegible] और उनके [illegible] तस्वीर समझने की शक्ति [illegible]।

कपड़े बना डालती है। बुनाई में, [illegible] लगाने में, [illegible] में—इन सभी कामों में बच्चों के दिलचस्पी होती है।

ऐसा नहीं है कि बच्चे शारीरिक [illegible] और उसे प्रमाणित करने के [illegible] पर एक ऐसी अवस्था होती है [illegible]

डालने की प्रवृत्ति होती है। आठ या नौ साल के बच्चे जितने विभिन्न प्रकार के खेलों में दिलचस्पी लेते हैं उतने प्रकार के खेलों में शायद किसी और उम्र के बच्चे नहीं लेते। आगे चलकर, जब बच्चा कई प्रकार के कामों को आजमा चुकता है, तो यह जरूरी हो जाता है कि वह उन कामों की ओर अधिक ध्यान दे जो उसे ज्यादा पसन्द हैं ताकि वह उनमें कुशल हो जाय। लेकिन यह अवस्था तो हर काम में हाथ डालने की है।

उनका सिद्धान्त : एक बार तो हर काम करना ही चाहिए

नये अनुभवों की तलाश बच्चों को हर जगह ले जाती है। यह तलाश उनको अपनी हर चेतना का प्रयोग करने पर प्रेरित करती है। इस तलाश में वे नई उगी हुई घास की मिठास का रसास्वादन भी करते हैं और चीड़ की जायकेदार पत्तियों के तीखेपन का भी; वे दो पत्तियों को जोड़कर झटका देकर बजाना भी सीखते हैं और देवदार की कागज-जैसी पतली छाल उतारना भी; वे तुलसी की पत्ती को मलकर उसकी सुगन्ध भी सूँघते हैं और गोबर के ढेर में पाँव पड़ते-पड़ते बच जाने पर 'उफ' करके छटककर अलग भी हट जाते हैं।

वे भूसे के ढेरों में घुस जाते हैं, उसके ऊपर चढ़ जाते हैं और फिर बालों में धूल भरे लुढ़कते-पुढ़कते नीचे आ गिरते हैं। वे हाँफते हुए आग बुझाने वाले इंजन के पीछे भागते हैं, इस आशा में कि आग बहुत बड़ी होगी। जब घर में पानी का नल ठीक करने के लिए मिस्त्री आता है तो वे उसकी नाक-तले घुसकर उसके एक-एक काम को बड़े ध्यान से देखते हैं। जब सड़क बना रही होती है तो उनकी मन्त्र-मुग्ध आँखें इस क्रिया के सारे क्रम को बड़ी उत्कण्ठा से देखती हैं। वे इसकी प्रतीक्षा भी नहीं करते कि सड़क इस लायक हो जाय कि वे उस पर नंगे पाँव चल सकें। वे तो कीचड़ में फच-फच करके चलना ही ज्यादा पसन्द करते हैं या ओस से भीगी हुई घास पर नंगे पाँव चलकर उसकी ठंडक से आनन्द प्राप्त करते हैं। उनको हर चीज को काटने, चूसने और चबाने का बड़ा चाव रहता है, चाहे वह शहतूत की पत्ती हो या लेमनड्राप की टिकिया या पेंसिल का टुकड़ा।

वर्षा के पानी से भरी हुई नालियाँ उनको पुकार-पुकारकर अपनी ओर आकर्षित करती हैं, और वे इसकी भी परवाह नहीं करते कि उनके पाँव पर रबर के जूते हैं या नहीं। उनके लिए साबुन का उपयोग अपने शरीर को साफ करने की अपेक्षा इसमें अधिक है कि उसका झाग उठाया जाय।

शारीरिक विकास और कुशलताएँ : लम्बाई [illegible] धीरे-धीरे बढ़ती है। शरीर की देखभाल [illegible] है, जैसे नहाना, बाल [illegible], आदि। औज़ारों को दिन-प्रतिदिन अधिक कुशलता से प्रयोग करने लगता है। [illegible] फिर भी अक्सर [illegible] है।

सामाजिक प्रगति : [illegible] लड़कियों की रुचियाँ बहुत भिन्न होने लगती हैं। [illegible] लड़कियों से अगले [illegible] वर्षों तक [illegible] होने लगता है—लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में [illegible] समय के लिए। 'गिरोह' और क्लब के प्रति [illegible] होने लगता है और दूसरे बच्चों से [illegible] भी। बड़े लोगों के साथ [illegible] कुछ [illegible], यहाँ तक कि लड़ाई-झगड़ा भी, [illegible] प्रमाण इससे मिलता है कि [illegible] लगता है।

मानसिक विकास और काम [illegible] समस्याओं को समझ [illegible] है। [illegible] और लड़कियों की रुचियों [illegible] पास-पड़ोस के लड़कों के [illegible] है। [illegible] पर से [illegible] जाती है कि [illegible] जाती है, आदि।

[illegible] छोटे-छोटे [illegible] बड़े बच्चे [illegible] बच्चों को [illegible] में [illegible] खेल-[illegible] है कि [illegible]

पहेलियाँ, चुटकुले, बूझो-तो-जानें, लाल-बुझक्कड़, शेखचिल्ली—बारी-बारी से इन सबका जमाना आता है। ६ वर्ष के बच्चे आपस में किसी गुप्त भाषा में उतने ही प्रवाह में बातें कर लेते हैं जितने प्रवाह से वे साधारण भाषा बोलते हैं। ऐसी पहेलियों में, जिनका हल किसी शब्द के टुकड़े जोड़ने में निकलता है, उनको बड़ा मजा आता है। माँ के पुराने कपड़े और ऊँची एड़ी के जूते पहनकर छोटी-छोटी लड़कियाँ पड़ोसी के यहाँ मिलने जाने की नकल उतारती हैं, या अपनी खिलौना-गाड़ियों पर गुड़ियों को बिठाकर बरात सजाती हैं। मेज पर बैठकर वे घण्टों तरह-तरह के खेल खेला करते हैं, यद्यपि यह बात समझने के लिए कि इन खेलों में हार-जीत भी होती है उनको काफी समय तक दुख उठाना पड़ता है। यद्यपि शुरू-शुरू में इसमें बड़ी कठिनाई होती है, पर यह बहुत महत्त्व-पूर्ण शिक्षा है, क्योंकि आगे चलकर इसी के आधार पर उनमें टोलियों के रूप में खेलने की आदत पैदा होती है। मुफ्त नमूने मँगाना; डिब्बों के ढक्कन और कूपन जमा करना; भाँति-भाँति की चीजों के संग्रह जमा करना और फिर इन बेतुकी चीजों के संग्रह की बहुमूल्य खजाने की तरह रक्षा करना; चूसने के लिए बरफ का एक टुकड़ा माँगते हुए कुलफी वाले के पीछे-पीछे भागना: घर बनाने के लिए पुराने डिब्बों की तलाश में दूकानों के पीछे कूड़े के ढेरों को कुरेदना; अखबार पर बेताब होकर झपटना कि कहीं हास्य-चित्र देखने में एक मिनट की देर न हो जाय—ये सब काम हमारे ६ से १२ बरस तक के बच्चे उसी शौक से करते हैं जिससे वह खाना खाते हैं।

सोना और खाना

सोना तो केवल छोटे बच्चों के लिए या बूढ़े माता-पिता के लिए ही बनाया गया है। जो बच्चे एक ही दिन में सब-कुछ कर लेना चाहते हैं पर दिन पूरा नहीं पड़ता, उनके लिए तो सोना समय को बरबाद करने के बराबर है। फुरतीले बच्चे चुपचाप बैठने से घृणा करते हैं; अगर किसी मनोरंजक पुस्तक में, या तागे से हाथ की उँगलियों पर शेर का पंजा और गंगा-जमुना और खटोला बनाने में, या किसी और तरह से अपनी उँगलियों को व्यस्त रखने में फँस जायँ तो बात और है।

सोने से उनका जी भले ही घबराता हो, पर खाने में उनको चौबीसों घण्टे आनन्द आता है। बच्चे समझते हैं कि जल्दी-जल्दी खाना ज्यादा अच्छा होता है। यदि खाने की चीज बहुत ही स्वादिष्ट है तब तो स्वाभाविक है कि उसको जल्दी-



शारीरिक विकास और कुशलताएँ : लड़कियों का वजन बड़ी तेजी से बढ़ना आरम्भ हो सकता है। १४ या १६ पक्के दाँत होते हैं। शरीर को ज्यादा कुशल बनाने के लिए बहुत मेहनत करने को तैयार रहता है; शारीरिक करतब-खेल दिखलाने में निपुणता प्राप्त करने को बहुत महत्त्व दिया जाता है। खेल में लड़कियों की अपेक्षा लड़के ज्यादा क्रियाशील और उद्दण्ड होते हैं।

सामाजिक प्रगति : संगठित खेलों में प्रतियोगिता का महत्त्व बढ़ता जाता है। दल बनाकर सहयोग से खेलना, तथा खेल में नियमों का पालन करना सब [illegible] होता है।

मानसिक विकास और काम : पहले से योजना बनाने की योग्यता बढ़ती जाती है। चीजों के बारे में जानकारी सूचना जमा करना महत्त्वपूर्ण होता जाता है, [illegible] लड़कों में। १०० से अधिक की गिनती [illegible] कर सकता है, समस्याओं पर बहस कर सकता है। दूसरे लोगों के विचारों में दिलचस्पी होने लगती है। खेल के लिए नियम और कायदे बनाने में दिलचस्पी होती है।

जल्दी हड़प कर लिया जाए और यदि कोई ऐसी चीज है जो उसे पसन्द नहीं है पर उसको खाने के लिए विवश किया जा रहा है तो [illegible] हो सके थाली में पड़ा रहने देने के बाद एकदम निगल जाना भी [illegible] है। [illegible] तक नियत समय पर खाने की बात है, न जाने किस युग में [illegible] था? नियत समय पर उनको जो खाना दिया जाता है [illegible] खानों के बीच में जो समय होता है उसमें [illegible] इसलिए मुहल्ले में इधर-उधर भागने-दौड़ने में या [illegible] चढ़ने या किसी नाटक की तैयारी करने आदि में [illegible] भोजन पच जाता है। १० [illegible] बिलकुल खाली हो चुका होता है।

६ से १२ वर्ष तक के बच्चों का कपड़ों की तरफ रवैया उससे बिलकुल भिन्न होता है जो इससे कम उम्र में होता है। उनको हर समय इस बात का ध्यान रहने लगता है कि दूसरे बच्चे क्या पहनते हैं और वे भी उन्हीं के समान कपड़े पहनना चाहते हैं। इस अवस्था के बच्चों के लिए दूसरे बच्चों से भिन्न रहना उतना ही कष्टदायी होता है जितना किसी नाटे मनुष्य के लिए अपने छोटे कद या किसी मोटी औरत के लिए अपने मोटापे का ज्ञान होता है। यदि उनके जूते, टोपियाँ, कपड़े, या बाल सँवारने का ढंग अधिकांश बच्चों से भिन्न हो तो वे अपने-आप को बहुत तुच्छ समझने लगते हैं।

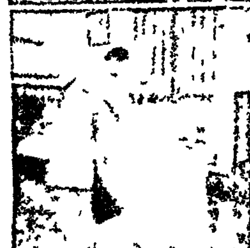
एक ही परिवार के छोटे और बड़े बच्चों में स्कूल में और खेल-कूद के समय कितना अन्तर पाया जाता है! "हम तुम्हारे साथ नहीं खेलेंगे। जाओ भाग जाओ!" बड़े बच्चों का यह रवैया इसलिए होता है क्योंकि अपने-आप को अपने छोटे भाई-बहनों से बहुत बड़ा समझने में उनको बड़ा सन्तोष मिलता है।

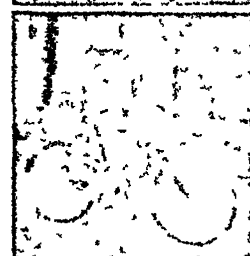
लेकिन इसके साथ ही यह देखकर भी बहुत खुशी होती है कि बड़े भाई और बहनें बहुधा अपने छोटे भाई-बहनों के प्रति बड़े प्रेमपूर्ण संरक्षण और देखभाल का प्रमाण देते हैं। इस बात से हमको इसका अन्दाजा होता है कि बड़े होकर जब वे स्वयं माता-पिता बन जायेंगे तब कोमल व्यवहार और दूसरों का ध्यान रखने की उनकी यही प्रवृत्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हो जायेंगी।

लड़के ९ या १० वर्ष के होने पर लड़कियों से चिड़चिड़ाने लगते हैं और लड़कियाँ लड़कों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगती हैं। लेकिन जब कोई ऐसा खेल खेलना होता है जिसमें बहुत से लोगों की जरूरत होती है तो लड़के-लड़कियों का सारा भेद-भाव एकदम न जाने कहाँ गायब हो जाता है! लड़के कहते हैं कि लड़कियाँ बड़ी शैतान होती हैं, वे उनकी नाक के पास मरी चुहिया लाकर उनको चौंका देती हैं या नहाते समय पानी के अन्दर उनके टखने पकड़कर उनको डरा देती हैं। और लड़कियों का कहना है कि लड़के बहुत जंगली और लापरवाह होते हैं। वे अपने बालों में कभी कंघा क्यों नहीं करते? लेकिन एक-दूसरे के प्रति जान-बूझकर अकारण ही बढ़ाये हुए इस तिरस्कार के पीछे एक पारस्परिक आकर्षण छिपा होता है जो कुछ वर्षों के बाद बहुत तीव्र रूप धारण कर लेता है।

भाई और बहनें एक क्षण में गहरे मित्र बन जाते हैं और दूसरे ही क्षण सड़क के कुत्तों की तरह लड़ने लगते हैं। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होने लगता है कि उनको एक-दूसरे को पीड़ा पहुँचाने में बड़ा आनन्द मिलता है: अतुल का







शारीरिक विकास और कुशलताएं : शारीरिक [illegible] और [illegible] लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा [illegible] होने लगता है: कुछ लड़कियों को मासिक-धर्म भी शुरू हो जाता है। विभिन्न खेलों के प्रति और विशेषतः ऐसे खेलों के प्रति, जिनमें शरीर के अंगों को घुमाने-फिराने की जरूरत पड़ती है, रुचि बहुत तीव्र हो जाती है।

सामाजिक प्रगति : दलों और गुटों का महत्त्व बढ़ता जाता है। स्कूल, मोहल्ले या अपनी जाति की समस्याओं में दिलचस्पी होने लगती है। दो दलों के बीच होने वाले खेलों में रुचि बढ़ जाती है। यदि [illegible] है तो वह और बढ़ जाता है।

मानसिक विकास और काम : अपनी ही [illegible]-कृतियों की आलोचना करने लगता है। [illegible] के [illegible] का रहस्य समझ सकता है। तौलिए, गिलास आदि के प्रयोग में सावधानी बरतने की बात समझ सकता है, [illegible] छींकने समय रुमाल का प्रयोग भी करने लगता है। कभी-कभी पैसा कमाने की ओर भी ध्यान जाने लगता है।

दाँव चल गया तो उसने विनीता को गुदगुदाते-गुदगुदाते [illegible] और विनीता कुछ बस न चलते देखकर उसे बुरी-बुरी गालियां देने लगी। लेकिन [illegible] है कि कोई बाहर का आदमी उनमें से किसी को छेड़ देता है। [illegible] आफत आई है तो विनीता और विनोद [illegible] लिए [illegible] तैयार हो जाते हैं।

जब ऐसी अवस्था होती है तब या तो दोनों [illegible] के लिए अधिक समय मिल सके या [illegible] बढ़ाने के लिए गुस्सा आने पर झगड़ा करेंगे।

आजकल का परिवार पहले से किस प्रकार भिन्न है



आजकल बच्चों के पालन-पोषण को पहले की अपेक्षा ज्यादा बड़ी समस्या क्यों समझा जाने लगा है? बहुत से माता-पिता ऐसे हैं जिनको इस बात पर आश्चर्य होता है कि आखिर बच्चों के पालन-पोषण के बारे में इतनी बातें क्यों कही जाने लगी हैं और इतनी किताबें क्यों लिखी जाने लगी हैं। "हमारे माता-पिता ने तो हमको पालने-पोसने में कभी इतना झंझट नहीं किया और न कभी इसी पर इतना विचार किया कि वे जो-कुछ कर रहे हैं वह ठीक ही है। फिर एक दम ऐसी क्या बात हो गई है कि माता-पिता बनने को इतनी बड़ी समस्या बनाकर खड़ा कर दिया गया है?"

यह प्रश्न बहुत स्वाभाविक है, क्योंकि वे परिवर्तन, जिन्होंने आज बच्चों के पालन-पोषण की समस्या को पिछले कुछ ही वर्षों पहले के मुकाबले में बिलकुल नया रूप दे दिया है, बहुत धीरे-धीरे हुए हैं। हमारे लिए ये परिवर्तन इतने स्वाभाविक हैं कि हम यह नहीं समझते कि आज हमारे बच्चे जिस वातावरण में रह रहे हैं वह उससे बिलकुल भिन्न है जिसमें हम पले-बढ़े थे और इन बच्चों के संसार में और उनके दादा और दादी के जमाने के संसार में जो जमीन-आसमान का अन्तर हो गया है उनका तो जिक्र करना ही बेकार है। यदि आज माताओं-पिताओं के सामने ज्यादा समस्याएँ उठ खड़ी होने लगी हैं तो इसका कारण यह है कि उनको बच्चों की जरूरतों और उनकी क्षमताओं का पहले से अधिक ज्ञान हो गया है, लेकिन इस बात के बारे में उनके विचार अभी तक उलझे हुए हैं कि वे इन जरूरतों को कैसे पूरा करें या बच्चों की क्षमताओं को पूरी तरह विकसित करने के लिए क्या उपाय करें।

रहन-सहन की परिस्थितियाँ बदल रही हैं

एक बात तो यह हुई है कि अब देहातों में अपेक्षतः कम लोग रहने लगे

शारीरिक विकास और कुशलताएँ : [illegible] खेल, जिनमें सारे शरीर का प्रयोग करना पड़े, जैसे चूहा-बाग-बिल्ली-आई आदि, कम होते जाते हैं। अपने शरीर की सफाई के सम्बन्ध में [illegible] ध्यान [illegible] रखता है। शरीर के वजन का ४० से ४५ प्रतिशत भाग स्नायुओं का होता है। लड़कियों की [illegible] की हड्डी के [illegible] जाती है। २४ से २८ तक पक्के दांत। शारीरिक कौशल के [illegible] सीखने में बहुत झिझक-सी आती है। [illegible] को अपने जवान होते हुए शरीर का [illegible] हो जाता है। अपनी पसन्द से प्रभावित होकर [illegible] की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है।

सामाजिक प्रगति : सामाजिक [illegible] जाते हैं, मित्र चुनने में अधिक स्वतन्त्रता आती जाती है। यदि परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हैं तो बच्चों में चोरी आदि अपराधों की आदत पड़ने लगती है। [illegible] निकट आती जाती है [illegible] है। बच्चे उन दूसरे बच्चों की प्रशंसा करने लगते [illegible] कुशल, बहादुर, और साहसी होते हैं। [illegible] आकर्षित करने के लिए [illegible] और [illegible] के प्रचलित ढंग का पालन करने [illegible] है।

मानसिक विकास और काम [illegible] और [illegible] है। [illegible] जाती है। 'न्याय,' 'ईमानदारी' आदि [illegible] को समझने लगता है। [illegible] भविष्य के लिए [illegible] है। [illegible] शक्तियों की [illegible] बहुत [illegible] लगता है। [illegible] पूरा [illegible] करने लगता है। [illegible] पैदा होने लगती है।

हैं। थोड़ी-सी आय पर कस्बों में या बड़े-बड़े शहरों के छोटे-छोटे मकानों में बच्चों का पालन-पोषण करने में यह कठिनाई सामने आती है कि उनको क्रियाशीलता का अवसर बहुत कम मिलता है। देहात के बच्चों को जो आजादी मिलती है वह यहाँ कहाँ! लेकिन बच्चों की इस बढ़ती स्फूर्ति का कोई उपयोग तो होना ही चाहिए; इसीलिए शहर के बच्चों का 'खेल-कूद' सहज ही उनको मुश्किल में फँसा देता है, क्योंकि उनकी हरकतों से पड़ोसी के घर की शान्ति और निस्तब्धता में ज़रा-सी बात से विघ्न पड़ सकता है या उनकी सम्पत्ति को हानि पहुँच सकती है। शहर के लड़के और लड़कियाँ अपने जैसे देहाती बच्चों की तरह न चुनकर गा सकते हैं, न सीटी बजा सकते हैं, न शोर मचा सकते हैं। यदि वे ऊपर की मंज़िल में रहते हैं तो उनके लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि वे दबे-पाँव चलें ताकि नीचे रहने वालों को तकलीफ न हो।

अब परिवार छोटे हैं

आजकल के माता-पिताओं के सामने एक और नई समस्या यह उठ खड़ी होती है कि सम्भवतः उनके बच्चे के भाई-बहनों की संख्या उतनी न हो जितनी स्वयं उनके भाई-बहनों की थी। ऐसे लोगों की संख्या जिनके कोई बच्चा नहीं होता पहले की अपेक्षा इतनी तेज़ी से बढ़ गई है कि इसकी सम्भावना होती है कि उनके बच्चे के साथ खेलने के लिए पड़ोस में बहुत ही थोड़े बच्चे हों। १९१० में केवल १० प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनमें कोई बच्चा नहीं था, सन् १९४० में ऐसे परिवारों की संख्या बढ़कर १५ प्रतिशत हो गई थी। आजकल अधिकांश बच्चे ऐसे होते हैं जिनके केवल एक या दो ही भाई-बहन होते हैं, इसलिए वे जिस वातावरण में पलते हैं वह उस वातावरण से बिलकुल भिन्न होता है जहाँ एक ही परिवार में बहुत से भाई-बहन होते हैं और जहाँ बच्चों को यह बात बहुत अस्वाभाविक-सी मालूम होती है कि उनके माता-पिता उनकी ओर उतना ध्यान दें जितना आजकल के बहुत से बच्चों को मिलता है।

अनुसन्धानों ने परिवार का जीवन बदल दिया है

उन असंख्य अनुसन्धानों के कारण, जिनसे घर के काम-काज में बड़ी सुविधा हो गई है, एक ऐसा परिवर्तन आया है कि आजकल के माता-पिताओं को अपने बच्चों को उससे बिलकुल भिन्न बातें सिखानी पड़ती हैं जो उन्होंने स्वयं अपने बचपन में सीखी थीं। कपड़ा धोने की मशीनें (या लाण्ड्रियाँ जो घर के सारे कपड़े घर से कहीं दूर धुलाकर भिजवा देती हैं), तेल से जलने वाले स्टोव,

बिजली के चूल्हे, खेत जोतने के लिए ट्रैक्टर, बिजली के रेफ्रीजरेटर और बहुत से दूसरे अनुसन्धान—ये सब ऐसी चीजें हैं जिन्होंने ऐसे बहुत से कामों को बिल्कुल खत्म कर दिया है जिनमें बच्चे पहले हाथ बँटाते थे। कुछ ही वर्ष पहले जितने कपड़े तीन आदमी मिलकर धोते थे उतने कपड़े अब एक आदमी अकेला धो लेता है। अब ऐसे बच्चों की संख्या पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई है जिनको चूल्हा सुलगाने के लिए लकड़ी लानी पड़ती थी, या बाजार से बर्फ़ लानी पड़ती थी, या चूल्हे की राख फेंकने के लिए सड़क के छोर तक जाना पड़ता था। अब जितने बच्चे अपने घर के कमरे में झाड़ू लगाते हैं प्रायः उतने ही बच्चों के घरों के कमरों में वह मशीनी झाड़ू लगा होता है जो सारी इमारत की सफ़ाई के लिए होता है। आजकल तो छोटे-छोटे कस्बों में भी दूध वाला घर-घर जाकर दूध पहुँचा आता है।

जिन बच्चों के घरों में ये सुविधा और ये आराम की चीजें नहीं होती हैं, वे उन बच्चों से मिलते हैं जिनके यहाँ ये सुविधाएँ होती हैं और फलस्वरूप उनके जीवन पर इस बात का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है कि कौन-कौन सी सुविधाओं से वे वंचित हैं।

शहरों में एक समस्या और सामने आती है। माता-पिता यह नहीं समझ पाते कि वे बच्चों को घर का कामकाज किस प्रकार सिखाएँ—वही काम जिसे वे अपने बचपन में अपने जीवन का एक स्वाभाविक अंग समझते थे और [illegible] अच्छा अंग समझते थे। अब इस शिक्षा के स्थान पर वे बच्चों को क्या सिखाएँ? यह सच है कि अब भी बाजार से खाना लाने की जरूरत पड़ती है, अब भी बर्तन धोने की जरूरत पड़ती है, और छोटे-मोटे कामों के लिए इधर-उधर जाना पड़ता है। लेकिन पहले यह बात बिना किसी कठिनाई के समझ में आ जाती थी कि घर के काम में सबका हाथ बँटाना जरूरी है और अब जबकि इतनी चीजें बाजार से बनी-बनाई मिल जाती हैं या इतने काम [illegible] हो जाते हैं कि शहर के बहुत से बच्चों को यह सब जीवन का कोई [illegible] नहीं होता।

यदि किसी छोटी लड़की को किसी [illegible] अच्छे कपड़ों की जरूरत हो और उसकी माता उससे कहे, [illegible] तुम इसके बदले [illegible] दूँगी।" बहुत सम्भव है कि [illegible]

है कि तुम मुझे बाजार से ही कपड़े खरीद दो।" जो इश्तहार वह बाजार में देखती है उनके कारण वह समझती है कि खरीदना ज्यादा आसान है और 'घर पर बनाना' बिलकुल बेकार है।

आमोद-प्रमोद घर के बाहर चला गया है

आजकल केवल यही नहीं हुआ है कि दूध लाने का काम, कपड़े धोने का काम और कपडे सीने का काम बाहर ही के लोग कर देते हैं, इसके साथ ही यह भी हुआ है कि ऐसे बहुत से आमोद-प्रमोद जो पहले घर मे ही बच्चों को मिल जाते थे अब घर से बाहर चले गए हैं। ज्यों-ज्यों शहर बड़े होते गए, वैसे-वैसे शहर के लोगो के दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए खाली समय का पूरा-पूरा फायदा उठाने के लिए व्यापारिक ढंग पर चलाये जाने वाले आमोद-प्रमोद के साधनो ने जन्म लिया। सिनेमाघर, खेल के मैदान, पहिएदार जूते पहनकर फिसलने के लिए विशेष प्रकार के हॉल, और तरह-तरह के अन्य आमोद-प्रमोद-केन्द्र आज लाखों के मनोरंजन का साधन बन गए हैं। एक या दो पीढ़ी पहले यही बच्चे ग्रामोफोन सुनकर या पहाडियों पर जमी हुई बर्फ पर फिसलकर ही सन्तुष्ट हो जाते थे या कभी-कभी उनको किसी मेले में जाने का अवसर मिल जाता था। एक प्रकार से देखा जाय तो रेडियो एक ऐसा साधन है जो सारे परिवार को कभी-कभी एक स्थान पर जमा कर देता है और उसी प्रकार विदेशों मे टेलीविजन भी सारे परिवार को एक जगह इकट्ठा करता है।

परिवार के आकार मे कमी, रहन-सहन की परिस्थितियो मे परिवर्तन, और मेहनत बचाने वाली मशीनों के द्वारा होने वाले परिवर्तन तो सब बाह्य घटनाएँ है फिर वे मनुष्य के आन्तरिक जीवन, उसके विचारो, उसकी भावनाओ और उसके कर्मों पर भी प्रभाव डालती हैं। किराए के मकान मे रहने या किसी दूसरे की जमीन पर खेती करने के कारण बार-बार मनुष्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है जिसका परिणाम यह होता है कि दूसरे लोगों के साथ उसके सम्बन्ध मे परिवर्तन आ जाता है। दूसरे लोगों की ओर ध्यान देने और उनके बारे मे सोचने का सवाल ही कहाँ उठता है जबकि हम अपने पड़ोसियो के नाम तक नहीं जानते।

यदि घर के पास ही कहीं सिनेमा हो तो घर का जीवन कितना ही सुखद क्यो न हो, बच्चो के दिल मे उन फिल्मो को देखने की तीव्र उत्कंठा होती है जिनकी चर्चा वह इधर-उधर सुनते हैं। जो बच्चे शहर के पास की जमीनों और

देहातों में रहते हैं उन पर भी आमोद-प्रमोद के इन व्यापारिक साधनों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। देहातों के कितने ही लड़के और लड़कियाँ ऐसे हैं जो फिल्मों में दिखाये जाने वाले जीवन से आकर्षित होकर घर छोड़कर शहर में काम करने के लिए भाग आते हैं।

बाहरी प्रभाव जल्दी पड़ने लगते हैं

आजकल के बच्चे पहले की अपेक्षा बहुत शीघ्र ही संसार की विभिन्न वस्तुओं से परिचित होने लगते हैं—वास्तव में रेडियो के द्वारा और पत्रिकाओं के द्वारा संसार स्वयं हमारे घरों में आ जाता है। फिल्मों के नये-नये गाने, वह चाहे कितने ही भद्दे क्यों न हों, छः-छः बरस के बच्चों के मुँह से सुनाई पड़ने लगते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनके माता-पिता एक ऐसे बच्चे का पालन-पोषण कर रहे हैं जो उनसे कहीं अधिक 'जानता है' जितना वे इसी उम्र में जानते थे, जिसे संसार के बारे में कम-से-कम एक सरसरी-सी जानकारी तो है ही।

इसलिए माताओं और पिताओं के सामने जो समस्याएँ आ खड़ी होती हैं वह पहले की अपेक्षा अधिक विभिन्न प्रकार की भी होती हैं और कठिन भी होती हैं। अपने बच्चों को अच्छी तरह समझने का महत्व तो हमेशा से माना गया है पर आजकल हमारे ऊपर बहुत से ऐसे उत्तरदायित्व आ पड़े हैं जो पहले नहीं होते थे। उनको सँभालने के लिए बड़ी कुशलता की आवश्यकता होती है।

पिता अपने बच्चों से बहुत कम मिल पाते हैं

बाहर के उत्तरदायित्वों के बदलने के कारण घर के अन्दर की परिस्थितियाँ भी बदल गई हैं। अधिकांश पिता घर पर अब बहुत कम समय व्यतीत कर पाते हैं; बहुत से तो ऐसे हैं जिनको काम करने की जगह उनके घर से बहुत दूर होती है. केवल कुछ ही ऐसे होते हैं जिनकी दूकानें या जिनके दफ्तर घर के पास ही होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे की निगरानी का सारा भार माँ को ही सँभालना पड़ता है।

लेकिन बहुत से उदाहरण ऐसे हैं जिनमें माँ भी घर से बाहर काम करती है, घर से बाहर काम करने वाली स्त्रियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इनमें से अधिकांश तो इसलिए काम करती हैं कि [illegible] हैं, कुछ [illegible] करती हैं कि वे अपने बच्चों के जीवन को अधिक सुखी बनाना चाहती हैं। इसका परिवार के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

जब किसी परिवार में ऐसा होता है कि माँ बाहर काम पर जाती है और बच्चे अपनी देखभाल स्वयं करते हैं तो इसका प्रभाव केवल उस एक परिवार के बच्चों पर ही नहीं पड़ता। यदि कमला की माँ उसे हफ्ते में तीन बार सिनेमा देखने की इजाजत दे देती है ताकि वह स्कूल से लौट आने के बाद मोहल्ले में इधर-उधर न घूमे तो माथुर साहब की बेटी सरला भी कमला के साथ जाने के लिए हठ करती है, यद्यपि उसकी माँ घर पर ही रहती है। हर वह परिवर्तन जिसका प्रभाव किसी एक परिवार पर पड़ता है वह हमारे परिवार पर भी प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता।

जनवादी परिवार

इस प्रकार, जैसे जैसे जीवन अधिक पेचीदा होता जाता है उसी के अनुसार वह समस्याएँ भी बढ़ती जाती हैं जिनका माता-पिताओं को सामना करना पड़ता है। संसार की गति तेज हो गई है और अब वह पहले से अधिक सुसंगठित हो गया है और कोई भी मनुष्य इस संसार से अलग होकर नहीं रह सकता। चाहे उनकी इच्छा हो या न हो, सारे माता-पिता इसी 'एक संसार' का भाग हैं, जिसके अस्तित्व को हम एक मिनट के लिए भी नहीं भुला सकते। उनको इस बात का सौभाग्य मिला है कि वे परिवार के जीवन को ऐसा बनाएँ जिससे उनके बच्चे एक ऐसे संसार में रहने योग्य बन सकें जिसमें उनका जीवन इस पर निर्भर होगा कि वे सच्चे विश्व-नागरिक बन सकते हैं या नहीं।

इस भावना को प्रोत्साहन देने के लिए परिवार का जीवन कैसा होना चाहिए?

परिवार स्वयं एक छोटा-मोटा संसार होता है जिसमें बच्चे एक बृहत्तर जीवन का अभ्यास करते हैं और उसके लिए तैयारी करते हैं। जब तक परिवार का जीवन पूरी तरह जनवादी और सहकारी नहीं होगा, उस समय तक बच्चों में वह कुशलता कहाँ से आयगी जो उनको एक ऐसे समाज में भाग लेने के योग्य बनाए जिसको चलाने के लिए सबके संयुक्त प्रयास की आवश्यकता होगी? विभिन्न राष्ट्रों के आपसी सम्बन्धों को सुधारने के लिए जो संघर्ष इस समय चल रहा है उसको देखकर हमको यह भी ध्यान होता है, और इस विचार से हमको थोड़ी-सी शर्म भी आती है, कि हमारे परिवारों के जीवन को भी बहुत-कुछ सुधारा जा सकता है। हमें इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए कि परिवार के जीवन को इस प्रकार का कैसे बनाया जा सकता है कि उससे परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को

आजकल का परिवार [illegible]

लाभ पहुँचे. और हमें यह निश्चय करना चाहिए कि हम अपने जीवन से [illegible] को इसका एक आदर्श उदाहरण बना देंगे।

जनवादी पारिवारिक जीवन का क्या अर्थ है—[illegible] जीवन जिसमें :

माता-पिता एक-दूसरे का इतना ध्यान रखते हों कि [illegible] उनको स्वयं अपनी इच्छाएँ पूरी करने की रहती हो [illegible]. रहे कि उनका जीवन-संगी भी अपनी इच्छाएँ पूरी कर सके। [illegible] की—बड़ों की भी और बच्चों की भी—इच्छाओं का ध्यान किया [illegible] यथासम्भव उनको पूरा किया जाता हो। माता-पिता और [illegible] फैसलों के बारे में अपनी राय देने का अधिकार हो [illegible] माता-पिता और बच्चे सब एक समान समाज के सदस्य [illegible] अच्छा सदस्य बनना सीख रहे हों।

सफल माँ-बाप होने के लिए क्या बातें ज़रूरी हैं



माँ-बाप बनने से पहले हम इन्सान बनें। हम जैसे इन्सान होते हैं उसका हमारे बच्चों पर इतना प्रभाव पड़ता है कि यदि हमारा अपना व्यक्तित्व उनके विकास की राह में बाधक हो तो हम लाख प्रयत्न करने पर भी कुछ नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में, माँ-बाप की हैसियत से अपना कर्तव्य पूरा कर सकने की आशा करने से पहले हमें अपने-आप को समझना और अपनी आकांक्षाओं, अपनी असफलताओं और अपनी अच्छाइयों को भली भाँति समझना बहुत जरूरी है।

यदि माँ-बाप बच्चों से सचमुच प्यार करते हैं तो बच्चे भी उनकी बहुत सी कमजोरियों पर ध्यान नहीं देते। यदि माँ स्नेहमयी हो और अपने बच्चों में मगन रहती हो तो बच्चे उसकी डाँट-फटकार—यहाँ तक कि उसकी मार भी—सह लेते हैं। ऐसी माँ की देखरेख में बच्चे अच्छी तरह पलते हैं। इसके विपरीत ऐसी माँ जो बहुत सहनशील हो और देखने में बच्चों से बहुत प्यार करती हो पर अन्दर-ही-अन्दर बहुत भावनाहीन, स्वार्थी और चिड़चिड़ी हो या ऐसी माँ जो हमेशा यह डरती रहती हो कि कहीं वह कोई गलत बात न कर बैठे, कभी सफल माँ नहीं बन सकती।

परिवार के अन्दर आपस में हँसी-मजाक सबसे अच्छा साधन है, जिसके द्वारा बच्चे अपने माँ-बाप को अपना साथी समझने लगते हैं। हँसी से खिंचाव और डर दूर हो जाता है। यदि बच्चे को इस प्रकार डाँटा जाय कि उसे स्वयं अपने आप पर हँसी आने लगे तो इससे उसका आत्म-विश्वास और दृढ़ हो जाता है, क्योंकि वह अपनी अपेक्षा अपनी भूल को बहुत छोटा समझने लगता है। आपस का हँसी-मजाक ही आगे चलकर बच्चों के दिमाग में घर के जीवन की सबसे सुखद स्मृतियों के रूप में सुरक्षित रहता है।

यह बड़ी अच्छी बात है कि युवावस्था में ही लोग माँ-बाप बन जाते हैं। युवावस्था के लोगों को इस बात का इतना समय ही नहीं मिलने पाता कि वे बहुत कठोर हो चुकें या उनकी आदतें बहुत पक्की हो चुकी हों। लेकिन सभी माँ-बाप अपने बच्चों पर स्वयं अपने माँ-बाप का प्रभाव डालते हैं; हम इससे बच भी

नहीं सकते। ऐसी माँ या ऐसा बाप जो स्वभावतः बहुत ही हुक्म चलाने [illegible] होते हैं कभी-कभी अपने बच्चों के दिल में डर बिठाकर उनको [illegible] करने पर विवश करता है जो समाज में मान्य हो। यह बात कभी हमारे [illegible] आती कि हम 'हुक्म चला रहे हैं,' हम अनजाने ही अपने बच्चों पर [illegible] प्रयोग करते हैं जो हमारे माता-पिता ने हमारे ऊपर प्रयोग किए थे। [illegible] बहुत स्वाभाविक मालूम होती है कि हमारी आज्ञा का पालन किया जाए, [illegible] बात का सम्मान किया जाय और गम्भीर और शान्त बिलकुल हमारे इशारे पर [illegible]। यदि हमारी माँ ने या हमारे पिता ने हमारे साथ ऐसा ही व्यवहार किया [illegible] हमको इस बात का ध्यान भी नहीं होगा कि हमारे बच्चे हमारे [illegible] में बोलने तक नहीं है और यह कि वे इतने दब्बू और कमजोर हो गए हैं [illegible] दूसरे लोगों के साथ सम्बन्ध स्थापित रखने में उनकी [illegible] कमजोरी उनके लिए बहुत हानिकारक है। हम सबको चाहिए कि हम कभी-कभी [illegible] लोकन करें और इस बात को याद रखें कि बच्चे जितने [illegible] उसके लिए उनको केवल आदेश देना ही जरूरी नहीं है बल्कि उनको [illegible] विराम करने देना भी उतना ही आवश्यक है।

यह सच है कि बहुत से माता-पिता भी बहुत सीधे, [illegible] हैं। उनकी इस कमजोरी का परिणाम यह हो सकता है कि उनके बच्चे [illegible] साथ भी हठ करें और मचलें, क्योंकि इन उपायों से [illegible] माता-पिता [illegible] लेने की उनकी आदत पड़ चुकी होती है। [illegible] कुछ मात्रा में इस कारण कम हो जाती है कि उन [illegible] पड़ता है—माता का भी और पिता का भी, वे अपना व्यवहार [illegible] के अनुकूल संतुलित कर लेते हैं। [illegible] पर सख्ती न करते हों परन्तु उसकी माता [illegible] बच्चा दोनों से प्रभावित होगा और अपने [illegible] लेगा। और [illegible] वह उन दोनों पर [illegible]।

क्या हम अपने बच्चों की बातों का सचमुच सम्मान करते हैं

[illegible] में बच्चे के व्यक्तित्व को [illegible] है कि उनमें यह भावना उत्पन्न हो कि [illegible] व्यवहार का यह समर्थन करते हैं और [illegible] के वातावरण में [illegible]

किन्हीं चिन्ताजनक शंकाओं के वर्तमान का भी सामना कर सकते हैं और भविष्य का भी, इसके विपरीत उन बच्चों को, जिनमें यह विश्वास नहीं होता है, इस प्रकार की अनेकों शंकाओं का सामना करना पड़ता है। यदि पुष्पा की माँ दिन-रात अपनी बेटी के बुरे बालों का या उसके चेहरे के दागों का रोना रोती रहे तो पुष्पा यह कैसे समझ सकती है कि उसके माँ-बाप उसे चाहते हैं? यदि विनय के पिताजी विनय को हिसाब न लगा सकने पर हर बार झिड़क दिया करें तो कैसे सम्भव है कि विनय का विश्वास अपने ऊपर से धीरे-धीरे उठ न जाय?

बच्चों के लिए इस बात की जरूरत होती है कि उनके दिल में यह विश्वास पैदा हो कि उनके माता-पिता उन पर गर्व करते हैं; उनके दिल में यह बात बैठ जाय कि वे कैसी भी मुसीबत में क्यों न फँस गए हों, यदि वे अपने माता-पिता से अपनी व्यथा बताएँगे तो वे उनकी कठिनाई को समझने की कोशिश करेंगे और उनकी सहायता करेंगे, और बच्चे यह समझने लगें कि उनके माता-पिता चाहे उनके किसी काम को अनुचित और मूर्खतापूर्ण समझकर उसका विरोध करें पर वे इस कारण उनको प्यार करना नहीं छोड़ देंगे।

उन पुस्तकों में जिनमें यह बताया गया है कि हम अपने बच्चों की सहायता किस प्रकार कर सकते हैं, यह भी कहा गया है कि बच्चों को अपनी सूझ-बूझ के अनुसार स्वयं काम करने का अवसर देना कितना महत्त्व रखता है। बच्चों को इस प्रकार का अवसर देने के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि उन पर कड़ा और दमनकारीअनुशासन न रखा जाय। बच्चे को यदि अपनी इच्छा से काम करने दिया जाय और निपुणता की कमी के कारण यदि उसे बार-बार टोका न जाय तो उसमें स्वाभिमान की भावना उत्पन्न होती है। किशन के पिता लगातार उसके सिर पर सवार होकर कमरा साफ करवाने के बजाय यदि उससे कहे कि "तुम खुद तय कर लो कि इन अल्मारियों को धोकर साफ करने के बाद तुम उनको कहाँ रखोगे," तो किशन ज्यादा अच्छी तरह काम कर दिखाएगा। यह सच है कि किशन के पिता अपनी योजना को ही ज्यादा अच्छा समझते होंगे; लेकिन इसके साथ ही वह यह भी जानते हैं कि किशन अपनी योजना को सबसे अच्छा समझता होगा और वह यह भी चाहते हैं कि किशन काम को केवल पूरा ही नहीं करवा दे बल्कि काम करने में उसे आनन्द भी आए। ऐसा करने से यह होगा कि किशन दूसरे काम करने के लिए ज्यादा खुशी से तैयार रहेगा।

हम ऐसे बच्चों को पसन्द करते हैं जो फुर्तीले होते हैं और अपनी सूझ-

सूझ रखते हैं, केवल 'औसत' बच्चों की नक़ल नहीं करते। [illegible] हो, यह बहुत कुछ हमारे ऊपर निर्भर है [illegible] बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं। यदि हम उनको बहुत [illegible] पाँवों पर खड़े होने का मौका दें और उनको अपनी सूझ-बूझ [illegible] तो हम देखेंगे कि वे नई-नई बातें सोचकर निकालेंगे।

यदि आपके बच्चे अपनी प्रखर सूझ-बूझ के कारण [illegible] लड़कियों की अपेक्षा ज़्यादा मनमानी करने लगें या आपके बच्चे [illegible] कारण नई-नई जगहों की खोज में आपके पड़ोसी के बच्चों को [illegible] जाएँ कि जब वे वहाँ से घर लौटें तो उनके पाँव भीगे हों ([illegible] के फेर में) या उनके कपड़े फटे हों (पेड़ पर चढ़ने के कारण)—[illegible] मर्ज़ी से ही अपने नेता का अनुसरण करके उन्होंने अपनी [illegible]—तो आपको कभी-कभी उन पर क्रोध भी आ सकता है।

परन्तु आप धीरज रखिए। वे लोग, जो यह चाहते हैं कि [illegible] करें और उनसे जो कहा जाए वही करें, कुछ दिन [illegible] से देखेंगे पर आपको अपने धीरज का फल अवश्य मिलेगा। [illegible] जैसे बड़े होते जाएँगे वैसे-वैसे न केवल उनका बचपन और [illegible] बल्कि उनमें भले-बुरे की पहचान करने की क्षमता भी पैदा होगी। [illegible] ज़रूरत नहीं कि इनके साथ उनमें कुछ दुनियादारी बातें भी [illegible] उनको दूसरों की चीज़ों को नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है।

यदि हमारे लड़कों में से [illegible] पोषण की योजना बनाते समय हमको [illegible] हम उनको ऐसे अनुभव प्राप्त करने का अवसर दें [illegible] काम करना सीखें। विभिन्न वस्तुओं के इधर-उधर [illegible] होता है, विशेष रूप से उस दशा में [illegible] को झुँझलाहट और परेशानी हो। वे बालक, जो [illegible] ढंग पर चलने की आदी होती हैं, [illegible] के कपड़े पहनें और 'उचित' व्यवहार करें। [illegible] पसन्द करता है तो उसे क्या [illegible] पालने का [illegible]?

[illegible], बच्चों को [illegible]

देने के बजाय यदि हम उनकी एक-एक बात पर कड़ी नजर रखें और हर बात पर उनको टोकें तो इसका परिणाम यह हो सकता है कि बच्चों का पूरी तरह विकास न हो पाए और स्कूल में दूसरे बच्चों के साथ घुलना-मिलना उनके लिए कठिन हो जाय। परन्तु इस बात को भी ध्यान में रखना लाभदायक होगा कि अपनी सन्तान की भलाई के विचार से यदि माता-पिता कुछ गलत बातें भी कहते हैं तो बच्चों में ऐसी स्वाभाविक शक्ति होती है जिसके द्वारा वे अपने माता-पिता की उन गलत बातों के फलस्वरूप उनके अन्दर पैदा होने वाली गलत धारणाओं को सुधार लेते हैं।

हम चाहे जो कुछ करें, हर बच्चे में 'अपनी विशेषता' जरूर बाकी रहेगी। हमारा काम यह है कि हम शुरू में ही ध्यान से देखकर इस बात को समझने की कोशिश करें कि किस बच्चे में स्वभावतः किस बात की प्रवृत्ति पाई जाती है। यदि हम अपने बच्चे स्वभाव को भली-भाँति जानते हों तो हम ज्यादा अच्छी तरह से यह बता सकते हैं कि उसकी कुछ स्वाभाविक अभिरुचियों का विकास करने के लिए क्या किया जाय और कुछ दूसरी रुचियों को दबाने के लिए, जो अपेक्षतः कम उपयोगी मालूम होती हों, क्या किया जा सकता है।

अनुशासन और दण्ड में क्या अन्तर है

इसमें सन्देह नहीं कि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हमारे बच्चे जो फैसले करते हैं—यद्यपि वे जान-बूझकर हमारी आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए ऐसा नहीं करते—वे इतनी जल्दी में किये जाते हैं और उनके इन फैसलों का आधार इतने सीमित अनुभव पर होता है, कि कोई मुसीबत उठ खड़ी होती है। बहुधा तो ऐसा होता है कि यह मुसीबत स्वयं ही इतनी बड़ी होती है कि वे दुबारा वही काम करने से झिझकते हैं। क्या दण्ड देने का उद्देश्य भी यही नहीं होता? लेकिन इस परिस्थिति में हम अपने हाथों से दण्ड देने से बच जाते हैं।

फिर भी इस पर भरोसा नहीं किया जा सकता कि बच्चा हमेशा अपनी गलती के नतीजे से सबक सीखेगा और उस काम को फिर कभी नहीं करेगा या वह अपनी गलती के नतीजे से सबक सीखकर ज्यादा समझदार हो जायगा। यदि कोई आठ बरस का बच्चा बताई हुई मात्रा से ज्यादा मिठाई खाए तो जरूरी नहीं है कि हर बार उसके पेट में दर्द हो ही। इसी प्रकार यदि कोई दस बरस का बच्चा स्कूल के बाद कपड़े बदलने के लिए घर आना 'भूल जाता है' तो उसकी इस भूल से कोई ऐसा भयंकर परिणाम नहीं होने वाला है जिसे वह याद रखे। यदि अरुणा अपने अच्छे-अच्छे कपड़े फाड़ डालती है और उसे महीनों तक वही कपड़े

पैवन्द लगाकर पहनने पड़ते हैं तो सम्भव है कि अतिथि के [illegible] कहना मानने की ओर अधिक ध्यान दे। परन्तु हम [illegible] सकते कि ऐसा ही होगा, इसलिए समझदार माँ-बाप अपने बच्चों में [illegible] इच्छा पैदा करने की कोशिश करते हैं कि वे इस तरह के [illegible] भी फायदा हो और दूसरों का भी।

बच्चों के लिए कुछ ऐसे नियम होने चाहिएँ जो [illegible]। लेकिन ऐसा भी न हो कि दर्जनों ऐसे नियम बना दिए जाएँ [illegible] पाँव बिलकुल बँध जायँ; केवल थोड़े से स्पष्ट नियम होने चाहिएँ [illegible] लौटकर किस समय तक आ जायँ, वे किन सीमाओं के [illegible] कौन-कौनसे काम उनके करने के हैं। अनिश्चित [illegible] अच्छा है कि उनको यह मालूम हो कि वे क्या कर सकते हैं और [illegible] सकते।

बच्चे हमारे उद्देश्य को समझें

यदि हम सचमुच चाहते हैं कि हमारी योजनाएँ [illegible] है कि हमारे बच्चे नियमों को समझें। यदि हम [illegible] समझे बच्चे को दण्ड देते रहे तो सम्भव है कि बच्चा [illegible] होने के बजाय गुस्सा हो जाए। यदि [illegible] उसे वहाँ देर हो जाए तो हम बात का [illegible] लौटने की सूचना भेजने का कोई प्रबन्ध [illegible] परिणाम यह होगा कि वह [illegible] समझदारी की बात यह होगी कि [illegible] कर आए तो उसे अगली बार न जाने दिया जाए। [illegible] अपने माता-पिता के साथ सहयोग करने की [illegible]

[illegible] बच्चे से [illegible] कि बच्चा इस बात को समझे कि [illegible] नासमझी की गलती के लिए [illegible] है कि [illegible] स्वयं फैसला करे। [illegible] का प्रयोग करे। [illegible] और वह सोचेगा कि [illegible]

कभी-कभी हम बगैर जाने हुए ही दण्ड दे देते हैं। हमारी नाराजगी इतनी स्पष्ट होती है कि शब्दों का प्रयोग करने की जरूरत नहीं पड़ती; केवल हमारी दृष्टि से ही बच्चा यह समझ जाता है कि उसने कोई ऐसा काम किया है जिसे उसके माता और पिता बहुत बुरा समझते हैं। इस प्रकार का मनोवैज्ञानिक दण्ड देने का तरीका बहुत प्रचलित है जिसमें हम केवल अपनी अरुचि और निराशा का प्रदर्शन-मात्र कर देते हैं। यह तरीका बहुत उपयोगी भी हो सकता है और बहुत नुकसान भी पहुँचा सकता है; यह इस पर निर्भर है कि हम किस प्रकार इस तरीके को काम में लाते हैं। यदि हमारा बच्चा दूसरे के अधिकारों का सम्मान नहीं करता तो इस बात को व्यक्त करना कि हम उसकी इस बात का समर्थन नहीं करते केवल न्यायसंगत ही नहीं बल्कि आवश्यक भी है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी गलती पर उसे जरूरत से ज्यादा उलहने दिये जायँ और इस प्रकार उसको दिन-भर चैन न लेने दिया जाय या लौट-फिरकर बार-बार उसी एक गलती का ताना दिया जाय। माँ-बाप की नजरों से गिर जाना बच्चों के लिए बहुत तेज दवा है और इसीलिए इसकी बहुत छोटी-छोटी खुराकें देना ही उचित है। और यह दवा बहुत जल्दी-जल्दी देना भी उचित नहीं। जब माँ-बाप बच्चे की किसी गलती पर अपनी अरुचि प्रकट करें तो यह जरूरी है कि उसे बहुत समय तक वे अपने प्यार और स्नेह से वंचित न रखें।

यह बात बहुधा कही गई है कि हम बच्चे को यह समझा दें कि हम उसकी गलती से नाराज हैं, उससे नहीं। हम पूरी ईमानदारी के साथ उससे कह सकते हैं, "तुम बहुत अच्छे हो। यह काम जो तुमने किया वह तुम्हें शोभा नहीं देता। अपने योग्य व्यवहार करो और तुम ठीक हो जाओगे।" हम उसके दिल में यह बात बिठा सकते हैं कि हमें पूरी आशा है कि अगली बार वह ऐसी गलती नहीं करेगा। अभिप्राय यह है कि बच्चे का अपने ऊपर विश्वास अधिक दृढ़ हो जाय।

बच्चे पर विश्वास रखने से और निरन्तर उससे प्रेम करने से इस बात की जरूरत नहीं रह जायगी कि उसे दण्ड दिया जाय। यदि किसी बच्चे को उसके माता-पिता का समर्थन प्राप्त न हो तो अपने ऊपर किये जाने वाले इस अविश्वास की पीड़ा से शरण प्राप्त करने के लिए वह किसी सुरक्षित स्थान की खोज करता है। बच्चों का अध्ययन करने से यह पता चला है कि यदि उनको बहुत दण्ड दिया जाय तो वे संसार की वास्तविकताओं से विमुख होकर स्वप्नों की दुनिया में रहने

लगते हैं, जहाँ वे यह सोचकर अपने मन को शान्त करते हैं कि ये माता-पिता वास्तव में उनके नहीं हैं।

जिस तरह माँ-बाप बच्चों की किसी गलती पर अपनी अस्वीकृति प्रकट करके उनको दण्ड देते हैं बिलकुल उसी प्रकार बच्चों के अच्छे काम की सराहना करके उनको पुरस्कार भी दिया जा सकता है। अच्छे कामों के लिए पुरस्कार देने का कुछ लोग विरोध करते हैं लेकिन वास्तव में उनका अभिप्राय ऐसे पुरस्कारों से होता है जो पैसे के रूप में या किसी वस्तु के रूप में दिये जाते हैं। जिन बच्चों में और उनके माता-पिता में सामञ्जस्य होता है, उनको इस प्रकार के पुरस्कारों की जरूरत ही नहीं होती और ऐसे बच्चों को पुरस्कार की आदत डालना बुरा भी है।

यह दूसरी बात है कि आप उनसे कहें, "तुमने इस हफ्ते घर के काम में इतनी सहायता की है कि हमको काफी फुरसत है इसलिए आओ चलें सिनेमा देख आएँ," या, "तुम बाजार से जो तरकारी लाए थे वह तुमने इतनी होशियारी से खरीदी थी कि जो पैसे बचे हैं वह तुम अपने पास जमा कर लो।" इस प्रकार के पुरस्कार, जिनकी पहले से मिलने की आशा न हो और जो अचानक बिना किसी पूर्व योजना के दिये जाते हैं, उनको पाकर बच्चे एक दम खुश हो उठते हैं और इससे उनका साहस बढ़ता है।

एक पुरस्कार ऐसा है जिसकी हम सबको इच्छा रहती है और वह है हार्दिक प्रशंसा। माँ को यह पुरस्कार उस समय मिलता है जब उनकी पकाई हुई खीर को खाकर उसके बच्चे खुशी से चीख उठते हैं या जब अपने कपड़ों को साफ धुला हुआ देखकर पति की आँखों में खुशी की एक चमक आ जाती है। पुरस्कार को अच्छा या बुरा बनाना हमारे ऊपर निर्भर है। वह माता-पिता जो शहर से लौटते समय अपने बच्चों के लिए खिलौने या मिठाई लिये बिना खाली हाथ घर में घुसते घबराते हैं, वे पुरस्कार को एक गलत महत्त्व देते हैं और उनको हानिकारक बना देते हैं।

पुरस्कार देने का वायदा करना बहुत खतरनाक है। "अगर अगले महीने तुम्हारे स्कूल की रिपोर्ट इस महीने से अच्छी होगी तो तुमको एक रुपया मिलेगा।" सम्भव है कि इस प्रलोभन का परिणाम अच्छा हो, पर इसका परिणाम हमेशा ऐसा नहीं हो सकता जैसा कि हम चाहते हैं। इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि बच्चे धोखा देना सीखें; इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि वह बच्चा जो यथाशक्ति पूरा प्रयत्न कर रहा है, इस प्रलोभन से चिन्तित-सा हो जाए: उसके

फलस्वरूप उसके नम्बरों में कमी भी हो सकती है, क्योंकि बच्चा उस पुरस्कार को प्राप्त करने की कोशिश में, सम्भव है, भयभीत हो जाय और आवश्यकता से अधिक गम्भीर हो जाय, क्योंकि ऐसी दशा में वास्तविक प्रोत्साहन का स्थान वह पुरस्कार ले लेता है।

डाक्टरों का कहना है कि जितने लोग उनके पास आते हैं उनमें लगभग एक-तिहाई ऐसे होते हैं जिनके शरीर में कोई ऐसा विकार नहीं होता जिसके बारे में डाक्टर कुछ कर सकता हो। परन्तु इसमें भी सन्देह नहीं कि इन लोगों को कोई-न-कोई व्यथा तो होती ही है। उनमें चाहे और कोई भी विकार हो पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनमें कोई शारीरिक विकार नहीं होता, बल्कि उनकी व्यथा का कारण उनका भावनात्मक जीवन होता है।

उनमें यह बात कैसे पैदा हुई ? किसी समय न जाने कैसे उन्होंने अनुभवों के पथ पर चलते हुए भय और चिन्ता और परेशानी का एक बोझ अपने सिर पर रख लिया था जो अब बढ़ते-बढ़ते इतना भारी हो गया है कि सहा नहीं जाता। ऐसे मनुष्य का शरीर चाहे जितना बलिष्ठ हो पर उसकी आत्मा को रोग लग चुका होता है। कभी तो ऐसा होता है कि इन चिन्ताओं का सम्बन्ध बचपन की किन्हीं घटनाओं से होता है—किन्हीं ऐसी परिस्थितियों से जिनको बड़ी आसानी से सुधारा जा सकता था, यदि माता-पिता को केवल इतना मालूम होता कि उनके बच्चे को कौनसी चीज़ चिन्तित किये रहती है। यदि हम बच्चे के व्यवहार की छोटी-मोटी खराबियों को टाल जाया करें तो इस बात का खतरा नहीं रह जायगा कि बच्चे को अकारण ही यह चिन्ता लगी रहे कि उसके माता-पिता उससे खुश हैं या नहीं।

इसमें सन्देह नहीं कि कभी-कभी बच्चे ऐसी बातों के बारे में चिन्तित रहने लगते हैं जिनमें माता-पिता का कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। यदि घर में खुशी, हँसी-मजाक और हर्ष का वातावरण रहे तो उससे इस प्रकार की परिस्थिति का समाधान हो सकता है।

माता-पिता अनजाने ही किस प्रकार बच्चों में यह प्रवृत्ति पैदा कर देते हैं कि उन्हें अपने बारे में आवश्यकता से अधिक चिन्ता रहने लगे, इसका एक उदाहरण बच्चों की बीमारी के प्रति उनके माता-पिता के रवैये में मिलता है। उदाहरण के लिए श्रीमती 'क' बीमारी को बहुत महत्त्व देती है। किसी रोग का जरा-सा सन्देह-मात्र होने पर वह बच्चे को बिस्तर पर लेटा देती हैं और अकारण ही डॉक्टर को बुलवा भेजती हैं। यदि उनसे यह कहा जाय तो उनको बहुत दुख

होगा कि वह ऐसा केवल इसलिए करती हैं कि वह अपने बच्चे से बहुत झुँझलाती है और वास्तव मे वह उसकी सेवा सुश्रूषा की जिम्मेदारी से बचना चाहती हैं, ऊपर से देखने मे जो चीज प्रेम और बच्चे के लिए अत्यधिक चिन्ता मालूम होती है वह वास्तव मे बच्चे की देखभाल करने के विचार से पैदा होने वाली झुँझलाहट को छिपाने का एक प्रयास-मात्र होता है। क्या वह इतनी 'बडी' नहीं हैं कि उनमे जिम्मेदारी लेने की इच्छा हो? क्या छोटी उम्र मे उनको अपने छोटे भाई-बहनों की बहुत देखभाल करनी पडी थी?

यदि यह सच है, तो यह बडे खेद की बात है। लेकिन इसका बच्चे पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इस बात से उसमें यह प्रवृत्ति पैदा होगी कि वह जीवन-भर लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए बीमारी को एक बहाना बनाएगा। वह अपनी माँ की भावनाओं को देखता तो है पर उनको समझता नहीं, इसीलिए वह इस कोशिश मे कि उसकी माँ उसके लिए भाग-दौड करे, बीमारी को एक साधन बना लेता है।

बच्चे को आदर्श बालक बनाने के प्रयत्न में हम माता-पिता किस प्रकार उसके विकास मे बाधा डालते हैं इसका एक उदाहरण इस बात मे मिलता है कि हम सामाजिक आचरण पर बहुत ही ज्यादा जोर देते है। हम बच्चो को जरूरत से ज्यादा हद तक यह समझाने की कोशिश करते है कि साफ-सुथरा रहना कितना आवश्यक है, अमुक काम 'करना' चाहिए और अमुक काम नहीं 'करना' चाहिए ('डकार मत लो'; 'धन्यवाद दो')। ऐसा करने मे हम बच्चो की अल्पवयस्कता का ध्यान नहीं रखते और इस बात की जरूरत को नहीं समझते कि बच्चो को ये बातें धीरे-धीरे सीखनी चाहिएँ।

जब गलत बात पर ज़ोर दिया जाता है

बच्चो को अच्छी शिक्षा देने के उत्साह मे यह बहुत आसानी से हो सकता है कि हम कुछ बातों को जरूरत से ज्यादा महत्त्व दे या गलत बातो को महत्त्व दें। बच्चो के डकार लेने पर हमारा नाक-भौं सिकोडना उन लोगों को अजीब-सा मालूम होगा जो इसमे कोई सामाजिक बुराई नहीं देखते। यदि हम जरा सोचें तो बिलकुल इसी प्रकार पश्चिमी देशों के लोगो को यह बात अजीब-सी मालूम होगी कि बच्चों को यह शिक्षा दी जाय कि वे अपनी इन्द्रिय को घृणा की दृष्टि से देखें। परन्तु फिर भी अनेक माताएँ अपने छोटे बच्चे को पाखाने या पेशाब से खेलते देखकर अपनी घृणा की भावना को व्यक्त करती है जिसके फल-

स्वरूप बच्चे मे अपनी इन्द्रिय के प्रति घृणा उत्पन्न होती है।

६ वर्ष के या १२ वर्ष के बच्चों से इस बात का क्या सम्बन्ध है? सम्बन्ध केवल इतना है कि बचपन की 'भूली हुई' घटनाएँ बच्चे की स्मृति मे जमा नहीं होतीं—यदि स्मृति में जमा हों तो उनका पता बडी आसानी से चल सकता है—बल्कि वे और भी गहराई में, उसकी भावनाओं में, जमा होती रहती हैं। यदि उसके माता-पिता उसके दिमाग मे यह विचार या कोई और विचार जबरदस्ती बिठा दें, जिसके कारण उसके मन में अपराध की भावना उत्पन्न हो, तो यह सम्भव है कि वह अपने ऊपर जीवन-भर अकारण ही एक अस्वाभाविक-सा बन्धन अनुभव करेगा। कुछ औरतों में जो भावनारहित होती है, जिनको इन्द्रिय-सम्भोग से घृणा होती है, इस भावना का जन्म शायद इस कारण होता है कि बचपन में उनके दिमाग में शरीर से निकलने वाले इन व्यर्थ पदार्थों की गन्दगी के प्रति घृणा जरूरत से ज्यादा हद तक बिठा दी जाती है। और चूँकि योनि का सम्बन्ध इन्हीं से होता है, इसलिए इन स्त्रियों के दिमाग में दोनों बातें परस्पर सम्बन्धित हो जाती हैं।

बाज बच्चे गन्दगी और कीटाणुओं से जरूरत से ज्यादा सावधान रहने लगते हैं। इनके बारे में वह जो बातें इधर-उधर सुनते हैं उनका उन पर इतना गहरा असर पडता है कि उनके लिए घर से बाहर कहीं खाना खाना असम्भव हो जाता है। बड़े होकर वे किसी होटल में उस समय तक नहीं खा सकते जब तक वे चाँदी की तरह साफ न हों। वे अपनी प्लेट और गिलास को इतने ध्यान से देखते हैं कि कहीं उन पर किसी के हाथ का निशान तो नहीं लगा रह गया है। बाज बच्चे ऐसे होते हैं कि यदि उन्होंने कहीं यह सुन रखा है कि दूध से रोग के कीटाणु फैलते हैं, तो वे दूध से इतनी घृणा करने लगते हैं कि वे बार-बार इस बात की घोषणा करते हैं और हमेशा के लिए यकीन करने लगते हैं कि दूध उनको 'अच्छा नही लगता।'

ऐसे लोग जिनमें इस प्रकार की अरुचियाँ होती हैं उनको हम 'नखरीला' कहते है, परन्तु यह परिभाषा केवल उनकी समस्या की ऊपरी सतह की व्याख्या करती है। वास्तव में उनके भय और अरुचि की जड़ें बहुत गहरी होती हैं और उनकी यह प्रवृत्ति हानिकारक होती है।

जिस बच्चे के माँ-बाप उस पर तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगाते हैं वह बच्चा स्वयं दूसरों की गलतियों और कमजोरियों के प्रति बहुत सजग हो जाता है

और हर कदम पर उनकी आलोचना करने पर तैयार रहता है। यदि बच्चे को जरूरत से ज्यादा इस बात की चिन्ता रहे कि वह अपने माता-पिता की आशाओं के अनुसार चल रहा है या नहीं, तो इसका परिणाम यह हो सकता है कि उसका व्यवहार बेतुका-सा हो जाय और उसके इस व्यवहार में और इस व्यवहार के कारण में स्पष्टतः कोई सम्बन्ध भी न दिखाई दे। यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे दूसरे लोगों से मिल-जुल सकें और उनसे हॅस-बोल सकें तो पहले हमें खुद अपने बच्चों को बच्चों की तरह देखना चाहिए। बच्चों को वह बनाने का प्रयत्न करना जो वह नहीं है, या उनको किसी ऐसे आदर्श व्यवहार के अनुसार चलने पर मजबूर करना, जो हमने अपने दिमाग में स्थापित कर रखा है, बहुत अनुचित होगा। सौभाग्य-वश अधिकाश माता-पिता अपने बच्चो को इतना ज्यादा चाहते हैं कि वे इस प्रकार की कोशिश नहीं करते।

घर के हर्षमय वातावरण का प्रभाव

आदर्श घर की व्याख्या करना बिलकुल व्यर्थ है, क्योंकि अनेक प्रकार के वातावरणों से बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। लेकिन एक बात हम सब अच्छी तरह जानते हैं कि बच्चों को खुश रखने के लिए जो चीज जरूरी है (इसको छोडकर कि उनके माता-पिता कैसे हैं) वह है कोई ऐसी जगह जहाँ बच्चे बच्चों की तरह रह सकें। इसका सीधा मतलब यह हुआ कि ऐसा घर जो केवल बड़े लोगों की जरूरतो को पूरा करता है वह बच्चो के लिए बिलकुल बेकार है। यदि घर मे इस बात का बडा ध्यान रखा जाता है कि मेज-कुरसी आदि की पालिश न खराब होने पाए तो बच्चे के हाथ-पॉव इतने ज्यादा बॅध जाते है कि वह अपने बचपन का पूरा आनन्द नहीं उठा सकता। पुराने जमाने की बैठकों के स्थान पर, जिनमे हमेशा एक निस्तब्ध गम्भीरता छाई रहती थी, आजकल जिस प्रकार के रहने के कमरे होते है उनसे यह पता चलता है कि परिवार की जरूरतों के बारे में हमारी भावनाएँ किस प्रकार बदल गई हैं।

वास्तव में, घर का वातावरण उतना ही महत्त्व रखता है जितना घर का आकार। ऐसे परिवार भी होते हैं जो छोटी-छोटी कोठरियों में सुखी जीवन व्यतीत करते है और इसके विपरीत ऐसे परिवार भी होते हैं जो इतने बड़े-बड़े मकानों में रहते हैं कि उनकी समझ मे नहीं आता कि वे उनके अनेक कमरों का क्या प्रयोग करें, और फिर भी उनका जीवन दुखमय रहता है।

हमारे समाज मे इस बात को बहुत कम महत्त्व दिया जाता है कि परिवार

के हर व्यक्ति के लिए कोई ऐसी जगह हो जहाँ वे एकान्त-भाव से रह सकें। दिन-प्रति-दिन घर और फ्लैट छोटे होते जा रहे हैं। इनकी देखभाल रखना तो अपेक्षतः आसान है पर इनमें लोग बहुत घुल-मिलकर रहते हैं। इस बात की सुविधा प्रदान करने के लिए तरह-तरह के अनोखे उपाय ढूँढे जाते हैं कि बच्चे जैसे जैसे बडे होते जायँ वे अपनी इच्छानुसार परिवार के दूसरे लोगों से अलग भी कहीं थोड़ा-सा समय बिता सकें। जब जगह बहुत कम होती है तो यह और भी जरूरी हो जाता है कि हर बच्चे के लिए कहीं अलग उसकी अपनी थोडी-सी जगह हो, चाहे वह एक कोने में एक मेज या उसके पलंग के पास एक आलमारी के रूप में ही क्यों न हो। यदि मकान में कोई ऐसी जगह न हो जहाँ घर का छोटा-मोटा काम किया जा सके तो रसोई को ही इस काम के लिए प्रयोग करना पडता है। मकान में इस प्रकार घुल-मिलकर रहने के लिए, जैसे किसी फली में दाने रहते हैं, बड़े धीरज और बडे आत्म-संयम की जरूरत होती है।

घरों की कमी सचमुच हमारी एक बहुत ही गम्भीर समस्या है। ऐसी दशा में जबकि लाखों परिवार घुटी हुई तंग जगहों में बहुत ही शोचनीय अवस्था में रह रहे हों, छोटी-छोटी कोठरियों और झोपड़ियों में किसी प्रकार जीवन के दिन काट रहे हों, या ऐसे गिरे-पडे पुराने घरों में रह रहे हों जिनको आज से बहुत पहले ही गिरा दिया जाना चाहिए था, यह कहना कि हर बच्चे के पास अलग एक कमरा होना चाहिए व्यंग-सा प्रतीत होता है। ऐसी दशा में जबकि एक ही कमरे में पूरा परिवार रहता हो और उनके लिए नहाने और पाखाने आदि का प्रबन्ध दूसरे २० परिवारों के साथ मिलकर हो, तो यह कैसे सम्भव है कि बच्चे मानसिक रूप से स्वस्थ हों?

लेकिन इस चित्र के कुछ आशाजनक पहलू भी हैं। मकान बनवाते समय, या खरीदते समय या किराए पर मकान लेते समय अब अधिक-से-अधिक परिवार शहर के सिरे पर या शहर के बाहर रहना पसन्द करते हैं, क्योंकि वह बच्चों के लिए खुली जगह, हवा और स्वतन्त्रता की आवश्यकता को समझते हैं। जो नये मकान बनाए जा रहे हैं उनमें बच्चों के लिए खेलने की जगह का विशेष ध्यान रखा जा रहा है।

अधिक काल तक स्थापित रहने वाली परम्पराओं के प्रति बच्चों में प्रेरणा जाग्रत करने के सम्बन्ध में माता-पिता बहुत-कुछ कर सकते हैं—जैसे छुट्टी के दिन पारिवारिक उत्सवों, वर्षगाँठों तथा अन्य विशेष अवसरों के सम्बन्ध में।

इनसे वही सुरक्षा की भावना पैदा हो सकती है जो दीर्घकाल तक निरन्तर किसी समाज में रहने के फलस्वरूप पैदा होती है।

चूँकि आजकल बच्चे अपेक्षतः बहुत जल्दी बाह्य प्रभावों के सम्पर्क में आते हैं, जैसे रेडियो और चित्र, जो उनके जीवन के आरम्भ से ही उनके घरों में मौजूद होते हैं, इसलिए कोई ऐसे उपाय ढूँढने चाहिएँ जिनके द्वारा उनको उन मान्यताओं का महत्त्व समझाया जा सके जो केवल पारिवारिक जीवन में ही पैदा हो सकती हैं। ऐसी शक्तियों का मुकाबला करने के लिए, जो परिवारों को छिन्न-भिन्न किये दे रही हैं, घर के जीवन से भावनाओं को प्राप्त होने वाली सन्तुष्टि वास्तव में बहुत अधिक होनी चाहिए।

अच्छा मनुष्य बनने के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए बच्चों को जिन चीजों की जरूरत है वे उनको केवल उनके परिवार से ही मिल सकती हैं। जिस प्रकार की भावनाएँ बच्चा अपने परिवार के लोगों में एक-दूसरे के प्रति देखता है, उन्हीं के अनुसार दूसरे लोगों के प्रति उसकी भावनाएँ बनती हैं। जब उसे डाँटा जाता है या दण्ड दिया जाता है तो उसका रूप भी वैसा भावनारहित और निर्मम नहीं होता है जैसा बाहर के लोगों के व्यवहार का होता है। बच्चा इस बात को समझता है कि यदि उसके माता-पिता कभी उसे डाँटते या मारते हैं तो इसलिए कि उसके माता-पिता उसका ध्यान रखते हैं और उसकी भलाई उनके लिए इतना महत्त्व रखती है कि वे उसकी गलतियों और भूलों को सुधारते हैं। यदि अभी उसे सब लोग चाहते हैं और उससे बड़ी आशाएँ रखते हैं तो आगे चलकर जब उसका रंग और नाम सब-कुछ 'बदल जायगा' उस समय भी वह जीवन का सामना अधिक आत्म-विश्वास के साथ कर सकेगा।

इतवार के दिन अपने पिता के साथ कहीं सैर को जाते समय बच्चों की उत्सुकता देखकर यह जी चाहता है कि कितना अच्छा होता यदि ऐसा बहुधा हो सकता। जब हम अपने बच्चों के साथ कोई खेल खेलते हैं, हाकी हो या ताश का कोई खेल, तब हमको इस बात का अवसर मिलता है कि हम यह जान सकें कि हमारे बच्चे वास्तव में कैसे हैं। जितनी जल्दी और जितनी ज्यादा हद तक पिता अपने बेटे और बेटियों के जीवन के सम्पर्क में आता है उतनी ही अच्छी तरह वह उनको समझ सकता है और उनके विकास में सहायक हो सकता है। उनके साथ रहकर वह उनको जो-कुछ भी देता है वह विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि स्कूलों और घरों में औरतों का प्रभाव बहुत ही ज्यादा होता है। और बच्चे जो-कुछ



उसे देते हैं उसका तो अनुमान लगाना असम्भव है, इस बात से तो सभी पिता सहमत होंगे। जिन लोगों को बहुत से बच्चों के परिवार के लालन-पालन का अनुभव है उनको अनेक बार इस बात पर आश्चर्य करने का अवसर मिलता है कि बच्चे उनके व्यक्तित्व पर किस प्रकार प्रभाव डालते हैं।

हम स्थायित्व कैसे प्रदान करें

हममें से कुछ लोगों को यह याद होगा कि एक जमाने में परिवार का जीवन इससे कहीं ज्यादा स्थायी था जितना आज है। वह करोड़ों बच्चे और नवयुवक जो किसी एक जगह पर जमकर नहीं रहने पाते, उनका हमारे ऊपर बहुत बड़ा ऋण है। किसी-न-किसी तरह हमको उनके लिए कोई ऐसी चीज़ पैदा करनी चाहिए जो रहन-सहन के सुरक्षित ढंग का स्थान ले सके।

आजकल ऐसे इलाकों में भी जहाँ बहुत से परिवारों के अपने निजी मकान होते हैं, वहाँ भी १५ या २० बच्चों में शायद एक बच्चा ऐसा हो जो अपने जन्मकाल

से एक ही मकान मे रहता आया हो। बडे शहरो मे बहुत से परिवार साल मे एक बार या इससे भी अधिक बार अपना निवास-स्थान बदल देते है। जैसे-जैसे लगान पर खेती करने वाले किसानों की संख्या बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे किसान परिवारों में भी एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान चले जाने का चलन हो गया है।

ऐसी परिस्थिति में परिवारो मे पूर्वजो के जमाने से सुरक्षित धरोहरो और पैतृक सम्पति की—जिसे एक अमरीकी लेखक एच० एल० मेन्केन ने परिवार के 'पवित्र कूडे' का नाम दिया है—बहुत कमी हो गई है। इस दशा मे हम बच्चो मे 'अपनी सम्पत्ति' की भावना या पारिवारिक जीवन के स्थायी स्वभाव का ज्ञान कैसे पैदा कर सकते हैं? यदि परिवार मे ऐसी परिचित चीजों का सर्वथा अभाव हो, जिन्हे बड़ी मूल्यवान वस्तुओ की भाँति रखा जाता हो, जो परिवार के पिछले जीवन का प्रतीक हो, तो क्या बच्चा किसी ऐसी प्रेरक शक्ति की कमी का अनुभव करता है जो पूर्वजो के प्रति गर्व की भावना से उत्पन्न होती है?

बच्चो मे यह भावना पैदा करने मे, कि परिवार के जीवन का क्रम हमेशा चलता रहता है, जिस एक बात का सबसे ज्यादा हाथ है वह शायद यह है कि आज जीवित दादाओ और दादियो की सख्या पहले से बहुत अधिक है। बच्चों के दादाओ और दादियो को यह प्रोत्साहन देना चाहिए कि वे बच्चो को अपनी युवावस्था के बारे मे कहानियाँ सुनाएँ और पुराने गीतों के द्वारा बच्चों के सामने अतीत का एक चित्र खींच दें।

वे माता-पिता जिनको बार-बार एक स्थान छोडकर दूसरे स्थान पर जाना पडता है, इस बात का प्रयत्न कर सकते है कि वे अपने बच्चो के नये मित्रो के साथ प्रेम-पूर्ण मित्रता का भाव रखें। उन लडको और लडकियो को, जिनको बार-बार अपने मित्रों से सम्बन्ध-विच्छेद करना पडता है, एक ऐसे घर की आवश्यकता होती है जहाँ नये मित्र बनाने मे उनको प्रोत्साहन मिले।

परन्तु मित्रता के नये सम्बन्ध उस समय तक स्थापित नहीं हो सकते जब तक नये पडोसी भी उदार और मित्रतापूर्ण प्रकृति के न हों। जो लोग निश्चित रूप से किसी विशेष समाज मे स्थापित हो चुके हैं, वे बिना कुछ सोचे-समझे नये लोगो से मेल-जोल बढ़ाने से इन्कार कर सकते है। विशेष रूप से इस कारण भी कि जिन लोगो को निरन्तर एक स्थान छोडकर उन्हें [illegible] दूसरी जगह जाना पडता है उनके जीवन की पृष्ठभूमि और उनके रीति-रिवाज बहुत भिन्न होते हैं। और इसीलिए जो लोग उस स्थान के समाज मे बहुत दिनों से रहते आए है नए

वहाँ स्थापित हो चुके हैं वे नवागन्तुकों के रीति-रिवाजों और उनके रहन-महन के ढंग को देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, क्योंकि वे उन रीति-रिवाजों से अपरिचित होते हैं। उनके बच्चों में भी बड़ी आसानी से यह धारणा पैदा हो सकती है कि वे अपने नये पडोसी के बच्चों से 'उन्नतर श्रेणी के' हैं। इस प्रकार के अमित्रतापूर्ण वातावरण के कारण दोनों दलों के बच्चों को चोटें लगती हैं पर उन बच्चों के घाव ज्यादा स्पष्ट होते हैं जिनको लगातार संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है; जिनमें यह भावना पैदा कर दी जाती है कि वे उस वातावरण में खप नहीं सकते।

इन घावों को कौन अच्छा कर सकता है या रोक सकता है? वे परिवार जिनको इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान मारे-मारे नहीं फिरना पडता है उनका यह कर्तव्य है कि वे अपने पड़ोसियों के लिए कोई रचनात्मक कदम उठाएँ। ऐसे माता-पिता स्कूलों द्वारा किये जाने वाले प्रयोगों में योग दे सकते हैं जहाँ सच्चे भाई-चारे को बढ़ाने के नये-नये उपायों की खोज की जा रही है। समाज के हर समूह में बहुत सी ऐसी बातें होती हैं जिनसे दूसरे समूहों के जीवन को बहुत सी नई चीजें मिल सकती हैं। अपने संगीत, कला, नृत्य, विशेष प्रकार के भोजन तथा जन-संस्कृति की अन्य परम्पराओं में एक-दूसरे को शरीक करके हम अपने आनन्द और अपने मेल-जोल को बढा सकते हैं।

हमारे अधिकांश स्कूल भेदभाव की उन कुत्सित भावनाओं को जड से उखाड़कर फेंकने की यथाशक्ति कोशिश कर रहे हैं जो संकीर्ण विचारों और अज्ञान से जन्म लेती हैं। हम माता-पिताओं का यह कर्तव्य है कि हम मालूम करें कि हम उनकी और अधिक सहायता किस प्रकार कर सकते हैं। एक बात तो हम यह कर सकते हैं कि हम अपने शब्दों को सोच-समझकर प्रयोग करें। ऐसी बातें हमको जबान पर भी न लानी चाहिएँ, जिनसे दूसरों की निन्दा होती है, और जिनका प्रयोग हम इसलिए नहीं करते कि हम उनमें विश्वास रखते हैं बल्कि केवल इसलिए कि हम उनको बार-बार सुनते हैं। अपने प्रतिदिन के जीवन में हमें अपने पड़ोसियों के प्रति प्रेम-भाव दिखलाना चाहिए—अपने कर्मों में भी और अपनी बातों में भी। उदाहरण के लिए वोट देते समय हमें संकीर्णताजनित भेद-भाव से दूर रहना चाहिए। क्योंकि हानिकारक शंकाएँ जातियों, कौमों और धर्मों के प्रति सन्देह की भावनाएँ और राजनीतिक विचार जहर से भी ज्यादा मुश्किल से दूर होते हैं, इसलिए हमको तमाम ऐसी संस्थाओं की सहायता करनी चाहिए जो इन कुशक्तियों के विरुद्ध लड़ने के उपाय खोज रही हैं। हर वह परिवार जो यथाशक्ति प्रयत्न करता

है, चाहे उसके प्रयत्नों का स्पष्ट परिणाम बहुत नगण्य प्रतीत होता हो, उस शिक्षा में सहायता करता है जिसके द्वारा हम महाविनाश से बच सकते हैं।

हममे से बहुत से लोगों को 'अतीत के सुनहरे दिनों' के बारे में गलत धारणाएँ होती है। पहली बात तो यह कि अतीत के दिन अधिकाश लोगों के लिए इतने सुनहरे नही थे और दूसरी बात यह कि वे दिन अब लौटकर आने वाले नहीं। इसलिए हमे अपने बच्चों के प्रति अपने कर्तव्य से बचने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

हमें अपने बच्चों का पालन-पोषण इस प्रकार करना चाहिए कि वे अपनी समस्याओं को स्वयं हल करने की आशा रखें और उसके लिए उत्सुक भी रहें और उनको दूसरों की राय से दबना न पड़े जो जबरदस्ती उन पर बने-बनाए हल लादने का प्रयत्न करेंगे। इसके साथ ही हमको बच्चों की इसमें भी सहायता करनी चाहिए कि वे सामान्य उद्देश्यों के लिए दूसरों के साथ मिलकर काम करने की जरूरत को समझें और नये विचारों तथा रहन-सहन के नये ढंगों को स्वीकार करने में हठधर्मी से काम न लें।

हममे से अधिकाश माता-पिताओं को बचपन के दिनों की बातों की प्रतिध्वनि सुनाई देती है जब हमसे कहा जाता था कि "अच्छे बालक बनो।" हम भी बिना सोचे-समझे इसी प्रतिध्वनि को फिर दोहराते हैं जब हम अपने बच्चों से यह कहते हैं, "अच्छे लड़के बनो!" या "अच्छी लड़कियाँ क्या ऐसी होती हैं!"

यदि हम एक क्षण के लिए अपने-आप से यह प्रश्न करें कि इस प्रकार के आदेशों और शंकाओं से हमारा क्या तात्पर्य है तो हमें यह मानना पड़ेगा कि हम ऐसा केवल इसलिए करते हैं कि बुरे व्यवहार से डर लगता है। इस प्रकार हम बच्चों को इस बात की चेतावनी-सी देते हैं कि वे ऐसा कोई काम न करें जिसके कारण हमको लज्जित होना पड़े या हमारे ऊपर किसी प्रकार का आरोप लगाया जाए। माता-पिता आखिर इन्सान ही तो होते हैं वे ऐसी हर बात से घबराते हैं जिसके कारण उन पर कोई लांछन लग सके। जब उनका बेटा किसी [illegible] घर की खिड़की का शीशा तोड़ देता है या उनकी मोटर में खरोंच लगा देता है, तो उनको यह अनुभव होता है कि उनके बेटे की इस हरकत से माता-पिता की [illegible] से उन पर आँच आती है, इसलिए उनके गर्व को ठेस पहुँचती है।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हम अपने बच्चों [illegible] एक [illegible] समझते हैं और यह चाहते हैं कि उनके [illegible]

ऊँचा करके चल सके। लेकिन यह बात आश्चर्य की जरूर है कि हम इस फेर में इतने अन्धे हो जाते हैं और निरन्तर अपने-आपको इस धोखे में रखते हैं कि हम जो-कुछ करते हैं वह अपने बच्चों की भलाई के लिए करते हैं जबकि वास्तव में इसका उतना ही बड़ा कारण यह भी होता है कि हम यह सब-कुछ अपने सन्तोष और अपनी ख्याति के लिए करते हैं।

'अच्छाई' दूसरी चीजों के साथ अपने-आप पैदा होती है

वास्तव में, यदि 'अच्छाई' पर ज्यादा जोर न दिया जाय तो बच्चे बड़े होकर ज्यादा अच्छे निकलते हैं, इसकी अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा होगा कि जिन परिस्थितियों में वे रहते हैं उनको ऐसा बनाया जाय कि 'अच्छाई', खुशी और हर मामले में सन्तुलन अपने-आप पैदा हो सके। जब हम अपने व्यवहार में बच्चे के अच्छे उद्देश्यों के प्रति अविश्वास प्रकट करते हैं तब हमारे बीच एक प्रकार का खिचाव, एक प्रकार की दूरी पैदा हो जाती है।

यदि अपने बच्चों को 'अच्छा' बनाने के फेर में हम बहुत उतावले हो जाते हैं तो बड़ी आसानी से हममें हर बात की आलोचना करने की आदत पड़ जाती है। क्योंकि हमारे जमाने में आज्ञा-पालन पर बड़ा जोर दिया जाता था, इसलिए हम भी आँख मूँदकर वही ढर्रा अपना लेते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि वास्तव में हम चाहते यह हैं कि बच्चे अपनी इच्छा के अनुसार ऐसे आदर्शों को अपनाएँ जिनको वे आगे चलकर निभा सकें, न कि उनको ऐसी कठपुतलियाँ बनाकर छोड़ दिया जाय जो किसी दूसरे के विचारों के अनुकूल डोरी के इशारे पर नाचती रहें। उन बच्चों को, जिनको हम अपने बनाये हुए नियमों का यन्त्रवत् पालन करने पर बाध्य करते हैं, वह शक्ति प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता जो अपने-आप समस्याओं को हल करने से प्राप्त होती है।

यदि प्रेमा अपने माता-पिता के आदेशों का निर्विरोध पालन करती है तो इसका परिणाम यह होगा कि जब वह अपने घर से पहले-पहल बाहर जायगी तो वह अपने नये मित्रों के निर्णय पर आवश्यकता से अधिक भरोसा करने लगेगी। इसके विपरीत मीरा के माता-पिता उसे स्वयं सोचने का अवसर देते हैं, जिसके फलस्वरूप उसने अपनी गलतियों से बहुत सी बातें सीखी हैं (उदाहरण के लिए, उसने जिद करके एक कोट अपनी इच्छा के अनुसार खरीदा पर वह शीघ्र ही उससे ऊब गई लेकिन उसे कई वर्षों तक उसी कोट को पहनना पड़ा)। जब वह बड़ी हो गई तो वह इस योग्य हो गई कि स्वयं

भले-बुरे की पहचान कर सके, उसे जरा-जरा-सी चीज के लिए अपने मित्रों से सलाह न लेनी पड़े।

स्वतन्त्र व्यवहार को क्यों प्रोत्साहित किया जाय

'आज्ञा-पालन' पर बहुत अधिक जोर देने का परिणाम यह तो होता ही है कि बच्चे को आत्मनिर्भरता की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता, इसके अतिरिक्त इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि हठ स्वभाव और प्रखर बुद्धि के बालक को यह लालच हो कि वह दिखावे के लिए तो आपके हर आदेश के सामने सिर झुकाता जाय पर अन्दर-ही-अन्दर विद्रोह करता रहे। आगे चलकर इसके फलस्वरूप निश्चय ही उसका जीवन सुखी नहीं रह सकता, क्योंकि जब ऐसा बच्चा बड़ा होकर ऐसी उम्र को पहुँचता है जब स्वतन्त्रता की इच्छा बहुत तीव्र होती है तब वह अपने माता-पिता के द्वारा खड़ी की हुई पाबन्दियों की दीवारों को सहसा ढा सकता है। उसके ऐसा करने से उसके माता-पिता को आश्चर्य भी होता है और दुख भी पहुँचता है। अब तक वह सारी भावनाओं को अपने मन में ही दबाए रहा, उसके माता-पिता को इसका लेश-मात्र भी ज्ञान नहीं हुआ कि उसके शील स्वभाव के अन्दर-ही-अन्दर क्या संघर्ष चल रहा था।

तरुण, जिसके माता-पिता को अब तक उसकी तरफ से 'किसी प्रकार की भी परेशानी' नहीं हुई थी, सहसा १२ वर्ष की अवस्था को पहुँचते ही ऐसे लड़कों के साथ मेल-जोल बढ़ा लेता है जिनको उसके माता-पिता पसन्द नहीं करते, या स्कूल की छुट्टी होने के बहुत देर बाद तक घर लौटकर नहीं आता और न यही बतलाता है कि वह इतनी देर कहाँ लगाता है। वह इस नतीजे पर पहुँच जाता है कि अब उसके माता-पिता वह काम नहीं 'करवा सकते' जिनको वह आज तक चुपचाप करता आया था, जिन बच्चों को उसके परिवार वाले 'अच्छी सोहबत' समझते हैं उनको फुटबाल खेलने में रुचि है जबकि उसे रेडियो बनाने में ज्यादा दिलचस्पी है। सम्भव है कि उसने किसी ऐसे लड़के को ढूँढ लिया हो जिसे उसके माता-पिता न जानते हों पर जिसके विचार और जिसकी रुचियाँ उसके अनुकूल हों।

जो चीज हमारे सामने सहसा एक विद्रोह के रूप में आ [illegible] वह वास्तव में एक ऐसी आग होती है जो बहुत दिनों तक [illegible] सहसा भड़क उठी है।

यह भी सम्भव है कि यद्यपि माता-पिता बच्चे की [illegible]

से सब-कुछ करें, पर बच्चा उनके प्रभुत्व से बचने के उद्देश्य से उनको धोखा देने लगे।

११ वर्षीय वीना, जो अपनी अवस्था की अधिकांश लड़कियों से ज्यादा समझदार है, अपनी माँ से तो यह कहकर जाती है कि वह कुमुद के घर पढ़ने जा रही है पर जाती है वह लीला के यहाँ, जो उम्र में उससे बड़ी है पर उसको वीना के प्रति एक विचित्र-सा आकर्षण है क्योंकि वीना लड़कों को बेवकूफ बनाना और उनसे मज़ाक करना खूब जानती है। वीना इसके लिए किसी की अनुमति लेने की जरूरत नहीं समझती। वह अच्छी तरह जानती है कि उसकी माँ को केवल इस बात से बहुत आघात पहुँचेगा कि वह लड़कों में दिलचस्पी रखती है। या दूसरा उदाहरण लीजिए। चन्दू के पिता ने उसके लिए बन्दूक लेने से इसलिए इन्कार कर दिया कि वह अभी बहुत छोटा है। चन्दू ने अपने पैसे बचाकर एक बन्दूक खरीद ली और उसे सुभाष के घर पर रखने लगा।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वीना के माता-पिता उसे मनमानी करने दें या चन्दू के माता-पिता चुपचाप उसकी हर इच्छा पूरी कर दिया करें। लेकिन उनको यह समझने की जरूरत है कि विकास के साथ बच्चों में कुछ परिवर्तन अनिवार्य रूप से आते हैं और यह कि बच्चों के हर काम को नियमबद्ध करने की आशा रखना सरासर मूर्खता है। इन दोनों प्रकार के माता-पिताओं को और हम सबको यह याद रखना चाहिए कि जिस काल में बच्चे बढ़ रहे होते हैं उस समय उनके व्यवहार में 'प्रतिरोध' का अंश होना अनिवार्य है। वे बच्चे जो अपने घर के जीवन से सर्वथा सन्तुष्ट रहते हैं और जिनको स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने की कोई आवश्यकता नहीं होती, वे भी कभी-कभी अपनी दशा पर विचार करते हैं और उसी के अनुसार प्रतिरोध करने लगते हैं।

चरित्र का विकास कैसे होता है

हम सब यह चाहते हैं कि हमारे बच्चे बड़े होकर सदाचारी और ईमानदार हों, उनका नैतिक स्तर ऊँचा हो और उनका चरित्र अच्छा हो। लेकिन यदि हम समझते हैं कि बच्चों को शिक्षा देने का कोई ऐसा जादू है जो उनको 'चरित्रवान' बना देगा तो हमको निराश होना पड़ेगा। किन्हीं बँधे हुए नियमों के अनुसार चलकर हम बच्चे का पालन-पोषण ऐसा नहीं कर सकते कि हमको आगे चलकर उस पर गर्व हो।

हम इतना अवश्य कर सकते हैं कि बच्चों को ऐसा बना दें कि बुरे कामो की अपेक्षा अच्छे काम करने से उनको ज्यादा सन्तोष मिले, हम उनको बड़े रुचिकर ढंग से इस बात का अभ्यास करा सकते हैं कि वे ऐसे काम करें जो सबको भले लगें। हम इतना तो कर सकते हैं कि हम अपने सोचने और काम करने के ढगों के अनुसार—जो बहुधा बहुत ही बँधे हुए होते हैं जैसे हमारे समाज-सम्बन्धी या राजनीतिक विचार—उन पर दबाव डालकर उनकी प्रवृत्ति को बदलने का प्रयत्न न करें। हम अपने बच्चो के साथ ऐसा अच्छा सलूक कर सकते हैं कि वे डर के मारे गलत काम करने पर बाध्य न हों।

उदाहरण के लिए स्कूल मे धोखा देने के प्रश्न को ही ले लीजिए। बच्चे धोखा क्यो देते हैं? इसके कई कारण हैं। वे सोचते हैं कि उनका अध्यापक उनके साथ अनुचित व्यवहार करता है; वे चाहते है कि वे भी उतने ही अच्छे विद्यार्थी समझे जायँ जितना कि कोई और बालक; वे डरते है कि असफल होने पर उनको दण्ड न मिले। इसके अतिरिक्त और भी कारण हैं। एक बच्चा सम्भव है व्याकरण मे धोखा देता हो क्योंकि व्याकरण उसे नहीं आती, पर गणित मे धोखा देने का विचार भी कभी उसके दिमाग मे न आता हो क्योंकि गणित में वह बहुत तेज है। इसी तरह कोई बालक खेल में तो बेईमानी करता है पर रुपए-पैसे के मामले मे वह बिलकुल बेईमानी नहीं करता। ईमानदारी और बेईमानी का सम्बन्ध विशेष परिस्थितियो से होता है। बेईमानी या ईमानदारी कोई ऐसी चीज नहीं है जो किसी बच्चे के हर काम मे पाई जाती हो और उसके व्यवहार का साधारण नियम हो।

बच्चे के नैतिक विकास पर जिस चीज़ का सबसे पहले प्रभाव पड़ता है वह है उसका घर, और यह प्रभाव ऐसा होता है जो कभी खत्म नहीं होता। घर मे उसे चार भिन्न प्रकार की सहायताएँ मिलती हैं : माता-पिता का उदाहरण; उनके आदेश और प्रेरणाएँ, गलती करने पर डाँट और दण्ड; और उन कामो के सुखद और उत्साहजनक परिणाम जिनके लिए उसकी प्रशंसा की जाती है। घर मे उसे केवल इस बात की आवश्यकता होती है कि उसकी गुप्त क्षमताओं को विकास का अवसर मिले। हमको चरित्र के विकास में बाधा न डालने का भी उतना ही ध्यान रखना चाहिए जितना हम उस विकास के संचालन का रखते हैं।

बच्चे नैतिकता के नियमों को कैसे सीखते हैं

बच्चा ईमानदार और चरित्रवान् बनना भी उसी प्रकार सीखता है जैसे वह

दूसरी बातें सीखता है : यह तब सम्भव होता है जब बच्चों को ठीक काम करने से सन्तोष मिलता है (चाहे वह माता-पिता के खुश होने से मिले या उस खुशी से जो स्वयं उनको इस बात से होती है कि उनसे जो आशा की जाती थी उसे उन्होंने पूरा कर दिखाया), या जब वे देखते हैं कि अनुचित व्यवहार से उनको दुख और पीड़ा ही मिलती है, (लेकिन इस मामले में कभी-कभी ज्यादती भी हो जाती है, जैसे यदि किसी बच्चे को किसी गलती पर बहुत कड़ा दण्ड दिया गया है तो वह इस भय से कि कहीं उसे दुबारा वैसा ही दण्ड न मिले, झूठ बोलने लगता है) या जब वे देखते हैं कि उचित व्यवहार का परिणाम भी सुखद होता है।

जब माता-पिता लापरवाह होते हैं और बड़ी ढिलाई दिखाते हैं और उनके पास बच्चों का पथ-प्रदर्शन करने की कोई निश्चित योजना नहीं होती, उस दशा में बच्चों को इस बात का मौका मिल जाता है कि वे ऐसे काम करके भी, जिनको वे स्वयं गलत समझते हैं 'साफ बच जायँ।' इस सम्बन्ध में हमारे निजी नैतिक आचरण और विचारों के महत्त्व को भुलाया नहीं जा सकता। क्योंकि बच्चा सबसे पहले हमारे सम्पर्क में ही आता है और अनजाने ही वह हमारे व्यवहार के ढंग को ही 'एक-मात्र' सही ढंग समझने लगता है, इसलिए आगे चलकर पड़ने वाले प्रभावों की अपेक्षा हम माता-पिताओं को बच्चों पर प्रभाव डालने का बहुत बड़ा सुअवसर मिलता है।

साथ ही यह एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व भी है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम जिन बातों पर जोर दें वह सचमुच महत्त्वपूर्ण हों। यह सम्भव है कि बच्चा जब बड़ा होकर युवक बन जाय उस समय वह खाना खाने आदि के मामले में बड़ा तमीजदार हो, पर इसके साथ ही उसे इसका कुछ भी ज्ञान न हो कि जिनके प्रति वह इतना शिष्ट व्यवहार करता है, उनके प्रति उसके कुछ कर्त्तव्य भी हैं जो उसको पूरे करने चाहिएँ। यदि उसकी माता ने इन दोनों में से केवल पहली बात पर ही जोर दिया है और दूसरी बात की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया तो इसमें बच्चे का क्या अपराध है, यदि वह यह समझता है कि हर बार जब माँ कमरे में आए तो उसका कुरसी छोड़कर खड़ा हो जाना माँ को दिये हुए वचन को पूरा करने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

जब बच्चे थोड़े बड़े हो जाते हैं और स्कूल की प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ रहे होते हैं, उस समय तरह-तरह के दूसरे प्रभाव उनको आ घेरते हैं। बच्चे के चरित्र-निर्माण में माता-पिता के बाद जिन लोगों का सबसे ज्यादा हाथ होता है वे होते

है उसके साथ के दूसरे बच्चे। चूँकि बच्चे यह चाहते है कि लोग उनको चाहे और उनकी प्रशंसा करें इसलिए वे अपने दल के नेता का बहुत काफी अनुसरण करते हैं। बच्चे के व्यवहार पर उसके मित्रो का प्रभाव उस समय बहुत स्पष्ट रूप से देखने में आता है जब वह अपनी पाठशाला मे होता है या दूसरे बच्चों के साथ मिलकर कोई खेल खेलता है। लेकिन समूह के उत्साह से प्रभावित होकर बच्चा जो-कुछ करता है, जरूरी नहीं है कि समूह से दूर होकर भी वह वैसा ही व्यवहार करे। सम्भव है विजय अपने पडोस के लडको के दल मे मिलकर सडक की बत्ती पर पत्थर फेंकने लगे, लेकिन अकेले ऐसा करने का कभी विचार भी उसके दिमाग में नहीं आयगा।

वे माता-पिता, जो अस्थायी रूप से ही सही, किसी ऐसे स्थान पर रहने पर विवश होते हैं जहाँ पास-पडोस के लडकों का उत्साह ऊँचे स्तर का नहीं होता, इस बात से बड़ी सांत्वना प्राप्त करते हैं कि नेता का अनुसरण करने वाली भावना से प्रेरित होकर बच्चा जो व्यवहार करता है उसका प्रभाव बहुत थोडे ही समय में नष्ट हो जाता है। इस बात का पता लगाया गया है कि समूह के बदलने के साथ ही बच्चे का माप-दण्ड भी बदल जाता है, इसलिए अस्थायी रूप से सम्पर्क मे आने वाले प्रभावों के कारण बहुत ज़्यादा चिन्तित होने की आवश्यक्ता नहीं है। लेकिन इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि बच्चे के घर के जीवन की पृष्ठभूमि अच्छी हो। नलिनी केवल इस कारण चोर नहीं बन सकती कि दूसरी कक्षा की जिन छोटी-छोटी लड़कियों के साथ वह खेलती है वे उसको स्कूल से रंगीन खरिया चुराकर घर ले जाने के लिए उकसाती है। मदन के माता-पिता को यह सुनकर शायद बहुत आश्चर्य हो कि उनका बेटा उन लडको मे से है जो स्कूल के पाखाने की दीवार पर गन्दी-गन्दी बातें लिखते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आगे चलकर मदन यौन-सम्बन्धी कुप्रवृत्तियों मे फँस जायगा।

यदि मदन और नलिनी के कुछ साथी बुरी बाते करते रहते है तो इनका कारण प्रमुखतः यह होगा कि उनकी हरकतो को घर पर किसी विशेष दृष्टि से देखा जाता होगा। नलिनी की गलती ऐसी नहीं है जिसकी उसको आदत पड़ गई हो और जब उसके माता-पिता ने उसे यह समझाया कि हमको वह चीज नहीं लेनी चाहिए जो हमारी न हो तो ईमानदारी के विषय में उसके विचार और भी स्पष्ट हो गए। इसके विपरीत किसी दूसरे बच्चे की माँ सम्भव है यह कहकर उसकी बेईमानी को टाल जाय कि "स्कूल मे तो बहुत-सी खरिया भरी पडी है, और फिर

आखिर हम जो टैक्स देते हैं उसी से तो ये सब चीजें खरीदी जाती हैं।" इसी प्रकार मदन की इस गलती का उसकी शिक्षा के लिए अच्छा प्रयोग भी किया जा सकता है और बुरा भी। मदन के पिता उसे समझा सकते हैं अपनी इन्द्रिय के सम्बन्ध में लड़कों का कौतूहल बहुत ही स्वाभाविक है और दूसरों पर रोब डालने के लिए अश्लील शब्द प्रयोग करना या अश्लील घटनाओं का वर्णन करना बहुधा अपनी ज्ञानहीनता को स्वीकार करना है। ऐसा करने से वह सारी घटना मदन को एक मूर्खता और 'बचपना' मालूम होने लगेगी न कि 'बुरी' बात। यह भी हो सकता है कि मदन के पिता अपने बेटे को इतना कठोर दण्ड दें कि वह समझने लगे कि इन्द्रिय-ज्ञान कोई गन्दी और अपमानजनक चीज है।

हम बार-बार इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि बच्चे के जीवन में जो चीज उसे सबसे ज्यादा प्रभावित करती है वह होता है उसका घर। बच्चा घर के बाहर जो-कुछ सीखता है, घर में आकर उसका विश्लेषण हो जाता है, और यदि बाहर सीखी हुई चीज़ अच्छी होती है तो घर पर उसका समर्थन किया जाता है। यदि परिवार के माप-दण्ड और आदर्श बहुत ऊँचे हों तो बच्चा उन बातों के बारे में प्रश्न करता है जो उन माप-दण्डों पर पूरी नहीं उतरतीं।

जो चीज महत्त्वपूर्ण है वह है नैतिक 'वातावरण'

वे माता-पिता अपने बच्चों को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं, जो दूसरों की खुशामद करके अपने लिए छोटी-मोटी सुविधाएँ प्राप्त करते हैं, या अपनी जरूरतों को प्राप्त करने के लिए बेईमानी के तरीके प्रयोग करते हैं, जैसे 'नजराने' लेना या इस प्रकार के 'उपयोगी लोगों' को ढूँढना जो कानून को धोखा देकर उनके पैसे बचवा सकते हों। अपने माता-पिता के इस अनुभव से प्रभावित होकर सम्भव है कि बच्चे भी अपनी बेईमानी और धोखेबाजी की आदतों पर यह कहकर पर्दा डालने का प्रयत्न करें कि उनकी जरूरतों का एक विशेष महत्त्व है और अनुचित सुविधाएँ प्राप्त करना उनका स्वाभाविक अधिकार है।

एक बार कोई प्रवृत्ति पैदा हो जाय तो उसको मिटाना उतना ही कठिन होता है जितना छलनी में पानी भरना। क्योंकि हम माता-पिता अपनी रुचियों-अरुचियों और विचारों की विशेष दिशा से बहुधा अजान होते हैं इसलिए हम बिना जाने-बूझे इन्हीं प्रवृत्तियों को अपने बच्चों में पैदा करने का प्रयत्न करते हैं। जब ये प्रवृत्तियाँ उन बातों के प्रतिकूल होती हैं, जो बच्चा घर से बाहर सीखता है, तो वह उलझ-सा जाता है; जैसे किसी बच्चे ने कहा, "जब मैं स्कूल में होता हूँ

तब मैं उस बात को ठीक समझता हूँ जो मेरा अध्यापक मुझे बताता है पर जब मैं घर पर आता हूँ तो मुझे अपने माता-पिता की बात ठीक मालूम होती है।"

मनुष्य में एक प्रवृत्ति यह होती है कि वह दूसरों को हानि पहुँचाकर अपने-आप को लाभ पहुँचाना चाहता है। यदि हमारे जीवन में सुरक्षा का अभाव है तो हम कभी कभी इस प्रवृत्ति के धोखे मे फँस जाते हैं, लेकिन हमे इससे बचने का बहुत ध्यान रखना चाहिए। यदि समाज मे कोई समूह बहुत ही अल्पसंख्यक है तो बहुमत वाले समूह अल्पमतो को अपने से 'भिन्न' कहकर उनका तिरस्कार करते हैं। चाहे ऐसे समूह किसी दूसरे धर्म के अनुयायी हो, या 'पूँजीवादी' हों या 'मजदूर दल' के हों, या किसी दूसरी जाति के हों, यदि हमारे बच्चे इनमे से किसी के भी बारे में जल्दबाजी मे अज्ञानपूर्ण विचारो को स्वीकार कर लें तो उनको एक समान हानि होगी।

एक अमरीकन लेखक एस० आर० लेकाक का कहना है, 'स्कूल मे और घर पर, दोनो जगह बच्चों को चरित्रवान बनने की शिक्षा देने का आधार यही होना चाहिए कि उनकी इस बात में सहायता की जाय कि वे पूरी समझ-बूझ के साथ दूसरों के जीवन और उनकी भावनाओं में सम्मिलित हो सकें। दूसरे मनुष्यों को अपने भाइयों के समान समझने के लिए पहले यह जरूरी है कि हम इस बात को समझने लगें कि दूसरों की भी आवश्यकताएँ हमारी जैसी होती हैं और हमारी ही तरह उनकी भी अपनी भावनाएँ होती हैं।' [1]

यदि हम अपने बच्चों मे दूसरो के प्रति भलाई की भावना जाग्रत कर सकें और उनमे उचित-अनुचित का एक ऐसा ज्ञान पैदा कर दे कि उनको हर कदम पर अपने-आप को दूसरों की तुलना मे न जाँचना पडे, तो हम उनके नैतिक बल को दृढ़ करने में बहुत बडा योग देंगे। हमारा लक्ष्य यह हो कि वे अन्याय और दुराचार से घृणा करने लगें और सचाई और सद्व्यवहार से प्रेम। हम यह तो आशा नहीं कर सकते कि भावावेश मे होने वाली तर्कहीन प्रतिक्रियाओ को उनके जीवन से बिलकुल दूर रखे पर हम इतना जरूर कर सकते है कि कम-से-कम अपने विचारों को वे बिलकुल ऐसा न बना ले कि उनमें किसी भी दशा मे कोई परिवर्तन न हो सके।

---

१. Understanding the Child 16. 15-20 January 1947 में एस० आर० लेकाक का लेख 'स्कूलों में चरित्र-शिक्षण के प्रति मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान का दृष्टिकोण।'

यदि हम यह चाहते हैं कि हमारे बच्चों में इतना साहस पैदा हो कि वे अच्छे और न्यायपूर्ण उद्देश्यों के पक्ष में अपनी आवाज उठा सकें—चाहे वे उद्देश्य अलोकप्रिय ही क्यों न हों—तो यह केवल उसी समय हो सकता है जब हम उनके दिमाग में यह बात अच्छी तरह बिठा दें कि 'अच्छा' किसे कहते हैं। हमारे बच्चों के दिमाग में अच्छाई का चित्र केवल हमारे व्यवहार का एक प्रतिबिम्ब-मात्र होता है।

परिवार बच्चों के सामाजिक संतुलन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं

यदि बच्चे का सम्बन्ध उसके माता पिता के साथ प्रेमपूर्ण और सुखमय होता है तब इस बात की सम्भावना अधिक हो जाती है कि वह घर के बाहर भी लोगों से आसानी से मिले और सुखमय सम्बन्ध स्थापित कर सके। लेकिन यह सम्भव है कि घर के अन्दर परिवार के लोगों का आपस का सम्बन्ध बहुत सुखमय हो, परन्तु फिर भी वहाँ वह वातावरण न हो जिसकी सहायता से बच्चे घर के बाहर के लोगों के साथ मिल-जुलकर रहना सीखते हैं।

इसका एक उदाहरण वे परिवार हैं जिनको हम अपनी सीमाओं में विकसित होने वाले परिवार कह सकते हैं। ऐसे परिवारों में माँ-बाप अपने बच्चों में इतना खो जाते हैं कि वे इस बात को बिलकुल भूल ही जाते हैं कि परिवार का जीवन अपने से बड़ी भी किसी चीज का अंग होता है। हम अपने बच्चों में ही और परिवार के दूसरे लोगो मे ही इतना सुख प्राप्त कर लेते हैं कि हम अपने-आप को परिवार के बाहर के बहुमूल्य अनुभवों से वन्चित रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हमे आगे चलकर पछताना पड़ता है। बच्चे इस परिस्थिति से घबरा उठते हैं। वे हमेशा चारो ओर से बन्द इस जीवन मे रहना नहीं चाहेंगे। आगे चलकर यही घर उनको पिंजरा मालूम होने लगेगा, यद्यपि इस समय वे यह नहीं जानते कि इस पिंजरे के बाहर जीवन बिताना कैसे सम्भव हो सकता है। छोटी अवस्था मे यदि कमला को अपने माता-पिता के साथ सैर को जाना बहुत अच्छा लगता है तो वह चाहेगी कि वे जो भी योजना बनाएँ उसमें उसे भी जरूर रखें। लेकिन जब वह बड़ी होकर किशोरावस्था को पहुँचेगी और उसे इसकी आवश्यकता अनुभव होने लगेगी कि उसके कुछ घनिष्ठ मित्र हों और वह ऐसे सामाजिक जीवन के लिए लालायित रहने लगेगी जिसमे लडके भी हो, तब उसकी समझ में नहीं आयगा कि स्कूल की मंडली मे वह किस प्रकार प्रवेश करे जहाँ इतना मजा है।

एक दूसरे प्रकार के परिवार भी होते है जिनके अपने आपस के सम्बन्ध तो बहुत आनन्दमय होते हैं पर वे दूसरों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने से बहुत झिझकते है।

मणि वैसे बहुत तेज़ लड़की है पर कक्षा में जब बोलने का सवाल आता है तब उसकी घिग्घी बँध जाती है। बच्चों में शरमाने की आदत स्वाभाविक होती है और उनका शरमाना बहुत प्यारा भी लगता है, पर मणि का शरमाना स्वाभाविक से ज्यादा है। वह इतनी शरमीली है कि उससे कोई दोस्ती नहीं करता। दूसरी लड़कियाँ उसके शरमीलेपन के कारण यह समझती हैं कि उसका स्वभाव ही एकान्तप्रिय है, इसलिए वे उससे दोस्ती करने की ज्यादा कोशिश भी नहीं करतीं। उसके विभिन्न कामों में भाग न ले सकने का कारण शायद यह है कि उसके माता-पिता भी ऐसे ही होंगे; वे न कभी दोस्तों को घर बुलाते हैं, न स्वयं ज्यादा लोगों के समूह में जाना पसन्द करते हैं और उनकी अपनी रुचियाँ हैं जिनमें वे खोए रहते हैं।

हम यह तो बड़ी आसानी से कह देना चाहते हैं कि मणि ने शरमीलापन अपने माता-पिता से सीखा। लेकिन सम्भव है इसका कारण यह हो कि उसे सामाजिक जीवन के सम्पर्क में आने का अवसर नहीं दिया गया, जिसके कारण वह दूसरों के साथ जल्दी दोस्ती बढ़ाने और उनसे घुल-मिल सकने का ढंग नहीं सीख सकी। इसमें उसके चारों तरफ के वातावरण का यदि अधिक नहीं तो कम-से-कम उतना ही हाथ जरूर है, जितना माता-पिता की आदतें स्वीकार करने का।

परिवार एक बड़े परिवार— समाज— का भाग

यदि हम यह चाहते हैं कि हमारे बच्चे आराम से इस दुनिया में जीवन व्यतीत कर सकें तो हमें अपने व्यवहार की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि हम केवल यह समझ बैठें कि वे अपने-आप दूसरे लोगों के साथ घुल-मिल जायँगे तो हमको और उनको दोनों को निराशा होगी।

हम समाज के जीवन में जिस प्रकार भाग लेते हैं उसका इस पर बहुत प्रभाव पड़ता है कि हमारे बच्चों को समाज में किस ढंग से स्वीकार किया जाता है। वे बच्चे जो अपने स्कूल में 'नेता' होते हैं, जिनकी तरफ दूसरे बच्चे नेतृत्व के लिए देखते हैं, वे प्रायः ऐसे घरों से आते हैं जहाँ उनकी रुचियों को प्रोत्साहित किया जाता है और जिनके परिवार वालों का जीवन स्वयं भी रुचिकर होता है।

बहुत से माता-पिता यह गलती भी करते हैं कि वे इस बात के लिए जरूरत से ज्यादा उत्सुक रहते हैं कि उनके बच्चे दूसरों से अच्छे रहें। ऐसे बच्चे बहुत दुर्भाग्यशील होते हैं, जिनकी माताएँ उनको बहुत ही अच्छे कपड़े पहनाकर स्कूल भेजती हैं, या जो ऐसी बड़ी-बड़ी दावतें करती हैं कि दूसरे बच्चे उनको अपनी

अपेक्षतः मामूली दावतो में बुलाते घबराते हैं। जो माता-पिता इस बात के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील रहते हैं कि उनके बच्चे लोकप्रिय बन जायँ, उनके बच्चे संभव है ऐसे हो जायँ कि दूसरे बच्चे उनसे घृणा करने लगें।

यह देखकर कि उनके बच्चे को दूसरे बच्चे अलग ही रखते हैं, माता-पिता को बड़ा दुख होता है। यदि मदन अपने दोस्तो में इस कारण अप्रिय है कि वह खेल में बुरा है, तो उसके माता-पिता को अपने-आपसे यह प्रश्न करना चाहिए कि कहीं इसका कारण यह तो नहीं है कि उन्होंने लाड़-प्यार में उसे बहुत सुकुमार बना दिया है। यदि वीणा बहुत शरारती है तो कहीं यह इस कारण तो नहीं है कि उसके माता-पिता ने अनजाने मे उसके दिमाग मे यह गलत धारणा डाल दी हो कि वह बहुत योग्य और महत्वशील है? शायद उन्होंने उसके ऐसे कामों की भी प्रशंसा की होगी जो प्रशंसनीय नहीं थे।

यदि हमारा घर सबके लिए खुला हो

बच्चे को समाज में अच्छी तरह हिल-मिल सकने के योग्य बना देने के लिए उसके माता-पिता एक काम कर सकते हैं कि वे अपने घर के वातावरण को बहुत मित्रतापूर्ण बना दें। वह अपने घर को एक ऐसा केन्द्र बना सकते हैं जहाँ मनोरंजक बातें करने का अवसर प्राप्य हो, जहाँ रसोई की सफाई का इतना ध्यान न रखा जाता हो कि बच्चे वहाँ पाँव भी न रख सकते हों, जहाँ घर के बडे लोग बच्चों के साथ हँसते-खेलते हो या लैम्प की रोशनी धीमी करके बच्चों को भूतों की ऐसी कहानियाँ सुनाते हों जिनमे जगह-जगह पर ऐसी घटनाएँ हों कि बच्चे रोमान्च से चीख उठें।

बच्चों को सम्मान की दृष्टि से देखने से उनका उत्साह-बल बढ़ा रहता है। सामाजिक विकास को प्रोत्साहित करने का एक तरीका यह है कि परिवार के लोग एक-दूसरे के कामो मे दिलचस्पी लें। इसका अर्थ यह होता है कि जो बातें महत्त्वपूर्ण हों उन पर बहस में सब लोग भाग लें। ऐसा पिता जो अपने व्यापार की समस्याओं के बारे में घर पर कभी बात ही नहीं करता है, उसे इसकी भी आशा न रखनी चाहिए कि उसके बच्चे अपनी समस्याओं के बारे मे उससे बात करेंगे।

यदि हमको इस बात का कुछ ज्ञान हो कि हमारे बच्चों के आन्तरिक जीवन मे क्या हो रहा है तो हम ज्यादा बुद्धिमत्ता से उनके कामों में दिलचस्पी ले सकते हैं। यदि ऐसा हो तो मीरा के फिल्म-अभिनेत्रियो मे ज्यादा दिलचस्पी लेने पर झुँझलाने के बजाय हम इस बात को समझेंगे कि उसे ऐसे नमूनों की जरूरत

है जिनकी वह नकल करे और शायद तब हम ऐसे नमूने ढूँढने में उसकी सहायता भी करेंगे—किताबों में, लड़कियों के संगठनों में या उसके मित्रों में ।

यदि हमको यह बात मालूम हो कि विभिन्न अवस्थाओं में बच्चों में क्या विशेषताएँ होती हैं तो इससे हमको लड़कों और लड़कियों के सामाजिक विकास के अन्तर को ज्यादा अच्छी तरह समझने में सहायता मिलेगी। फिर हम इस बात पर इतने अधीर नहीं हो उठेंगे कि विष्णु को नौ वर्ष की अवस्था में अपनी फुटबाल की टीम में बहुत ज्यादा दिलचस्पी है जबकि उसकी बड़ी बहन को इसी अवस्था में नाचने में ज्यादा दिलचस्पी थी।

परिवार के जीवन की एक विशेषता पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, यद्यपि इसका सम्बन्ध अच्छे सामाजिक सन्तुलन के साथ है—वह है माता-पिता की उम्र का सवाल। विशेष रूप से वे माता-पिता जिनकी शादी देर में हुई हो या जिनके बच्चे देर में हुए हों, उनको इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि उनके बच्चों को साधारण सामाजिक जीवन से वंचित न रहना पड़े। ऐसा नहीं है कि बड़ी उम्र के सब लोग अपनी आदतों में पक्के हो जाते हैं और उनको बदलना कठिन होता है। लेकिन कभी-कभी ऐसा होता है कि माता-पिता जब ऐसी उम्र को पहुँचने लगते हैं जब कि मनुष्य को शान्ति और निस्तब्धता प्रिय हो जाती है, तब वे कोलाहल और शोर-गुल पर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और इसको वे बचपन का 'मूर्खतापूर्ण' व्यवहार समझते हैं।

वे जान-बूझकर स्वयं मना न करें, पर उनके व्यवहार से डरकर यह सम्भव है कि बच्चे अपने दोस्तों को घर न लाएँ। नवयुवक माता-पिताओं की अपेक्षा ऐसे माता-पिताओं में अपने बच्चों की सुरक्षा के बारे में बहुत चिन्तित रहने की सम्भावना अधिक होती है। उनकी रक्षा करने के विचार से चौबीस घण्टे अपने बच्चों के साथ-साथ लगे रहने के कारण वे अपने बच्चों को उन अनुभवों से वंचित रखते हैं जो उनके लिए आवश्यक हैं। विनीता के माता-पिता उसे दूसरे लड़के-लड़कियों की टोली में नहीं मिलने देते, जो साथ मिलकर सिनेमा देखने जाना चाहते हैं, पर वे यह नहीं समझते कि ११ वर्ष की अवस्था में वह कई बातों में उतनी ही समझदार है जितनी उसकी माँ १४ वर्ष की अवस्था में थी।

वही बच्चे पसन्द किये जाते हैं जो 'अपनी अवस्था के अनुसार' व्यवहार करते हैं

बच्चों की अपरिपक्वता शायद सबसे बड़ा कारण है, जिसके कारण उनके

साथ के दूसरे बच्चे उनको स्वीकार नहीं करते। उस बच्चे को, जिनकी भावनाओं में परिपक्वता नहीं होती, जो जरा-सी बात में रूठ जाता है या रोने लगता है, दूसरे लड़के दूर ही रखते हैं। बच्चे को शायद किसी और बात से इतना दुख नहीं पहुँचता जितना इस विचार से कि दूसरे बच्चे उसे 'रोने वाला' समझते हैं। कभी-कभी बच्चे की बढ़ने की इच्छा में और माता-पिता की उसको अपने अँगूठे के नीचे रखने की इच्छा में भीषण टक्कर होती है। बच्चे का अपने-आपको दूसरों की दृष्टि में स्थापित करने का प्रयत्न माता-पिता की इसी कोशिश के खिलाफ एक विद्रोह होता है।

बच्चों का आपस में मार-पीट करना उनके जीवन की कितनी अनिवार्य अवस्था मालूम होती है! और माता-पिता इससे कितनी घृणा करते हैं! परन्तु मार-पीट एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा बच्चे यह साबित करते हैं कि वे अब दूध-पीते बालक नहीं हैं कि जरा-जरा-सी बात पर अपनी 'माँ' के पास भाग कर जाएँ। बल और बहादुरी हमेशा से लड़कों और पुरुषों की विशेषता समझी गई है। अमृत से उसके माता-पिता ने यह बात न जाने कितनी बार कही होगी कि 'लड़के रोते नहीं हैं, लड़के तो बहादुर होते हैं।'

अपनी इस बहादुरी को दिखलाने का उसके पास मार-पीट से अच्छा और क्या साधन है? दूसरे लड़कों पर अपनी साख जमाने का उसे कोई-न-कोई उपाय तो चाहिए ही। वे बच्चे जो सबसे ज्यादा तेज दौड़ सकते हैं, या पेड़ पर सबसे ऊँचे तक चढ़ सकते हैं या गेंद को सबसे ज्यादा दूर तक फेंक सकते हैं उन्हीं की सबसे ज्यादा प्रशंसा भी होती है। जो बच्चा यह प्रमाणित कर देता है कि यदि मार-पीट में उसको चोट लगे तब भी वह उसे सहन कर सकता है, उसके साथी उसको सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।

इसके विपरीत कुछ ऐसे बच्चे होते हैं जो अपने से छोटे बच्चों को 'धूँद-कर' यह प्रमाणित करते हैं कि वे ज्यादा तेज और बलवान हैं और इस प्रकार आम तौर पर अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण देते हैं। छोटे बच्चे आपस में एक-दूसरे पर यही प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं। जिस बच्चे को अपने ऊपर जितना विश्वास होता है और वह अपने-आपको जितना सुरक्षित अनुभव करता है उसे इस प्रकार से अपनी शक्ति जताने की उतनी ही कम जरूरत पड़ती है। लेकिन अधिकांश बच्चों को, उनको भी जिनको अपने बल की श्रेष्ठता की डींग मारने की कोई इच्छा नहीं होती, कभी-न-कभी अपने बल का प्रमाण देना पड़ता है और यह

साबित करना पड़ता है कि शारीरिक बल के कारण उनको किसी प्रकार का भय नहीं।

जिस बच्चे को उसके माता-पिता ने लड़ने से मना कर रखा है, वह दुविधा में फँस जाता है। यदि वह अपने माता-पिता की आज्ञा मानता है तो लोग उसे कायर समझेंगे और यदि वह उनकी आज्ञा का उल्लंघन करता है तो घर पर उसे डाँट पड़ेगी।

यदि हम इस बात को याद रखें कि झगड़े तय करने का यह आदिम तरीका बच्चे के जीवन की एक ऐसी अवस्था होती है जो ज्यादा दिन नहीं रहती, और यह कि शारीरिक पीड़ा सहन करने के लिए बड़े साहस की जरूरत होती है, तो हम यह बताकर कि झगड़ों से हमको बड़ी परेशानी होती है अपने बच्चों के दिमाग में दुविधा खड़ी न कर देंगे।

केवल कभी-कभी ही ऐसा होता है कि इन झगड़ों में माता-पिता का हस्तक्षेप करना बुद्धिमानी होती है। यदि वे बार-बार इन झगड़ों में हस्तक्षेप करेंगे तो बच्चे को जितना कष्ट होगा उतना उसे शारीरिक चोट से भी नहीं होगा। झगड़ों का फैसला कराने के लिए किसी दूसरे की सहायता पर निर्भर रहने की शिक्षा देना बच्चे के लिए हितकर नहीं है; उसे इस योग्य बनाना चाहिए कि अपना खयाल वह खुद रख सके। जो बच्चे स्वभावतः 'जबरदस्ती करने वाले' होते हैं, जो अपने से छोटे और कमजोर बच्चों पर रोब दिखाते हैं, उनके मामले में भी उनके इस प्रकार के व्यवहार का कारण पता लगाना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना दूसरे बच्चों की उनसे रक्षा करना। केवल जबरदस्त बच्चे को रोकने से मुसीबत थोड़ी देर के लिए टल सकती है। इसकी अपेक्षा यह ज्यादा रचनात्मक ढंग है कि इस बात का पता लगाया जाय कि वह दूसरे बच्चों के साथ इस प्रकार का व्यवहार क्यों करता है, क्योंकि उसकी समस्या की जड़ का पता लग जाने पर यह सम्भव हो सकता है कि उसके व्यवहार के कारण को ही दूर कर दिया जाय।

स्कूल में वही बच्चा लोकप्रिय होता है जो समाज में स्वीकृत अर्थ के अनुसार कुछ उद्दण्ड प्रकृति का होता है। इसके लिए यह जरूरी है कि उसके माता-पिता उस पर इतना प्रभुत्व न जमाते रहे हों कि उसमें कोई जान ही बाकी न रह जाय। अपने साथ के बच्चों की टोली में वही बच्चे लोकप्रिय होते हैं जो उत्साहमय और फुर्तीले होते हैं। वे दूसरे बच्चों की अपेक्षा ज्यादा प्रमुख इसलिए हो जाते हैं कि उनका अपना व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली होता है।

परन्तु बच्चों के आपस के सम्बन्ध में दूसरी चीजों का भी हाथ होता है। माध्यमिक कक्षाओं मे पढ़ने वाले जो बच्चे ज्यादा सुन्दर होते हैं, जो साफ-सुथरे रहते हैं, जो खुशमिजाज, मित्रतापूर्ण और हँसमुख होते हैं उनको लोग ज्यादा पसन्द करते हैं। इन गुणों में दूसरे गुणो का महत्त्व अच्छे रूप की अपेक्षा ज्यादा होता है।

उदाहरण के लिए प्रबोध बहुत प्रिय और दिलचस्प बच्चा है, लेकिन यदि वह इतने शान्त स्वभाव का है कि उसकी कक्षा में कोई यह नहीं जानता कि वह बहुत अच्छा तैराक है, तो उसकी प्रशंसा होने की अधिक सम्भावना नहीं हो सकती। यदि मालती को हर दम अपने बड़े-बड़े दाँतों का बहुत ध्यान रहता है और इस कारण वह न कभी हँसती है, न मुस्कराती है तो दूसरे बच्चों को यह जानने का अवसर ही न मिलेगा कि वह कितनी मिलनसार है।

जो बच्चे ईमानदार होते हैं, जो जरा-जरा सी बात मे रूठ नहीं जाते और बुरा नहीं मानते, उनको दूसरे बच्चे पसन्द करते हैं और उनका स्वागत करते हैं। बच्चों में इस प्रकार का व्यवहार पैदा करने में माता-पिता का बहुत बड़ा हाथ होता है। यदि हम हर बात मे अपने बच्चों का पक्ष लें तो हम उसे यह सीखने का अवसर नहीं देते कि छोटी-मोटी पराजय और छोटे-मोटे अन्याय जीवन का एक अनिवार्य अंग हैं। आगे चलकर कभी-न-कभी उसे ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पडेगा जिन पर उसका कोई वश नहीं चलेगा और उसे अन्यायपूर्ण व्यवहार को सहन करना पड़ेगा। बच्चे को इस योग्य होना चाहिए कि वह कुढे बिना या अपने ऊपर तरस खाए बिना इस परिस्थिति का सामना कर सके।

इस बात में माता-पिता का बहुत बडा हाथ होता है कि बच्चे का अपने-आप में विश्वास पैदा हो। जब वह कोई काम अच्छी तरह, बडी निपुणता से करने में सफल होता है तो दूसरे कामों को भी सफलतापूर्वक करने की उसकी योग्यता बहुत बढ़ जाती है।

यदि विनीता को कभी तैरना सीखने का अवसर नहीं मिला है तो वह ऐसे बच्चों के साथ कभी तैरना सीखने का साहस नहीं कर सकती जो तैरने में बहुत अभ्यस्त हों। परन्तु यदि वह किसी दूसरे खेल में या किसी शारीरिक कौशल में निपुण है, जैसे पहिएदार जूतों पर फिसलने में, तो उसका साधारण आत्मविश्वास उसकी इस झिझक को दूर करने में सहायक होगा।

बच्चों को अध्ययन करने से पता चला है कि जब बच्चे १२ वर्ष के हो

जाते हैं तब उनमें एक परिवर्तन आ जाता है। कोई लड़का चाहे कितना गंदा क्यों न रहता हो, पर यदि वह टोलियों में खेले जाने वाले खेलों में होशियार है और बहुत 'नियमित आदतों का लड़का' है तो दूसरे बच्चे उसे 'सबसे उत्तम' साथी समझते हैं। परन्तु इस उम्र की लडकियों के लिए यह बहुत जरूरी है कि वे 'सुव्यवस्थित प्रकृति की' हों। यदि वे भद्र महिलाओं के समान हों, सजी-सॅवरी रहें, और अपने रूप तथा वेश-भूषा का पूरा ध्यान रखती हों, जैसी वे महिलाएँ होती हैं जिनके चित्र पत्रिकाओं में छपते हैं, तो यह अधिक निश्चित हो जाता है कि दूसरी लडकियाँ उनको पसन्द करें; परन्तु शर्त यह है कि वे मिलनसार भी हों। (कौनसी चीज कितनी महत्त्वपूर्ण है, इस धारणा के निर्माण में इस बात का कितना प्रभाव पडता है कि घर पर किन चीजों को कितना महत्त्व दिया जाता है।)

'बिलकुल घुल-मिल जाना' सबसे महत्त्वपूर्ण

जब बच्चा स्कूल जाता है उस समय यदि वह अपनी उम्र के बच्चों के समूह का एक अंग न बन जाय तो वह किसी ऐसे समूह में बिलकुल किंकर्तव्यविमूढ़-सा होकर रह जाता है जिसमें उससे बड़ी उम्र के बहुत से बच्चे होते हैं। बच्चे का जीवन सुखमय और आनन्दपूर्ण हो, इसके लिए यह आवश्यक है कि उसमें यह भावना जाग्रत हो कि उसके साथी उसे स्वीकार करते हैं, कि वह 'उन्हीं का एक अंग' है। उसे इस बात की जरूरत होती है कि वह उनकी रुचियों में भाग ले सके, दूसरे बच्चों के साथ वह हॅस-खेल सके, उनके बीच में डींग मार सके, उन पर अपनी साख जमा सके, या दूसरे बच्चे उस पर रोब जमा लें।

जो बच्चे शरमीले होते हैं या जो शारीरिक बल दिखाने से घबराते हैं उनके लिए अपने समूह का अंग बन जाना ज्यादा कठिन होता है। इनकी अपेक्षा वे बच्चे जो स्फूर्तिमय होते हैं और जिनको अपने ऊपर विश्वास होता है वे आसानी से घुल-मिल जाते हैं। कुछ बच्चों में नेता बनने की प्रवृत्ति होती है, उनमें दूसरों पर अपना प्रभाव डालने का स्वभाव होता है, और कुछ बच्चों का केवल यह लक्ष्य रहता है कि वे किसी नेता के साथ हो लें। बाज़ बच्चे ऐसे होते हैं कि वे अपने समूह की ६० प्रतिशत बातों में पहल करते हैं। उनके विचार इतने अच्छे होते हैं, और दूसरों के प्रति उनका व्यवहार इतना कुशल होता है कि दूसरे बच्चे बिना किसी आपत्ति के उनकी अगुआई को स्वीकार कर लेते हैं। दूसरे बच्चे जिनमें पहल करने की क्षमता नहीं होती, वे भी पसन्द किये जाते हैं, क्योंकि वे हमेशा सहयोग प्रदान करने के लिए तैयार रहते हैं।

१० वर्षीय देवकी रेडियो के एक विशेष कार्यक्रम को वडे ध्यान से नियम-पूर्वक इसलिए सुनती है कि वह यह चाहती है कि लतिका और सुषमा उसे अपने साथ का समझने लगें, क्योंकि उसने उन दोनों को उस कार्यक्रम के बारे मे बातें करते सुना है। ६ वर्षीय हरि ब्लैकबोर्ड पर दाहिने हाथ से केवल इसलिए लिखता है कि वह दूसरो से 'भिन्न' नहीं बनना चाहता, हालाकि उसका यह प्रयत्न उसके लिए अस्वाभाविक और गलत है।

जब बच्चा स्कूल जाता है तो वह देखता है कि दूसरे घरों के मापदण्ड, उनके विचार और व्यवहार उनसे बिलकुल भिन्न हैं जिनकी उसे आदत है। जब वह यह देखता है कि उसके घर के रहन-सहन के ढंग—अर्थात् वहाँ क्या खाया जाता है, घर में जाने के लिए सामने का दरवाजा प्रयोग किया जाता है या पीछे का, घर मे किस समय बच्चों को सो जाना पडता है आदि—पडोस के घरो से भिन्न हैं तो वह अपने घर को ज्यादा ध्यान से देखने लगता है। उसे सन्देह होने लगता है कि क्या उसके माता-पिता सचमुच उतने समझदार हैं जितना वह उनको अब तक समझता आया है।

बच्चे मे इस प्रकार के सन्देह का उठना बडी स्वस्थ भावना है। यदि हर बच्चे के दिमाग मे यह बात बैठ जाय कि उसके परिवार के रहन-सहन का ढंग ही *एक-मात्र सही* ढंग है तो जीवन आज की अपेक्षा बहुत विचित्र हो जायगा और दूसरों की सुविधा का ध्यान रखते हुए अपने व्यवहार को सन्तुलित करना बहुत कठिन हो जायगा। अपने पडोसियों के साथ मेल-जोल निभाना हमारे लिए उतना ही कठिन हो जायगा, जितना विभिन्न राष्ट्रों का एक-दूसरे को समझना और आपस मे मेल-जोल निभाना होता है।

यह क्रिया उस क्रम का एक कदम है जिसे हम 'मनोवैज्ञानिक विच्छेद' कहते हैं जिसके द्वारा बच्चा धीरे-धीरे अपने पाँवों पर खडे होने के योग्य बनता है। माता-पिता के लिए यह क्रम बहुत दुखदायी होता है। हममें से केवल कुछ ही लोग होंगे जो इसका स्वागत करते होंगे। आपस में टोलियाँ बनाने मे दिलचस्पी बढ़ना इसी बात का एक प्रमाण है कि बच्चे अपना एक पाँव घर के बाहर रखना चाहते हैं।

जब बच्चे ६ या १० वर्ष के हो जाते है तो उनमें इच्छा होती है कि समूह मे एक साधारण सदस्य के रूप में स्वीकार किया जाना ही काफी नहीं है, इससे अधिक भी कुछ होना चाहिए। इसलिए वे छोटे-छोटे क्लबों के रूप में या

गुटों के रूप में या टोलियों के रूप में समूहबद्ध होने लगते हैं। बच्चे को जब यह विश्वास होता है कि उसके साथ उसकी सहायता के लिए एक पूरा समूह है तो उसे जीवन में आनन्द भी ज्यादा आता है और सुरक्षा तथा सम्मान की भावना भी बढ़ जाती है। लड़कों और लड़कियों के स्वयंसेवक-समिति (स्काउट) आन्दोलन में बच्चों की इस उमंग का ध्यान रखा जाता है; इन समितियों के कार्यक्रम में बच्चों की इस प्रवृत्ति का स्वस्थ और रचनात्मक उपयोग किया जाता है। स्काउट-आन्दोलन में छोटे बच्चों के दल अलग बनाने की आवश्यकता से यह साबित होता है कि पहले जो सीमा नियत की गई थी कि १२ से कम उम्र के बच्चे न लिये जायें वह बहुत ज्यादा थी; इस अवस्था से बहुत पहले ही बच्चों में इस बात की तीव्र इच्छा जन्म ले चुकी होती है कि वे किसी सुसंगठित टोली का एक भाग हों।

'गिरोह' शब्द को इतने बुरे अर्थ में प्रयोग किया जाने लगा है कि हम बच्चों की हरकतों के बारे में इस शब्द को प्रयोग करते हुए घबराते हैं। लेकिन इस शब्द से संगठन और एकता का जो भाव व्यक्त होता है वह 'दल' या 'क्लब' आदि शब्दों से व्यक्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त गिरोह बाँधकर भागने की इच्छा बच्चों में इतनी स्वाभाविक होती है कि उनकी एक विशेष अवस्था को बयान करने के लिए 'गिरोह की अवस्था' का नाम प्रयुक्त किया जाता है।

गिरोह की भावना का रचनात्मक प्रयोग भी हो सकता है

पास-पड़ोस के लड़कों के गिरोह शैतानी और गुण्डेपन में उसी समय फँसते हैं जब उनकी साथ मिलकर काम करने की स्वाभाविक इच्छा को पूरा करने के लिए कोई स्वस्थ कार्यक्रम नहीं होता। गिरोहबन्दी के पीछे जो भावना होती है उसे कई कामों के लिए प्रयोग किया जा सकता है—सामूहिक खेलों के विकास के लिए, बच्चों को अच्छा खिलाड़ी बनाने के लिए और उनमें अपने-आपको भुला देने की भावना उत्पन्न करने के लिए। यह कर्तव्य उनके माता-पिता का है कि वे उनको सुरक्षित, बुद्धिमत्तापूर्ण और उचित कामों का अवसर प्रदान करें। एक झोले में कुछ खाना डालकर सैर को निकल जाना, घर के पीछे वाले आँगन में गढ़ा खोद डालना या तहखाने में एक कोने को घेरकर उसे पूरी तरह अपना स्थान बना लेना—यह सब ऐसी बातें हैं जिनसे बच्चों की एक इतनी उत्कट अभिलाषा पूर्ण होती है कि उनको यह सब करने से रोकने की अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि हम इन कामों में उनका साथ दें।

उन माताओं को तो वास्तव में कुछ पुरस्कार दिया जाना चाहिए जो स्वयं

कभी लड़का न होने के बावजूद इतनी समझ-बूझ रखती हैं कि लड़कों को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता देती हैं कि वे अपने कमरों को जिस तरह चाहें प्रयोग करें। लड़कों को इसकी जरूरत होती है कि उनके पास कोई ऐसी जगह हो जहाँ उनके दोस्त पूरी स्वतन्त्रता के साथ जमा हो सकें, जहाँ कोई उनकी चीजों में हस्तक्षेप न करे, चाहे वह देखने मे बहुत ही अस्त-व्यस्त पड़ी हो। जो पिता छुट्टी के दिन देर तक सोने के लालच को त्यागकर अपने बेटे के गिरोह को नाव में ले जाकर नदी के किनारे कहीं दूर छोड़ आता है, जहाँ से वे रात-भर की पिकनिक के बाद दूसरे दिन लौटकर आयेंगे, उसे उसके बेटे रोज प्रातःकाल उठकर सराहेंगे।

लड़कियों में ऐसे खेल-कूद के प्रति लड़कों की जैसी तीव्र रुचि नहीं होती जिनमें शारीरिक बल की अधिक जरूरत होती है। लड़कियों को नाटक करने, चित्र बनाने और दूसरी ऐसी चीजों में अधिक रुचि होती है जिनमें बहुत कुशल हाथों की जरूरत होती है। उनको सायकिल चलाने मे तथा तैरने आदि मे अधिक दिल-चस्पी होती है। परन्तु उनको खेलों में प्रतियोगिता के प्रति उतनी रुचि नहीं होती जितनी खेलों के सामाजिक महत्त्व के प्रति होती है।

मित्रता

यद्यपि बच्चा अपने-आपको एक पूरे समूह का अंग बना लेता है, फिर भी उसका एक 'सबसे घनिष्ट' मित्र होता है जिसके साथ वह समूह के दूसरे बच्चों की अपेक्षा ज्यादा आनन्द अनुभव करता है और जिससे कभी वह लडकर रूठ जाता है और थोड़ी ही देर बाद फिर मान जाता है। झगड़े का अर्थ निश्चित रूप मे यही नहीं होता कि आप उस आदमी को पसन्द नहीं करते। शायद आप उसे बहुत चाहते हैं और इसीलिए वह जो-कुछ भी करता है उसका आपके निकट निर्णयात्मक महत्त्व होता है। उन बच्चों की अपेक्षा जो एक दूसरे के प्रति उदासीन होते हैं, उन बच्चों में ज्यादा झगड़े होते हैं जो आपस मे गहरे मित्र होते हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों में दोस्त चुनने का आधार यह नहीं होता कि उनकी रुचियाँ और अरुचियाँ समान हों बल्कि यह होता है कि किन बच्चों के सम्पर्क मे वह आसानी से आते हैं। बहुधा मित्रता का आधार यह होता है कि वे एक ही जगह रहते हैं, स्कूल में एक ही कक्षा में पढ़ते हैं, उनकी उम्र तथा विकास समान हैं। छोटी कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चो मे यह सम्बन्ध कितना अस्थायी होता है इसका अनु-मान इस बात से हो जायगा कि पता लगाया गया है कि उन बच्चो मे से, जो एक-दूसरे को अपना 'सबसे अच्छा मित्र' कहते हैं, केवल एक-चौथाई ऐसे होते हैं जो

अगले महीने भी उन्हीं बच्चों को अपना सबसे अनन्य मित्र कहें।

बच्चा जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है और उसकी निजी तथा विशेष रुचियाँ बढ़ती जाती हैं वैसे-ही-वैसे वह अपने मित्रों को बहुत 'चुनकर' पसन्द करता है। उसकी रुचियाँ, उसके मजाक तथा बहुत-सी चीजों के बारे में उसकी भावनाएँ जब तक दूसरे बच्चे से नहीं मिलतीं तब तक उनकी मैत्री स्थायी नहीं हो सकती।

तीन बच्चों की अपेक्षा दो बच्चे ज्यादा अच्छी तरह आपस में खेल सकते हैं। जब तीन बच्चे होते हैं तो उनमें ईर्ष्या पैदा होती है, क्योंकि उनमें से हर एक यह प्रयत्न करता है कि दूसरा बच्चा केवल उसी को महत्त्व दे। गीता की माँ को इस बात का ध्यान रखने में बड़ी मुश्किल पड़ती है कि जब प्रतिमा गीता के साथ खेलने उसके घर आये तो पड़ोसी की लड़की तारा को यह न अनुभव हो कि उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

बच्चे अपने भाई-बहनों के साथ उससे बिलकुल भिन्न व्यवहार करते हैं जो वे दूसरे बच्चों के साथ करते हैं। इस कारण घर के बाहर घनिष्ट मित्र बनाना बहुत लाभदायक है। सुनील को घर पर केवल छोटा भाई समझा जाता है और उसकी दोनों बड़ी बहनें उस पर रोब गाँठती हैं; परन्तु बाहर उसके साथी उसके विचारों का सम्मान करते हैं। कान्ता की माँ हमेशा इस बात का प्रयत्न करती है कि उसमें और उसकी डेढ़ साल बड़ी बहन मालती में गहरी मित्रता रहे। परन्तु शीघ्र ही मालती किशोरावस्था को पहुँच जायगी और उसमें कुछ ऐसी नई रुचियाँ पैदा होंगी जो कान्ता के स्वभाव के अनुकूल न होंगी। कान्ता को इस बात की जरूरत है कि उसके अपने मित्र हों ताकि जब उसकी बहन मालती अपनी किसी सहेली से मिलने के लिए जाय तो न तो वह अकेली रह जाय और न उसे अपनी बहन की बराबरी करने का लोभ पैदा हो।

स्नेह और प्रेम का विकास

६ वर्ष से ११ वर्ष तक के बच्चों में यह बात पाई जाती है कि लड़के लड़कों में और लड़कियाँ लड़कियों में मिलना-जुलना पसन्द करती हैं। परन्तु शीघ्र ही उनका स्वभाव विस्तृत होने लगता है और लड़के लड़कियों को और लड़कियाँ लड़कों को पसन्द करने लगती हैं। माता-पिता के साथ बच्चों का जैसा सम्बन्ध होता है उसका इस पर बड़ा प्रभाव पड़ता है कि बड़े होकर वे आपस में किस प्रकार के प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

बहुधा यह कहा जाता है कि लड़कों का एक 'स्त्री' के साथ शुरू से ही

एक बहुत दृढ़ सम्बन्ध होता है—अर्थात् अपनी माँ के प्रति उसका प्रेम—इसलिए वे बड़े होकर लड़कियों से बड़ी आसानी से परिपक्व रूप से प्रेम कर सकते है जब कि लड़कियों को लड़कों से इसी प्रकार का प्रेम करने मे कठिनाई होती है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बचपन में लड़को की तरह लड़कियो का भी अपने पिता की अपेक्षा बहुधा अपनी माता के साथ ज्यादा गहरा सम्बन्ध होता है।

जिस अवस्था के लडको का हम इस पुस्तक में अध्ययन कर रहे हैं वे तो उस अवस्था में पहुँच गए हैं जब वह अपने पिता के साथ ज्यादा मित्रता पैदा कर लेते हैं। जब ७ या ६ या १० वर्ष के बच्चे यह प्रतीक्षा करना छोड़ देते हैं कि उनकी माँ आकर उनको बिस्तर पर लिटाकर सुलाए, तो यह बडी स्वस्थ भावना है। माताएँ कभी-कभी पुराने सम्बन्ध को ही बनाए रखती हैं, परन्तु पिता की इच्छा यह रहती है कि उसके बेटों मे मर्दों की-सी भाईचारे की भावना पैदा हो।

लड़कियाँ जैसे-जैसे बडी होती जाती हैं उनमे अपने पिता के प्रति एक ऐसी भावना पैदा होती है जिसका सम्बन्ध उनकी बदलती हुई जरूरतों से होता है। लडकी के लिए यह बहुत उपयोगी होता है कि वह अपने पिता को प्रशंसा की दृष्टि से देख सके और उनके साथ रहकर उसे हर्ष प्राप्त हो। परन्तु यदि उनमे जरूरत से ज्यादा घनिष्ठता पैदा हो जाय, इतनी कि लडकी अपने पिता को आदर्श समझने लगे और यह सोचने लगे कि पिता मे कोई खराबी है ही नहीं तो इनमे उसके सुख मे बाधा पड़ सकती है। कुछ लडकियाँ विवाह नहीं करतीं, कुछ और लड़कियाँ अपने विवाहित जीवन से सुखी नहीं रहतीं। इसका कारण यह होता है कि उनके और दूसरे मनुष्यों के बीच में उनके अति प्रशंसित पिता की कल्पना बाधक होती है।

स्कूली बच्चों के विषय मे बात करते हुए ऐसी दुःखद सम्भावनाओं का उल्लेख करना क्या बहुत बेतुका मालूम होता है? बच्चों का अपने माता-पिता से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होने का परिणाम बहुत आगे चलकर मालूम होता है, इसलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम इस बात को गौर से जाँचें कि हम अपने बच्चों से किस तरह प्यार करते है और इसके बदले में हमको उनसे किस प्रकार के प्यार की आशा करनी चाहिए। जब विजय कहता है कि वह अपने दोस्तों के साथ सैर को न जाकर घर पर ही रहना पसन्द करता है तो हम समझते हैं कि यह कोई समस्या नहीं है। जब वह इस बात के लिए हठ नहीं करता कि उसने उसकी माता के मेहमानों के सामने वायलिन बजाने के लिए कहा जाए तो हम

सोचते हैं कि कितना शील स्वभाव का और शिष्ट बालक है। यों तो इन बातों का स्वतः कोई बहुत महत्त्व नहीं मालूम होता, पर यदि इस प्रकार की बातें बार-बार हों तो अर्थ यह निकलता है कि उसका अपनी माँ के प्रति जरूरत से ज्यादा लगाव है। क्या उसकी पत्नी को भी हमेशा उसके साथ 'माँ'-जैसा व्यवहार करना पड़ेगा?

शीला के पिता उसे अपनी लाडली कहते हैं और वह जब पैसे माँगती है उसे मिल जाते हैं, लेकिन ऐसा करके उसके पिता उसके बाल-स्वभाव को अच्छी शिक्षा नहीं दे रहे हैं, क्योंकि वह दूसरे पुरुषों से भी इसी व्यवहार की आशा रखने लगेगी। बहुत ही बुरा होगा यदि बड़ी होकर भी वह 'छोटी बच्ची' बनी रहे और हमेशा इसकी आशा रखे कि दूसरों से पाना ही उसका अधिकार है। पिता को अपनी बेटी को खुश रखकर बड़ी खुशी होती है, परन्तु वह यह जानना चाहते हैं कि वह अपनी बच्ची को जो सुख दे रहे हैं वह क्या वास्तविक सुख है या केवल उनकी स्वार्थपरता है।

६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों का प्रेम इस प्रकार अपने माता-पिता से हटकर धीरे-धीरे अपने दोस्तों के प्रति अधिक होता जाता है। जब बड़े होकर बच्चे स्वयं अपना व्यक्तित्व प्राप्त कर लेते हैं तो उनको अपने जैसे दूसरे लोगों की तलाश होती है जिनसे वे अपने अनुभव और अपने भेद कह सकें।

यह स्पष्ट है कि बच्चे की मित्रता का एक व्यक्ति तक सीमित न रहना ज्यादा अच्छा है। यदि एक व्यक्ति के साथ उसका सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो जाय कि बाकी सब लोगों से उसका सम्बन्ध बिलकुल खत्म हो जाय तो उसकी रुचियाँ बहुत संकीर्ण हो जायँगी। यह हो सकता है कि उन दोनों में से कोई दूसरे से खिन्न जाय या कहीं चला जाय। ऐसी दशा में उस लड़के या लड़की की अपने एकमात्र मित्र से जितनी घनिष्ठता होगी उतना ही उसको उसके बिछुड़ने का दुख होगा।

जब किन्हीं दो बच्चों में घनिष्ठता बहुत-बढ़ती जा रही हो तो माता-पिता चुपके से उसे परिवर्तित करने में बहुधा सफल हो सकते हैं। किसी बच्चे को किसी दूसरे बच्चे के साथ खेलने से मना करना इस बात को निश्चित बना देता है कि उस बच्चे की मित्रता उसके लिए अनिवार्य हो जाय। ऐसी परिस्थिति में जब बच्चे की भावनाओं को ठेस पहुँचने का भय हो तो बहुत घुमा-फिराकर कोई कदम उठाना चाहिए। उसे नये-नये कामों के लिए प्रोत्साहित करके, या उसे नये-नये अनुभव दिलाकर इस प्रकार की घनिष्ठता को कम किया जा सकता है, जिसमें दोनों एक-

दूसरे से इस प्रकार चिपके रहते हैं जैसे वृक्ष से लता।

शहर से बाहर जाकर सैर करने से बच्चों को क्या लाभ होता है

यदि आज से सौ वर्ष पहले बड़े-बड़े शहरों के निवासियों से यह कहा जाता कि एक समय वह आयगा जब बच्चों को गाय या भेड़ या मुर्गी देखने के लिए घर से बाहर भेजना पड़ा करेगा तो उनको इस बात पर हँसी आती। लेकिन जब दिन-प्रतिदिन अधिक बच्चे शहरों में आकर रहने लगे—और उनमें से भी अधिकांश ऐसे शहरों में जो प्रतिदिन बड़े होते जा रहे थे—तो इस बात की आवश्यकता हुई कि उनको सैर के लिए कभी-कभी शहर से बाहर भी ले जाया जाय। उनके शहर में आकर रहने का परिणाम यह हुआ कि वे प्रकृति से बिलकुल दूर हो गए। घास की जगह सीमेंट ने, और पेड़ों की जगह धुएँ की चिमनियों ने और फूलों की जगह सड़क पर बिखरे हुए कागज के टुकड़ों ने ले ली।

यह बात तो कोई भी समझ सकता है कि यह परिवर्तन कुछ अच्छा नहीं, इसीलिए अनेक माता-पिता किसी-न-किसी बहाने से छुट्टियों के दिनों में अपने बच्चों को शहर से बाहर भेजने का अवसर निकाल लेते हैं। परन्तु ऐसे माता-पिता जिनके न तो देहातों में कोई सम्बन्धी है और न शहर से बाहर नदी-किनारे उनका कोई मकान ही है, उनकी मुश्किल बच्चों को टोलियों के रूप में बाहर भेजने में अर्थात् कैम्पों के द्वारा हल हो जाती है।

इस प्रकार के कैम्प कई प्रकार की संस्थाओं की तरफ से संगठित किए जाते हैं—स्वतन्त्र रूप से, स्काउट संस्थाओं की ओर से, मोहल्ले की तरफ से आदि। जरूरी नहीं है कि जिस कैम्प में जितना पैसा खर्च हो वह उतना ही अच्छा हो। बाज अच्छे-से-अच्छे कैम्पों में बहुत कम पैसा लगता है। बच्चा इन कैम्पों के अनुभव से किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर सकता है, यह इस पर निर्भर होता है कि कैम्प का संचालन किन लोगों के हाथ में है और उनका उद्देश्य क्या है।

इस प्रकार तमाम बच्चे दूसरे बच्चों के सम्पर्क में आते हैं और इस क्रम के द्वारा उनका श्रेष्ठता का घमण्ड, उनका लोभीपन, जरा-जरा सी बात पर रूठ जाना, आलस्य, धृष्टता, और स्वार्थपरता—सभी बुराइयाँ कम हो जाती हैं। (इस क्रम को किसी शिक्षा-विशेषज्ञ ने 'मनोवैज्ञानिक रेलमाल' का उपयुक्त नाम दिया है।) बच्चों के लिए यह बहुत जरूरी होता है कि वे इस बात को स्वयं देखें कि दूसरे बच्चे कितने दयालु, कितने सहानुभूतिमय, कितने मनोरंजक और कितने योग्य होते हैं। कैम्पों में वे दूसरे बच्चों में जो कौशल और निपुणता देखते हैं उनका वे सम्मान

करना सीखते हैं और जब दूसरे उनके विशिष्ट कला-कौशल को प्रशंसा से देखते हैं तो उनको बड़ा आनन्द प्राप्त होता है।

कैम्प में जाने से बहुत से बच्चों को अपने जीवन में पहली बार घर से बाहर रहने का अवसर मिलता है। इससे पहले उनको कभी एक रात के लिए भी घर से बाहर जाने का अवसर शायद प्राप्त न हुआ हो। जिन बच्चों को यह अनुभव उस समय मिल जाता है जब वे इसके लिए तत्पर रहते हैं, बाद में कहीं बाहर जाने पर उनको घर की याद इतनी बुरी तरह नहीं सताती। बच्चों को घर के वातावरण में इस प्रकार बाँधकर रखना कि बाहर जाने पर वे दुखी हों, उनके साथ कोई उपकार नहीं है।

कैम्प चुनते समय ध्यान में रखने योग्य कुछ बातें

१. रहने की जगह और सफ़ाई आदि का प्रबन्ध क्या ऐसा है कि बच्चे दुर्घटना या रोग के भय से सुरक्षित रहें?

२. क्या कैम्प में लेने से पहले हर बच्चे के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली गई है? यदि कैम्प के साथ नहीं तो कहीं पास में कोई डाक्टर मिल सकता है? क्या कैम्प के साथ कोई रजिस्टर्ड नर्स है? बीमार पड़ जाने पर बच्चों को उस समय तक अलग रखने का कोई प्रबन्ध है कि नहीं, जब तक यह न मालूम हो जाय कि कहीं उनको छूत की बीमारी तो नहीं है? क्या पिछले वर्षों में स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कैम्प में अच्छा प्रबन्ध रहा है?

३. कैम्प में दूध कहाँ से आता है? क्या दूध को इस प्रकार शुद्ध कर लिया जाता है कि रोग के कीटाणु मर जायँ? क्या कैम्प में तरह-तरह के भोजन का प्रबन्ध होता है? क्या खाने का प्रबन्ध किसी ऐसे आदमी के हाथ में है जो सन्तुलित भोजन के विषय में जानकारी रखता हो? क्या रसोई में काम करने वालों का डाक्टरी निरीक्षण करके यह निश्चित कर लिया गया है कि वे खाना पकाने के लिए उपयुक्त हैं अर्थात् रोग-ग्रस्त तो नहीं हैं?

४. क्या कैम्प में तैरने का प्रबन्ध सुरक्षापूर्ण है? जब बच्चे तैरने के लिए जाते हैं तो क्या डूबतों को बचाने के काम में निपुण बड़े लोग वहाँ रहते हैं? क्या बच्चों की देख-रेख के लिए काफी बड़े लोग होते हैं ताकि हर बच्चे पर निरन्तर निगरानी रह सके?

५. क्या कैम्प के संचालक अभ्यस्त, उत्तरदायित्वपूर्ण और समझदार हैं? क्या वे बच्चों से दिलचस्पी रखते हैं या केवल पैसा बनाना ही उनका ध्येय है?

कैम्प के सलाहकारो की क्या उम्रें हैं और उनका पिछला अनुभव क्या है ? खाली समय स्वस्थ रूप से बिताने के लिए उनके लिए क्या प्रबन्ध है ?

६. क्या कैम्प में इतनी विविध प्रकार की योजनाओ और कामों की व्यवस्था है कि हर बच्चे को अपनी पसन्द का काम करने का अवसर मिल सके ? कैम्प का कार्यक्रम ऐसा तो नहीं होता है कि बच्चो को एक क्षण की फुरसत न मिले या ऐसा तो नहीं होता कि बच्चो को इतना खाली वक्त मिले कि वे अपनी मनमानी करते रहें ? क्या इस बात की व्यवस्था होती है कि बडे बच्चों और छोटे बच्चो के लिए अलग-अलग काम की व्यवस्था हो ? क्या उन बच्चो के लिए कोई व्यवस्था है जो अकेले काम करना ज्यादा पसन्द करते हैं ?

७. कैम्प मे पुरस्कार और पारितोषिक के लोभ मे काम करने पर जोर दिया जाता है या प्रतियोगिता को कोई स्थान ही नहीं होता ? क्या बच्चो मे यह भावना पैदा होती है कि उनके काम की तुलना दूसरों से की जा रही है या बच्चों के काम के प्रति रचनात्मक रवैया रखा जाता है जिसमे बच्चो के काम को केवल उनके प्रयत्न और संलग्नता के आधार पर जॉचा जाता है ?

बच्चे की दृष्टि में खेल का क्या महत्त्व है



शायद हमको 'खेल' के लिए कोई नया शब्द ढूँढ़ना पड़ेगा। इतना छोटा सा सीधा-सादा शब्द जिसकी आवाज इतनी छोटी-सी और हल्की है उस महत्त्व को व्यक्त नहीं कर पाता जो बच्चों मे दिलचस्पी रखने वाले लोग इस क्रिया को देते हैं।

खेल वह वस्तु है जिस पर बच्चे का सारा जीवन आधारित होता है। बच्चा अपनी सारी शक्ति इसी में खर्च करता है। खेल से बच्चे की कल्पना तीव्र होती है। खेल से हाथ तथा मस्तिष्क दोनों की कुशलता में वृद्धि होती है। खेल के द्वारा दूसरों को समझने, उनके प्रति प्रेम और सहानुभूति रखने की क्षमता आती है।

प्रतियोगिता में भाग लेना, कठोर आघात को सहन करना, विजय पर घमण्ड न करना; कब अपनी बात पर अड़ जाना और कब अपने स्वार्थ को भुला देना, ये सब बातें बच्चा खेल के द्वारा ही सीखता है। धीरता तथा इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना खेल का उतना ही बड़ा भाग है जितना काम करने का है।

खेल के द्वारा बच्चा कठोर-से-कठोर आघात और दुःख को भी भूल जाता है। खेल से बच्चे की भावनाओं में रहने वाला खिंचाव कम हो जाता है और उसकी उन आकांक्षाओं को व्यक्त होने का अवसर मिलता है जो उसके हृदय में एकत्रित होती रहती हैं। खेल बच्चे के विकास का एक सक्रिय साझेदार है, क्योंकि क्रियाशीलता विकास के लिए उतनी ही जरूरी है जितना सोना और भोजन।

लेकिन बच्चे के खेल का कितना अधिक महत्त्व है इस बात को आज से केवल कुछ ही समय पहले समझा गया है। यदि हृदय की गहराई में छिपी हुई उन उमंगों को, जो खेल के द्वारा पूरी होती हैं, बचपन ही में व्यक्त होने का अवसर न मिले तो आगे चलकर यह हानिकारक साबित होता है। कुछ पुरुष और स्त्रियाँ ऐसी होती हैं जो अपने चारों ओर के जीवन में स्वतन्त्रतापूर्वक कभी भाग नहीं ले पाती हैं; उनका जीवन नीरस और एकान्तमय केवल इसलिए रहता

है कि वे दूसरों के साथ मिलने-जुलने का ढंग नहीं जानते। वे अपने-आप को स्वयंस्फूर्त मनोरंजन में खो देने में असमर्थ होते हैं। इसका कारण यह होता है कि शायद बचपन में उनकी उन उमंगों को, जो खेल में व्यक्त होती हैं, उभरने का अवसर नहीं दिया गया।

बच्चे के खेल से हमें क्या पता चलता है

खेल में बच्चे अपनी जिन प्रवृत्तियों और भावनाओं को व्यक्त करते हैं वे बहुत अर्थपूर्ण होती हैं। जब कोई बच्चा खेल में बेईमानी करता है तो शायद वह अपनी इस भावना को व्यक्त करता है कि उसके साथ भी बेइन्साफी की गई है। यदि किसी बच्चे को किसी दूसरे बच्चे से ईर्ष्या है तो सम्भव है कि वह इस भावना को केवल गुड़ियों से खेलते समय ही व्यक्त करता हो, किसी दूसरे समय नहीं; बच्चे को खेलते समय देखकर उसकी माँ को एक क्षण में इसका पूरा ज्ञान हो सकता है कि उसके अनुशासन के ढंग का बच्चे पर क्या प्रभाव पड रहा है। बच्चे को जो डाँट-फटकार मिलती है वह उसे गुड़ियों पर या हाथी-घोड़े आदि खिलौनों पर उतारता है। कभी-कभी इस प्रकार अपने माता-पिता के प्रति बच्चों की ऐसी भावनाओं का भी पता चल जाता है जिनका वैसे कभी सन्देह भी नहीं होता।

खेल बच्चे का बिलकुल वैसा ही काम है, जैसा दूकान पर बैठना या इंजन चलाना उसके पिता का है। यदि वह खेल में अपनी समस्त क्षमताओं का प्रयोग करने में सफल होता है तो उसे बिना किसी अड़चन का सामना किये आगे चलकर पूरा जी लगाकर अपना काम करने और उससे आनन्द प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती। बालक नन्दू लकड़ी के टुकड़ों से घर बनाने में या क्रिकेट खेलने के अभ्यास में ही अपना सारा समय व्यतीत करता था और बड़ा होकर जब वह नन्दकुमार बन गया तो वह इंजीनियर बन गया और नक्शों और योजनाओं में व्यस्त रहने लगा अथवा दूसरे बच्चों को खेलना सिखाने लगा।

खेल के लिए जरूरी चीजें

खेल के लिए 'अनिवार्य' वस्तु जगह है। भागने-दौड़ने के खेलों के लिए, जैसे चोर-चोर, या गेंद-तड़ी, या लुकी-लुकौअल, या लकड़ी-डोंडी आदि के लिए काफी जगह होनी चाहिए; जितने ही अधिक बच्चे हों, उनको उतनी ही अधिक जगह चाहिए। ६ बरस तक के बच्चे अपने घर से बहुत दूर खेलने नहीं जाते हैं और न उनको जाना ही चाहिए। परन्तु शायद ही कोई मोहल्ला ऐसा हो जहाँ मकानों की योजना बनाते समय इस बात का ध्यान रखा जाता हो। यदि हम गहरा

बनाते समय जान-बूझकर इसकी पूरी कोशिश करते कि बच्चों को कहीं खेलने की जगह न मिलने पाए, तो भी शायद हम इससे बुरे शहर न बना पाते जैसे आज हमारे शहर हैं। फिर इसमें आश्चर्य की क्या बात है कि स्कूल जाने वाले बच्चे अनेक बार दुर्घटनाओं का शिकार हो जाते हैं, क्योंकि सड़क ही एक ऐसी जगह होती है जहाँ वे खेल सकते हैं।

देहात के बच्चों को खेलने के लिए जितनी स्वतन्त्रता मिलती है उतना ही उनको शहर के लोगों से सम्पर्क में आने का अभाव रहता है; इस प्रकार लाभ-हानि दोनों बराबर हो जाते हैं। 'चीखने' और 'चिल्लाने' तथा प्रकृति द्वारा प्रदान किये हुए खेल के असंख्य साधनों का पूरा उपयोग करने के समान लाभदायक तो दूसरी चीज़ है ही नहीं—जैसे झरनों, जंगलों, चट्टानों, गुफाओं और जंगली जीव-जन्तुओं आदि का उपयोग करना।

जब तक बच्चे स्कूल जाने योग्य नहीं होते उस समय तक तो वे एक या दो साथियों के साथ खेलने से ही सन्तुष्ट रहते हैं, पर उसके बाद वे अधिक बड़े समूहों में खेलने लगते हैं। छुई-छुऔअल, चोर-चोर या चूहा-भाग-बिल्ली-आई आदि खेलने के लिए तो कुछ लड़के ऐसे होने जरूरी हैं जो भागें और कुछ ऐसे जो पकड़ें। नेता बनने के लिए जरूरी है कि एक समूह हो जिसका नेतृत्व किया जाय।

विकास के साथ-साथ रुचियाँ भी बदलती हैं

स्कूल के शुरू के वर्षों में बच्चे की क्रियाएँ ऐसी होती हैं जिनमें सारे शरीर का काम होता है, पर जब बच्चे को हाथ और पाँव तथा पीठ के स्नायुओं पर काबू हो जाता है तो वह ऐसे खेल ज्यादा खेलने लगता है जिनमें इसकी जरूरत होती है कि शरीर के विभिन्न भागों में एक कुशलतापूर्ण सहयोग हो—जैसे गोली खेलना, गिल्ली-डंडा खेलना तथा हर प्रकार की दस्तकारी में दिलचस्पी रखना। जैसे-जैसे उसके मस्तिष्क का विकास होता जाता है वैसे-वैसे बच्चे की दिलचस्पी ऐसे खेलों में बढ़ती जाती है जिनमें मानसिक चेतनता तथा स्मृति की आवश्यकता होती है—ताश के खेल, शब्दों के खेल, पहेलियाँ आदि। जो माता-पिता अपने बच्चों के साथ ये खेल खेलते हैं वे केवल परिवार की प्रसन्नता और उसके सामञ्जस्य में योग ही नहीं देते बल्कि साथ-ही-साथ वे अपने बच्चों का शब्द-भण्डार भी बढ़ाते हैं, उनको गणित का अभ्यास कराते हैं तथा उन्हें अच्छा खिलाड़ी बनने की कला का अभ्यास कराते हैं।

इस अवस्था मे पहुँचकर बच्चों को सुडौल तथा सुन्दर चीजें बनाकर तैयार करने का बडा शौक होता है। हवाई जहाज का नमूना, घर की बनी हुई नाव जो सचमुच चलती हैं, कपडे की गुड़िया आदि, ये सब शुरू मे तो बहुत ही भद्दी बनती हैं पर धीरे-धीरे बच्चे इन कामों मे बहुत कुशल हो जाते हैं और सुन्दर तथा सुडौल चीजे बनाने लगते हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे अपने हाथो का प्रयोग करने मे निपुण हो जायँ और विभिन्न प्रकार के कामो मे दक्ष हो जायँ तो इसके लिए जरूरी है कि उनके पास औजार तथा सामान हो, काम करने की जगह हो, तथा 'काम करने की विधि' के बारे मे एक किताब हो जिसे देख-देखकर वे काम कर सके। एक माँ, जो एक छोटे से घर मे रहती थी, कई हफ्ते तक अपने बेटे को रसोईघर मे कोई खिलौना मरम्मत करते देखती रही, परन्तु उसने सोचा कि इससे उसे जो थोड़ी सी तकलीफ उठानी पडती है वह बच्चे की इस प्रकार होने वाली शिक्षा के सामने कोई महत्त्व नहीं रखती।

लड़कों और लड़कियों की रुचियों में अन्तर

लड़को और लडकियों की खेल-सम्बन्धी रुचियो के अन्तर का और ध्यान से अध्ययन करना चाहिए। ८ या ९ वरस की आयु तक दोनो की रुचियाँ प्रायः एक समान ही मालूम होती हैं पर इसके बाद ऐसे खेलो की संख्या कम होती जाती है जिनमे लडके और लड़कियाँ साथ खेलते हो।

परन्तु कोई लडका न तो पूर्णतः 'लड़का' होता है और न कोई लडकी पूर्णतः 'लडकी'। बहुत सी ऐसी प्रवृत्तियाँ, जिनको मर्द और स्त्रियो की प्रवृत्तियाँ कहा जाता है, दोनो में पाई जाती है—लडको की प्रवृत्तियाँ लडकियो मे और लड़कियों की प्रवृत्तियाँ लड़को मे। यह बात सबसे पहले खेल-सम्बन्धी रुचियो में देखने में आती है और फिर आगे चलकर स्कूल मे विषयो के चुनाव मे तथा किसी विशेष पेशे के लिए शिक्षा का चुनाव करते समय।

चूँकि यह बात बहुधा स्वीकार की जाती है कि पुरुषो मे स्त्रियो की अपेक्षा कुछ बातो मे श्रेष्ठता पाई जाती है जैसे डीलडौल मे, बल मे तथा शरीर को आसानी से घुमाने की क्षमता के मामले मे, इसलिए हम लडको से ऐसे कामो की आशा रखते हैं जो शारीरिक विशेषताओ के अनुकूल हो, तथा लडकियो से दूसरे प्रकार के व्यवहार की आशा करते है। हमारे सामाजिक रीति-रिवाजो मे मर्द और औरतों के लिए वही काम बताए जाते है जो उनकी भिन्न शारीरिक विशेषताओ के अनुकूल हो। लेकिन यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि हम इतना ध्यान रखे कि

हर बच्चे में मर्दों तथा स्त्रियों दोनों की प्रवृत्तियों का मिश्रण होता है।

वह 'मर्दानी' लडकी, जिसे लोग नापसन्द करते थे, अब उतने असम्मान की दृष्टि से नहीं देखी जाती; अब हम इस बात को समझने लगे हैं कि स्फूर्तिमय क्रियाशीलता तथा शारीरिक स्वतन्त्रता का लड़कियों के लिए भी उतना ही महत्त्व है जितना लडकों के लिए। लेकिन जब कोई बड़ी लडकी जीवन में अपने स्त्रियोचित व्यवहार के खिलाफ प्रतिरोध करने लगती है और हमेशा लड़कों-जैसे कपड़े पहनने, बाल छोटे कटवाने के लिए हठ करती है और लडके-लड़कियों की मिली-जुली संगत पर नाक-भौं सिकोड़ने लगती है तो हमें सावधान हो जाना चाहिए और इस बात का पता लगाना चाहिए कि आखिर वह इतना अस्वाभाविक और असाधारण मार्ग क्यों अपनाती है, क्योंकि युवावस्था प्राप्त होने के बाद अधिकांश लडकियाँ बनाव-सिंगार आदि स्त्रियों के अधिकारों की ओर अधिक ध्यान देने लगती हैं।

यदि किसी लड़की का अनुभव दूसरी लड़कियों के साथ सुखमय नहीं रहा है तो हमें प्रयत्न करके उसकी तथा दूसरी लड़कियों की रुचियों के अन्तर को दूर करना चाहिए। यदि कोई पुत्र न होने के कारण किसी लड्की का पिता उसे 'मेरा बेटा' कहता है और उसके मर्दाने व्यवहार पर गर्व करता है और वह भी अपने पिता की आशाओं को पूरा करने के लिए लडकों की तरह रहती है तो हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि पिता वास्तविकता को देखे। जब लड़कियाँ यौनिक प्रौढ़ता प्राप्त कर लेती हैं तब उनकी खेल-सम्बन्धी रुचियाँ निश्चित रूप से बदल जाती हैं। वे गुड़ियों को भूल जाती हैं। पुरानी रुचियों के स्थान पर (वे चाहे जो भी रही हों) पार्टियों में और लडकों में उनकी दिलचस्पी बढ़ जाती है। आजकल लड़कियाँ पहले की अपेक्षा ज्यादा जल्दी जवान हो जाती हैं, इसलिए उनके माता-पिता को इसके लिए तैयार रहना चाहिए कि जब वे उनको छोटी बच्चियाँ ही समझते हों उनको मासिक-धर्म आरम्भ हो जाय। हम विकास को न रोक सकते हैं और न रोकना चाहते हैं, इसलिए उचित यही है कि हम उन परिवर्तनों को समझें जिनके कारण लड़कियाँ लड़कों में, फिल्म-अभिनेत्रियों में तथा बनाव-सिंगार में अधिक दिलचस्पी लेने लगती हैं—और वे कभी-कभी अपने इस अधिकार का भी प्रयोग करने लगती हैं कि परिवार के दूसरे लोगों से अलग वह कुछ देर के लिए अपने कमरे में अकेली रह सकें।

लड़कियों में अक्सर यह भावना उठती है कि यदि वे लड़का होतीं तो



कितना अच्छा होता, परन्तु शायद ही किसी लडके मे इस प्रकार की भावना होती
हो। वे माताएँ जिनकी बेटियाँ इस भावना को लेकर बडी होती है कि औरत होना
एक गर्व की बात है, इस बात को प्रमाणित करती है कि वे स्वयं सामाजिक रूप से
कितनी संतुलित हैं। कुछ लड़कियो को यह भावना रहती है कि सारा संसार औरतो
के खिलाफ है और इसके कारण उनमे एक प्रतिरोध की भावना पैदा होती है।
औरतो के साथ असमानता बरती जाती है, यह सच है। परन्तु यदि किसी लड़की
का बचपन इतना सुखमय रहा है कि वह कभी अपने अतिरिक्त कुछ और होने की
कल्पना भी नहीं करती, तो वह आगे चलकर जीवन मे एक ऐसी लड़की की अपेक्षा
ज्यादा संतुष्ट रहेगी, जो प्रतिरोध की भावना से भरी रहती है।

सामूहिक खेल

बच्चे जैसे-जैसे १० बरस के होने लगते है उनको संगठित टोलियों के साथ
मे खेलना ज्यादा अच्छा लगने लगता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह होना है कि
उनका 'सामाजीकरण' हो रहा है, वे केवल अपने स्वार्थ को छोडकर सारे समूह
की भलाई के बारे मे सोचने लगते हैं। पहले वे स्वयं अपनी विजय के इच्छुक रहते
थे, परन्तु अब उनके सामने हमेशा उनकी 'टोली' के जीतने का सवाल रहता है।



हॉकी, वॉलीवाल, फुटवाल और टेनिस आदि खेल इस स्वस्थ और प्रशंसनीय भावना के विकास का अवसर देते हैं। शारीरिक चोट का खतरा, निराशा की वेदना और कभी-कभी अन्यायपूर्ण व्यवहार, ये सब चीजें खेल का ही एक अंग मानी जाती हैं।

हर बच्चे को सामूहिक खेलों में, या किसी भी खेल में, एक समान दिलचस्पी नहीं होती—किसी को कम होती है किसी को ज्यादा। यदि कोई लड़का या लड़की सामूहिक खेल के प्रति इतना उत्साह नहीं दिखाता है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें 'खिलाड़ियों के गुण का अभाव' रह जायगा। संभव है कि वह लड़का या लड़की किसी एक साथी के साथ प्रतियोगिता के द्वारा 'पराजय को सहर्ष स्वीकार करने' का गुण पैदा कर रहा हो, उदाहरण के लिए टेनिस के द्वारा, या ऊँचा कूदने या वर्फ पर दौड़ने में वह सबसे अच्छा बन रहा हो।

बच्चे को किसी ऐसी चीज के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए जिसमें हमारी राय में उसे दिलचस्पी होनी चाहिए, परन्तु यह जरूरी है कि उसे कई प्रकार के खेलों में रुचि हो और उनसे उसको शारीरिक बल प्राप्त हो रहा हो। ऐसा न हो कि वह किसी गुप्त भय या अयोग्यता की भावना के कारण इन चीजों से दूर रहता हो। इस बात का फैसला हर बच्चे को स्वयं करने देना चाहिए कि वह क्यों खेलना चाहता है और किस प्रकार खेलना चाहता है. परन्तु इसमें भी इसका ध्यान रहना चाहिए कि वह अपने प्रतिदिन के साथियों से दूर न हटता जाय, क्योंकि इस प्रकार के सम्पर्क के बिना बच्चा दूसरों के साथ मिलकर जीवन बिताना नहीं सीखता। परन्तु इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि बहुत से बच्चे ऐसे होते हैं कि यदि बिना किसी अनुकरणीय उदाहरण के उनको स्वयं अपने निश्चय के सहारे छोड़ दिया जाय तो उनकी रुचियाँ बहुत सीमित हो जाती हैं और वे घुटकर रह जाते हैं। बच्चों का साथ देकर और उनको साधन प्रदान करके माता-पिता और दूसरे बड़े लोग बच्चों की इसमें बड़ी सहायता कर सकते हैं कि उनमें उत्साहजनक, मनोरंजक रुचियाँ पैदा हों।

खेल के द्वारा विकास का अपार अवसर

लगभग ६ बरस की आयु के बाद से बच्चों के खेलों की संख्या अपेक्षतः कम होती जाती है। जैसे-जैसे उनकी कुछ विशेष रुचियाँ पैदा होने लगती हैं, वे उन्हीं चीजों को ज्यादा समय देते हैं जिनमें उनको ज्यादा रुचि होती है, और इस प्रकार कुछ चीजें बिलकुल ही छूट जाती हैं। तैरना, तितलियाँ जमा करना या रंग-चित्र बनाना—जो भी चीज़ शौक बन जाती है, वह खेल के दूसरे रूपों से बच्चे से छुड़ा देती है।

इसका अर्थ यह हुआ कि यदि हम चाहते हैं कि बच्चों का जीवन उल्लास से भरपूर और अनुभवमय हो तो हम उनको बचपन में ही तरह-तरह के प्रयोगों के लिए अवसर देंगे। बच्चे इसके लिए बदनाम हैं कि उनमें सहसा जोश आ जाता है, और वे अपनी शक्ति ऐसे कामों में बरबाद करते रहते हैं जो बहुधा हमें महत्वहीन और निरर्थक प्रतीत होते हैं।

इन अचानक पैदा होने वाली अल्पकालीन रुचियों के पीछे, जिनमें से कई तो उतनी ही अचानक खत्म भी हो जाती हैं, बच्चे की विविध प्रकार की अनेक चीजों के बारे में जानने की उत्सुकता और कौतूहल छिपा रहता है। वह दूसरी चीजों का पता लगाना चाहता है, नई-नई जगहें खोज निकालना चाहता है, और नये-नये

प्रयोग करना चाहता है। उसे अब केवल कल्पना से और किसी खिलौने को उसके असली रूप के समान समझकर सन्तुष्टि नहीं होती; यदि कोई लड़का हवाई जहाज का नमूना बनाता है तो वह चाहता है कि वह उड़े, जब कोई लड़की चूल्हा बनाती है तो वह चाहती है कि उस पर सचमुच रोटी सिक जायँ।

वास्तविक चीजों के साथ प्रयोग करने की इच्छा, और 'कठिनाई का मार्ग अपनाने की अभिलाषा' कभी-कभी उसे मुसीबत में फँसा देती है या वह कोई-न-कोई मुसीबत खड़ी कर देता है। यह जानने की उत्सुकता में कि थर्मामीटर में पारा जब बिलकुल ऊपर चढ़ जाता है तो क्या होता है, नरेन्द्र दियासलाई जलाकर उसकी घुंडी को गर्म करता है या शंकर जमीन से १५ फुट ऊँचाई पर लगे हुए तख्ते पर चलने का प्रयत्न करता है और उसकी माँ अचानक खिड़की में से झाँकती है तो देखती है कि पड़ोस में जो नया मकान बन रहा है उसकी शहतीर पर शंकर डगमगाता हुआ चल रहा है।

हर माँ इस बात के सैकड़ों उदाहरण दे सकती है कि वास्तविक अनुभव के फेर में उनके बच्चे कैसी-कैसी मूर्खताएँ और शरारतें करते हैं। माताओं की तरह पिता बच्चों की शरारतों पर इतना परेशान नहीं होते—शायद उनको इतनी बार बच्चों की शरारत का परिणाम भुगतना नहीं पड़ता और माताओं की अपेक्षा वे ज्यादा दूर की बात भी ध्यान में रखते हैं। अन्य रुचियाँ होने के कारण उनके दृष्टिकोण में एक विस्तार आ जाता है और इसलिए वे माताओं की तरह जरा-सी बात पर चिन्तित नहीं हो उठते।

वास्तविक अनुभव का स्थान कोई दूसरी चीज नहीं ले सकती, चाहे वह अनुभव मिट्टी से सम्बन्ध रखता हो (पानी की धारा रोकने के लिए बाँध बनाना), या हवा से (पतंग उड़ाना), या ऊँचाई से (पेड़ पर चढ़ना), या मशीन से (साइकिल की मरम्मत करना), या चूल्हे से (खाना पकाना), या रंगों से (रंगीन चित्र देखना)।

इन सब अनुभवों का अवसर लड़कियों को भी इतनी ही पूरी तरह मिलना चाहिए जितना लड़कों को। यदि इस अवस्था में लड़के और लड़कियों में स्वस्थ प्रकार का मेल-जोल हो तो आगे चलकर एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ सकने का आधार स्थापित हो जाता है। यदि दमयन्ती भी देवेन्द्र के कुत्ते पालने के शौक में बढ़-चढ़कर भाग ले तो देवेन्द्र भी कागज की गुड़ियाँ खेलने के कारण उसे 'मूर्ख' लड़की समझकर नाक-भौं नहीं सिकोड़ेगा। यदि प्रेमा पड़ोस के लड़कों की फुटबाल

की टीम के साथ मिलती-जुलती रही है तथा उनको प्रशंसा की दृष्टि से देखती रही है और प्रह्लाद भी पतंग उडाने मे उसकी सहायता करता रहा है तो वह सब लड़कों को 'उजड्ड' कहकर उनसे नाता नहीं तोड लेगी।

जब बच्चे जल्दी में बिना सोचे समझे किसी काम में कूद पड़ते हैं, यद्यपि बाद में वे उतना ही अचानक उस काम को त्याग भी देते हैं, तो अक्सर उनके माता-पिता अकारण ही परेशान हो जाते हैं। यह बहुधा उस समय होता है जब बच्चे के माता-पिता उसकी नई रुचियों को बहुत ही गम्भीरतापूर्वक देखना आरम्भ करते हैं। महेन्द्र अपना सारा खाली समय एक पेंसिल बनाने वाले ब्लेड से लकड़ी पर बेल-बूटे खरादने में व्यतीत करता है, परन्तु कुछ दिनों के बाद जब उसके पिता उसके लिए लकड़ी खरादने के औज़ार लाते हैं तब तक उसका शौक खत्म हो चुका होता है।

इसी प्रकार के असंख्य दूसरे उदाहरण दिये जा सकते हैं। माता-पिता को यह निराशा होती है कि उनका बच्चा 'किसी काम को जमकर नहीं करता', विशेष रूप से उस समय और भी निराशा होती है जब उसकी किसी योजना में पैसा लगाया गया हो और काफी मेहनत की गई हो। बच्चा इसका कोई कारण नहीं बता सकता कि अब उसे उस चीज़ में दिलचस्पी क्यों नहीं रह गई। इसके फलस्वरूप उसमें और उसके माता-पिता में टकराव पैदा होता है।

इस सम्बन्ध में कई बातों पर विचार करना चाहिए। पहली बात तो यह कि उस विशेष अनुभव से बच्चा जो-कुछ प्राप्त करना चाहता था वह शायद उसे मिल गया। एक बच्चा, जिसे चित्र बनाने के लिए रंगों के डिब्बे की बहुत दिन से लालसा थी, उसे पा जाने पर कुछ हफ्ते तक तो उसके पीछे दीवाना रहता है फिर सहसा उसे ऐसे भूल जाता है जैसे वह कभी था ही नहीं। दूसरा कारण यह हो सकता है कि किसी दूसरी चीज़ में उसके अपने पास-पडोस के लड़कों में ज़्यादा ख्याति प्राप्त हो गई हो और उसे वह चीज़ रंगीन चित्रों के अनुभव की अपेक्षा अधिक प्रिय और महत्त्वपूर्ण मालूम होने लगी हो।

यह आशा नहीं करनी चाहिए कि बच्चा हर उस मार्ग पर आखिर तक जायगा जिसे वह समय-समय पर अपनाता रहता है। उस मार्ग पर आगे बढ़ते समय, सम्भव है कोई दूसरा मार्ग निकल आए, जो उससे भी ज़्यादा आकर्षक हो। वह लड़की, जो किसी समय नाटक में अभिनय करके फूली नहीं समाती, सम्भव है कुछ दिन बाद यह समझने लगे कि प्राकृतिक दृश्यों के चित्र खींचना उसे अधिक

रुचिकर है। या वह लड़का, जो शुरू में एक पत्र निकालने के लिए उसके लिए छापाखाना ढूँढ़ने में अधिक दिलचस्पी लेता है पर आगे चलकर वह केवल पत्र के लिए कहानी लिखने में दिलचस्पी लेता है।

बचपन जीवन का एक ऐसा काल होता है जिसमें बच्चा कई प्रकार के कामों का अनुभव प्राप्त करे। उनमें से कई काम तो ऐसे होंगे जो केवल कुछ ही दिन तक चलेंगे। लेकिन इससे क्या अन्तर पड़ता है, यदि बच्चा उस काम में व्यस्त रहता है, उसमें दिलचस्पी रखता है, और उससे कुछ सीखता है? बच्चा कितने विभिन्न प्रकार के कामों में दिलचस्पी लेता है, इससे उसकी प्रतिभा और प्रखर बुद्धि का पता चलता है। जब बच्चों में तीव्र उत्सुकता और असीम कौतूहल होगा तभी यह सम्भव हो सकता है कि बच्चे जमकर लगन के साथ कई प्रकार के कामों में हाथ डालकर उनका अनुभव प्राप्त करें। इस प्रकार के प्रतिभाशाली प्रखर बुद्धि के बच्चे ऐसा नहीं करते कि अपने खाली समय में जो काम सबसे पहले सामने आए उसको करने पर तैयार हो जायँ, बल्कि वे जब भी मौका पाते हैं अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए जी-जान से कोशिश करते हैं।

कुछ विचारशील माता-पिता कहते हैं, "लेकिन क्या यह बुरी बात नहीं है कि बच्चा जिस काम में हाथ डाले उसे पूरा न करे? यदि वह इसी प्रकार एक काम से दूसरे काम में भटकता रहा तो क्या उसके मस्तिष्क में अस्थिरता और चंचलता नहीं आ जायगी? यदि किसी काम के प्रति हमारा उत्साह कम भी हो जाय तो भी उसमें जुटे रहकर ही हम स्थिर बनना सीखते हैं।"

बच्चे को कब अड़ जाना चाहिए

यह बात केवल आंशिक रूप से सत्य है। यह सच है कि बच्चों को कभी-कभी कठिन और अरुचिकर कामों को जमकर करने की शिक्षा भी मिलनी चाहिए। लेकिन क्या स्कूल और घर के कामों में उनको इसका काफी अभ्यास नहीं होता? खाली समय में बच्चे काम की जो योजनाएँ बनाते हैं उनमें हमको उन्हें बहुत ज्यादा रोकना-टोकना नहीं चाहिए। हम यह नहीं चाहते कि वे तरह-तरह के अनुभव प्राप्त करने में दिलचस्पी छोड़ दें। यदि कोई बड़ा आदमी शौक के लिए क्रिकेट खेलना शुरू करे, पर कुछ दिन बाद उसकी रुचि खतम हो जाय और वह हॉकी खेलने लगे, तो उसे अपराधी अनुभव करने का कोई कारण नहीं है। फिर बच्चों से, जिनमें बड़ों की अपेक्षा भले-बुरे का निर्णय करने की क्षमता बहुत कम होती है, यह आशा कैसे की जा सकती है कि और कई चीजों का

अनुभव किये और कई चीजों मे हाथ डाले और वह एकदम से उन चीजों को चुन लेंगे जिनमे उनकी रुचि आखिर तक रहेगी ?

एक आठ बरस की लड़की अपने मित्र की निपुणता से प्रेरणा प्राप्त करके सितार बजाना सीखना चाहती है। कुछ दिन तक उसे गाना सिखाए बिना ही हम यह कैसे कह सकते हैं कि गाना सीखना उसके लिए बेकार है ? यदि जी लगाकर अपनी पूरी कोशिश करने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचती है कि उसे संगीत मे रुचि नहीं है या उसकी उँगलियों मे इतनी दक्षता नहीं है कि वह सितार बजाने मे उन्नति कर सके और इस कारण वह सितार सीखना बन्द कर देती है तो यह कौन कह सकता है कि उसने जो कुछ सीखा है उसका मूल्य उस पर खर्च होने वाले समय और धन की तुलना मे बहुत तुच्छ है ? यदि कुछ और नहीं तो उसने गवैयों का सम्मान करना तो सीखा ही, क्योंकि इससे उसे अब इसका कुछ ज्ञान तो हो ही गया कि अच्छा सितार बजाना सीखने के लिए कितने समय और श्रमपूर्ण प्रयत्न की जरूरत होती है। उसने संगीत के बारे में और संगीत-शब्दावली के बारे में कुछ ज्ञान तो प्राप्त कर ही लिया जिससे उसके ज्ञान मे वृद्धि हुई। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो उसने यह सीखी कि उसे संगीत मे रुचि नहीं है और इसलिए वह अब कोई दूसरा काम आरम्भ कर सकती है।

ऐसे बच्चे जो अपनी सारी शक्ति इतने विभिन्न प्रकार के कामो मे लगाते हैं कि कोई काम भी पूरा नहीं होता, उनको निश्चय ही सहायता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के बच्चों की प्रवृत्ति को बदलने का एक उपाय तो यह है कि बच्चे को उसकी जल्दबाजी और उसके क्षणभंगुर उत्साह के परिणाम का ज्ञान कराने के लिए उसे अपने पैसे खर्च करने पर बाध्य किया जाय। यह योजना उस समय सफल होती है जब बच्चे को कुछ पैसे नियमित रूप से मिलते हों। ऐसा करने से विजय बेकार पत्रिकाएँ खरीदना छोड़कर सहसा प्लाईवुड के खिलौने बनाने में दिलचस्पी लेने लगता है। यह बात तो विजय की समझ मे भी आसानी से आ सकती है कि जो पैसे वह बेकार खर्च करता रहता था उनसे प्लाईवुड के खिलौने बनाने का बहुत सा सामान खरीदा जा सकता था।

बच्चे को अपने अनुभव से सीखने देने का काम बहुत कठिन होता है। हम अपनी इस अवस्था मे बच्चे की अपेक्षा ज्यादा दूर की बात सोच सकते हैं, इसलिए हम झट से फैसला कर देते हैं—"नहीं यह फिजूल है।" या "तुम क्या जानो, मैं जानता हूँ।" उचित यह है कि हम बच्चे को अपने फैसले के परिणाम से

सीखने का मौका है, और अधिकांश मौकों पर वह अपने अनुभव से मदद लेता है।

बच्चों के लिए पालतू जानवर क्यों जरूरी हैं

हममें से शायद ही कोई ऐसा हो जिसे अपने बचपन के दिनों की याद करते समय किसी पालतू जानवर की याद न आए। यदि हम देहात में रहते थे तो हमारे यहाँ गाय या भैंस जरूर पली रही होगी, पर यदि हम शहर के किसी छोटे से तंग मकान में रहते थे तो शायद हमारे यहाँ कोई मैना पिंजरे में पली होगी या शीशे के बर्तन में मछलियाँ।

बच्चे को किसी जीवित प्राणी से घनिष्ठ मित्रता रखने का अवसर देने से उसमें सहानुभूति और कोमलता जाग्रत होती है। इस प्रकार बच्चे के लिए यह भी सम्भव होता है कि वह बिना किसी भय या झिझक के अपना प्रेम व्यक्त कर सके। यदि आठ बरस का बच्चा हमेशा अपने माता-पिता की गोद में चिपका रहे तो सब लोग उस पर हँसेंगे, पर अपने कुत्ते को दिन-भर गले लगाए रहने पर कोई उसकी आलोचना नहीं करता। पालतू जानवर अपना प्रेम तो प्रदर्शित करते हैं पर शायद ही कभी ऐसा होता हो कि वे अपनी अप्रसन्नता प्रकट करते हों। पालतू जानवरों का यह व्यवहार बच्चे के लिए बहुत महत्त्व रखता है कि वे बच्चे के प्रति अपनी स्वीकृति दिखाते हैं, कभी उससे नाराज नहीं होते।

बच्चे डब्बों, अलमारियों तथा अपनी जेबों में भर-भरकर जो विचित्र और सुन्दर जीव-जन्तु घर में लाते हैं उनके बारे में यह कहने के बजाय कि "ये गन्दी चीजें रसोई में न लाना," यदि हम उनको उन जीवों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए किताबें आदि लाकर दें तो ज्यादा अच्छा है।

बच्चे अपने पालतू जानवरों की देखभाल की कितनी जिम्मेदारी ले सकते हैं और कितनी उनको लेनी चाहिए? माता-पिता को बहुधा इस कारण निराशा होती है कि बच्चा अपने पालतू जानवरों से प्यार तो बहुत करता है पर वह उनकी जरूरतों को हमेशा याद नहीं रखता। लगभग ८ बरस की आयु के बाद बच्चे को अपने पालतू जानवरों को खाना खिलाने की जिम्मेदारी दी जा सकती है और धीरे-धीरे उनकी देखभाल से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी जिम्मेदारियाँ भी उसको सौंपी जा सकती हैं।

परन्तु बच्चों को याद दिलाने की जरूरत पड़ती है। कुछ बच्चों में दूसरे बच्चों की अपेक्षा आदतें ज्यादा जल्दी पड़ जाती हैं और जिन आदतों का सम्बन्ध रुचिकर बातों से होता है वे जल्दी पड़ जाती हैं। जिस प्रकार हमें बच्चों को बार-

बार यह याद दिलाना पड़ता है कि वे खाना खाने से पहले हाथ धोया करें, यद्यपि हम बचपन से ही उन्हें इसकी शिक्षा देते आए हैं, उसी प्रकार शायद उन्हें बार-बार यह याद दिलाने की जरूरत पड़े कि वे अपनी मछलियों को आटे की गोलियाँ खिला दें या अपनी मुर्गियों को दाना खिला दें। लेकिन याद दिलाने का यह अर्थ न हो कि हम उनके पीछे पड़ जायें।

बाज माता-पिता अपने बच्चों के लिए पालतू जानवर इसलिए लाकर नहीं देते कि किसी जमाने में कोई पालतू जानवर मर गया था जिसका दुख उनको अब तक सताता है। यह कारण कोई महत्त्व नहीं रखता; कभी-न-कभी तो बच्चा किसी की मृत्यु देखता ही है और यद्यपि हम अपने बच्चों को जान-बूझकर शोक पहुँचाना नहीं चाहते फिर भी जानवरों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने से बच्चों को जो लाभ होते हैं वे शायद उस शोक से कहीं ज्यादा होते हैं जो उनको उन जानवरों से बिछुड़ने पर होता है। यदि हम फौरन ही दूसरा कुत्ता या बिल्ली लाकर उसे दे दें तो उसके प्रति नई घनिष्ठता धीरे-धीरे पिछले जानवर की मृत्यु के शोक को मिटा देगी। बच्चा लाख कहे कि अब वह कभी किसी से इतना लगाव नहीं रखेगा पर इसका अर्थ केवल यह होता है कि वह अपनी प्रेम करने की क्षमता से परिचित नहीं है।

पालतू जानवर और यौन शिक्षा

जब जानवरों के बच्चे होते हैं तो उससे हमारे बच्चों को बहुत सी बातें समझ में आती हैं। जितनी अच्छी तरह वे इस अनुभव से सीख सकते हैं उतनी अच्छी तरह चित्रों या शब्दों से नहीं सीख सकते कि बच्चा जन्म कैसे लेता है या माताएँ अपने बच्चों का लालन-पालन किस प्रकार करती हैं। बच्चे के जन्म को एक रहस्य बनाकर रखने के बजाय यह ज्यादा अच्छा है कि हम किसी कुत्ते या बिल्ली के उदाहरण से बहुत सीधे-सादे और स्वाभाविक ढंग से बच्चों को इस रहस्य का ज्ञान करा दें। आठ वर्षीय उर्मिला इस बात पर मारे खुशी के नाच उठती है कि बिल्ली ने बच्चे देने के लिए उसके बिस्तर को पसन्द किया। सात वर्षीय प्रसाद सारी रात को उठ-उठकर यह देखता है कि कुत्ते के पिल्ले मजे में हैं कि नहीं। वह बच्चे तो बहुत ही भाग्यशाली हैं जो देहातों में भेड़ों के बच्चों, मुर्गियों के बच्चों और बछड़ों के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध रखते हैं; जिनके सामने बच्चा होने की बात करने में किसी को झिझक नहीं होती।

और सेक्स के आध्यात्मिक महत्त्व को समझाने के लिए बच्चों के प्रति उनकी माता की ममता और उनके पिता के प्रेम से अच्छा साधन और क्या हो सकता है?

यद्यपि बच्चे के पास उसका 'अपना' कोई पालतू जानवर न भी हो तब भी वह इस भावना को अत्यन्त विकसित रूप में चिड़ियों में देख सकता है।

परन्तु जब भी सम्भव हो बच्चों को जानवरों के बारे में वह घनिष्ठ जानकारी प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए, जो केवल जानवरों के साथ रहकर ही प्राप्त की जा सकती है। बच्चा जब कुत्ता या बिल्ली पालने की या खरगोश पालने की इच्छा प्रकट करे तो 'नहीं' कहने से पहले हमें काफी सोच-विचार कर लेना चाहिए।

सेक्स-आधारित खेल

छः या सात वर्ष के बच्चों की माता यह जानकर अकारण ही चिन्तित हो जाती है कि पड़ोस के बच्चे कोई सेक्स-आधारित खेल खेलते हैं। यद्यपि इस खेल का कोई महत्त्व न भी हो फिर भी खुले आम खेलने के बजाय इसे छिप-छिपकर खेला जाता है, क्योंकि बच्चों के दिमाग में यह बात बिठा दी गई है कि शरीर के कुछ अंगों के बारे में उत्सुकता प्रकट करना वर्जित है और अपने शरीर के बारे में जानने की उनकी स्वाभाविक उत्कंठा को कभी ठीक से सन्तुष्ट नहीं किया गया। इस प्रकार की घटनाओं से हमें घबरा नहीं जाना चाहिए। वैसे भी माँ किसी भी घटना के बारे में बात का बतंगड बना देती है, परन्तु इस प्रकार के मामलों में हम इतने अज्ञानी हैं और हमारी समझ-बूझ इतनी कम है कि बहुत सी माताएँ इस घटना से इतना चौंक जायँगी कि वे अपने बच्चों को उस समूह के साथ खेलने नहीं देंगी। ऐसा करना बुद्धिमानी नहीं है। कोई ऐसा कदम उठाना या कोई ऐसा दण्ड देना, जिससे बच्चों में यह भावना पैदा हो कि उन्होंने अपराध किया है, ठीक नहीं है। जरूरत से ज्यादा बात कह देने से, या गलत बात कहने से अच्छा यही है कि बच्चों से ऐसे मामले के बारे में कुछ भी न कहा जाय। इससे अच्छा यह होगा कि उनके दिमाग को दूसरी तरफ लगाया जाय और उनमें नई रुचियाँ पैदा की जायँ, तथा सब बच्चों की माताएँ मिलकर उनके खेलने-कूदने के लिए ज्यादा रचनात्मक और सन्तोषजनक योजनाएँ बनाएँ। कभी-कभी एक या दो माताओं पर इसकी जिम्मेदारी आ पड़ती है कि वे खेल का सामान और खेलने की जगह का इन्तजाम करें।

हमें ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए जिससे ऐसी घटनाएँ एक दुखद स्मृति के रूप में हमेशा के लिए बच्चे के दिमाग में बैठ जायँ। बच्चे में यह भावना पैदा करके कि हमेशा शरीर के प्रति उसका कौतूहल गन्दी और बुरी चीज है, हम कभी भी उसमें सेक्स के प्रति स्वस्थ भावना जाग्रत नहीं कर सकते।

घर का जीवन : एक स्वतन्त्र जीवन के लिए तैयारी



बच्चों के प्रति अपने विचारों में और उनके लिए योजनाएँ बनाते समय हमें दो बातों का ध्यान रखना चाहिए। एक तो यह कि हर बच्चे का अपना अलग व्यक्तित्व होता है और उसे एक व्यक्ति के रूप में ही देखना चाहिए; और दूसरी यह कि उसे हमेशा दूसरे व्यक्तियों के साथ रहना पड़ेगा जिनकी जरूरतों और इच्छाओं के अनुकूल उसे अपनी जरूरतों और इच्छाओं को ढालना पड़ेगा।

हर बच्चे का स्वभाव, बुद्धि और शारीरिक रचना दूसरों से बिलकुल भिन्न होती है। संसार के सारे प्राणियों से वह भिन्न है—अपने परिवार के लोगों से भी। इसलिए तमाम दूसरी जगहों की अपेक्षा उसका घर ही एक ऐसी जगह है जहाँ उसकी उन जरूरतों को सहानुभूतिपूर्वक समझा जा सके जो उसकी वैयक्तिक विशेषताओं के कारण पैदा होती हैं। घर एक ऐसी जगह है जहाँ मन्द बुद्धि वाले बच्चों को निश्चित रूप से समझा जा सकता है, अर्थात् ऐसे बच्चों को जो गलत मौक़े पर खिलखिलाकर हँस उठते हैं, या उन चंचल बच्चों को जो बेतुकी शरारतें करते रहते हैं। यदि परिवार के हर व्यक्ति को विशेष रूप से इस प्रकार समझकर उसे प्रतिष्ठित नहीं बनाया जाता, तो परिवार अपने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्तव्य को पूरा नहीं करता। परिवार का यह काम है कि वह बच्चे के उन गुणों की प्रशंसा करें जो उसे प्रमुख बनाते हैं—जैसे उसका सर्वप्रिय उदार स्वभाव या उसकी प्रखर बुद्धि और अनोखी सूझ-बूझ। घर के बाहर अनेक प्रकार के तनाव और दबाव सहन करने के कारण घर आकर बच्चा किसी जरा-सी बात पर ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ता है, पर घर में उसकी इस हरकत को क्षमा भी कर दिया जाता है। घर में बच्चे को लोग इतनी अच्छी तरह समझते हैं कि उसके एकाएक मौन हो जाने को या उत्तेजित होकर निरन्तर बकते रहने को लोग उसके साथ होने वाली घटनाओं की पृष्ठभूमि में ही देखते हैं।

लेकिन जहाँ हर बच्चे का यह अधिकार है कि लोग उसे सहानुभूति के साथ समझें वहाँ उसका यह कर्तव्य भी है कि वह घर के जीवन में योग दे। उसे पाने के साथ-साथ देना भी सीखना चाहिए। यदि बच्चे के माता-पिता उसे घर के

छोटे से संसार में सहयोग का अभ्यास कराएँ तो वह जैसे-जैसे बड़ा होता जायगा वह इस योग्य बनता जायगा कि उस विस्तृत जीवन में सफलतापूर्वक खप जाय जिसका वह एक भाग बनेगा।

एक व्यक्ति की हैसियत से बच्चे की जरूरतें

यह सोचकर कि मनुष्य में कितने विभिन्न प्रकार के स्वभाव पाए जाते हैं कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है। घर में चाहे जितने बच्चे हों लेकिन उनमें से कोई दो बच्चे एक जैसे नहीं होते। हर बच्चे के विचार, उसकी भावनाएँ, उसकी सामाजिक तथा अन्य प्रवृत्तियाँ दूसरों से उतनी ही भिन्न होती हैं जितनी उसकी शक्ल। दो भाइयों की 'नाकें बिलकुल बाप जैसी' हो सकती हैं, पर जरूरी नहीं है कि उनकी ठोडिया, उनके कान, उनके दिमाग़ या उनकी भावनाएँ भी एक समान हों, क्योंकि उनमें जो गुण आकर मिलते हैं वे अनेक पूर्वजों से प्राप्त होते हैं जिनमें से अलग-अलग प्रत्येक में वह केवल कुछ ही गुण प्राप्त कर सकता है।

इस बात से हमको यह समझने में सहायता मिलती है कि कोई दो बच्चे एक समान नहीं होते। खाने-पीने से लेकर अधिक गम्भीर जरूरतों तक हमें उनमें विभिन्न प्रवृत्तियों की आशा रखनी चाहिए।

शिशुकाल में ही बच्चों की वैयक्तिक विशेषताओं का अन्तर साफ दिखाई देने लगता है—उनकी विनम्रता या उद्दण्डता की मात्रा, उनकी क्रियाशीलता, उनकी चिड़चिड़ाहट, उनकी संवेदनशीलता। स्कूल जाने लायक़ उम्र तक पहुँचते-पहुँचते तो यह अन्तर बहुत बढ़ जाते हैं। कुछ वह प्रवृत्तियाँ, जो शिशुकाल में बहुत प्रमुख थीं, बहुत कम हो जाती हैं, और कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ उभर आती हैं। वह छोटी बच्ची जो बचपन से ही शील स्वभाव की है और मातृत्व की भावना रखती है, वह शायद अपने इस गुण को कभी न छोड़े, इसका प्रमाण इसमें मिलेगा कि वह अपने साथ खेलने वाली दूसरी लडकियों की हमेशा सहायता करने पर तत्पर रहती है। इसके विपरीत दूसरी बच्ची, जो शुरू से ही बहुत जिद्दी हो, वह दूसरे बच्चों के साथ अपने अनुभवों के द्वारा यह समझ जाय कि समझदारी से काम लेने में ही फ़ायदा है और अपने हठ को बहुत कम कर दे।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई बच्चा कुछ दिन तक बिलकुल ही 'रहस्यमय' बना रहता है, उसकी कोई बात समझ में नहीं आती, उसे अपने माता-पिता की रुचियों से बिलकुल भिन्न चीजों में रुचि होने लगती है, और उसका स्वभाव भी बिलकुल भिन्न हो जाता है। एक अत्यन्त कोलाहलमय, सक्रिय

परिवार मे शान्त स्वभाव का बच्चा बिलकुल बौखलाया हुआ-सा रहता है। ऐसा बच्चा जिसकी गम्भीर तथा शान्त मुद्रा के पीछे एक तीव्र हास्यमय प्रकृति छिपी होती है, या जो देखने मे तो बहुत भावनाहीन मालूम होता हो, पर हो बहुत संवेदनशील, उसे उसके परिवार वाले शायद समझने मे असमर्थ हों। बच्चे जो बिलकुल मन्द-बुद्धि होते हैं या जिनके दिमाग इतने तेज होते हैं कि उनका साथ देना असम्भव हो जाता है या वे बच्चे जो बहुत मन्दगामी होते है, इनमे से किसी भी प्रकार का बच्चा एक ऐसे परिवार मे पैदा हो सकता है जहाँ उसे ठीक रास्ते पर लाने के लिए कोई तैयार न हो।

जो बच्चे इतने विचित्र होते हैं कि उनके माता-पिता उनको पूरी तरह स्वीकार नहीं करते, उनके दादा-दादी या नाना-नानी उनका जीवन बना सकते हैं।

बचपन सम्मान करने योग्य है

बच्चों के साथ विशेष प्रकार का व्यवहार करने का एक और कारण भी है; वह यह कि बचपन स्वतः ऐसी चीज है कि उसका सम्मान किया जाय। कोई बच्चा बड़ों के बीच में रहकर अपने पाँव पर खड़ा होना खुद नहीं सीख सकता। हमे इस बात का बहुत ध्यान रखने की जरूरत है कि हम बच्चों के छोटा होने का और उनके सीमित अनुभव का जरूरत से ज्यादा फायदा न उठाएँ।

पुराने जमाने मे यह समझा जाता था कि बडो का सम्मान करना चाहिए, चाहे उनके विचार और भावनाएँ 'बडे लोगो की सी' हो या न हो। धीरे-धीरे अब हम यह समझ गए है कि बच्चों की राय और उनके विचारों को भी ध्यान से सुनना चाहिए और विभिन्न बातो मे उनकी राय भी लेनी चाहिए। इस प्रकार आपस मे विश्वास बढ़ता है। बच्चे से कारण पूछे बिना किसी गलती के लिए उसे डाँटना, अपने बड़े होने का तथा अपनी शक्ति का फायदा उठाकर बच्चों को मारना, बच्चों से पूछे बिना उनकी तरफ से निमन्त्रण स्वीकार कर लेना, या उनके खत खोल-कर पढ़ लेना आदि कई ऐसी बातें हैं जिनके द्वारा माता-पिता कभी-कभी अपने बच्चों के प्रति असम्मान प्रकट करते हैं।

बचपन मे जब बच्चे असहाय होते हैं हमें उनकी रक्षा करने की और उनकी देख-रेख करने की आदत पड जाती है, इसलिए समय बीतने के बाद भी अपना अधिकार कम करने के बजाय हम दिन-प्रतिदिन उन पर ज्यादा रोक करने लगते हैं। हमारे बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जायें और अपने पाँव पर खड़े होने लगें, हमको बड़े सोच-विचार के साथ उनके लिए ऐसी योजना बनाना चाहिए कि उनको

अपने कामों पर ज्यादा-से-ज्यादा अधिकार होता जाय। उनको ज्यादा फैसले करने का अवसर देना ही, चाहे वह कभी-कभी बहुत बुरे फैसले भी कर लें, वह एकमात्र तरीका है जिसके द्वारा माता-पिता अपने बच्चों को उस दिन के लिए तैयार करते हैं जब उन्हें अपना जीवन स्वयं चलाना पड़ेगा।

परिवार का जीवन क्या सहायता कर सकता है ?

यदि हम अपने-आप से पूछें, "परिवार के जीवन का क्या उद्देश्य है," तो हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि इसका अर्थ बच्चों से प्यार करने और उनकी शारीरिक रूप से देखभाल करने के अतिरिक्त भी बहुत-कुछ होता है। उन्हें स्वतन्त्र जीवन के लिए तैयार करते समय हमारी यह जिम्मेदारी भी है कि हम उनको उन पुराने रीति-रिवाजों से भी परिचित करा दें जो लाभदायक प्रमाणित हुए हैं।

हर जमाने में हर राष्ट्र की अपनी विशेष परम्पराएँ रही हैं। इन परम्पराओं में बच्चों की शिक्षा के ढंग से लेकर फसल बोने या मकान बनाने के ढंग से सम्बन्ध रखने वाली परम्पराएँ सभी शामिल हैं। इनमें से कुछ ऐसी होती हैं जो बहुत मूल्यवान होती हैं और कुछ का महत्त्व कम होता है, जैसे खाना खाने के ढंग आदि का। उदाहरण के तौर पर प्राचीन काल में यूनान में यह रिवाज था कि बच्चे रोटी बाएँ हाथ में पकड़ा करें और बाकी खाने की चीजें दाहिने हाथ में। इसी प्रकार अंग्रेज बच्चों को सैकड़ों वर्षों से छुरी-काँटे से खाने की शिक्षा दी गई है।

ये सब तो ऊपरी रिवाज हैं। इनका सम्बन्ध उन बातों से नहीं है जो हमारे जीवन से गहरा सम्बन्ध रखती हैं। परन्तु ऐसे भी रिवाज होते हैं जो पारिवारिक जीवन के स्थायित्व को प्रोत्साहित करते हैं और ये रिवाज सब बच्चों को सिखाए जाने चाहिएँ। परिवार में वर्षगाँठों और त्यौहारों का मनाना, तथा विभिन्न धर्मों, इलाकों और देशों की कुछ परम्पराएँ इसके उदाहरण हैं। हमारे परिवार में जिस विशेष ढंग से दीवाली मनाई जाती है उसकी याद हमारे दिमाग में हमेशा बनी रहती है—हर साल दीपों की जगमग करती कतारें, ढेरों मिठाइयाँ, यह सब-कुछ हम कैसे भूल सकते हैं। इस प्रकार के प्राचीन रीति-रिवाज परिवार को संयुक्त रखते हैं और परिवार के लोगों के आपस के सम्बन्ध को दृढ़ बनाते हैं। जब हम मेहनत करके इतना पैसा पैदा कर लेना चाहते हैं कि हमारा अपना एक घर हो, तो यह इस भावना का सूचक होता है कि हम परिवार के प्रेमपूर्ण वातावरण, परिवार की शक्ति और उसके चिरस्थायित्व के आदर्श में विश्वास रखते हैं। पारिवारिक सम्बन्धों के जिन ठोस और स्थायी गुणों को हम अपने बच्चों के दिमाग में बिठा देना चाहते

हैं उनको कार्य रूप में प्रदर्शित करने का यह एक ढंग है।

जैसे-जैसे जमाना बदलता जाता है और नये आविष्कारों तथा दिन-ब-दिन बढ़ते हुए ज्ञान से हमारे रहन-सहन का ढंग बदलता जाता है उसी के अनुसार हमें अपने परम्परागत रीति-रिवाजों को भी देखते रहना चाहिए कि वे हमारी नई परिस्थितियों के अनुकूल हों। हम माता-पिता इस बात को हमेशा ध्यान में नहीं रखते कि यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपने जीवन के ढंग का मूल्य अपने बच्चों को समझाएँ। इनको ध्यानपूर्वक जाँचकर ही हम यह पता लगा सकते हैं कि हमारे रहन-सहन के ढंग की कौनसी चीजें महत्त्व रखती हैं और कौनसी ऐसी हैं जिनको हम केवल इसलिए सुरक्षित रखते हैं कि हमको इनकी आदत पड़ चुकी होती है। आज-कल कोई गृहिणी काम करते समय वैसे कपड़े नहीं पहनती जैसे हमारे पूर्वज पहना करते थे, इसी प्रकार यदि हम पुराने विचारों से चिपके रहें जिनका महत्त्व पुराने जमाने के पहनावे से अधिक नहीं होता, तो हम अपने विकास के मार्ग में बाधा डालेंगे।

क्योंकि हममें एक स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि हम उसी प्रकार के [illegible] और परिवार से चिपके रहें जिसमें हम स्वयं पले-बढ़े हैं इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम ऐसे नये ढंग खुशी से अपना लें जो पुराने ढंगों से अच्छे हों।

जीवन की कुछ बातें ऐसी होती हैं जो हमेशा अच्छी समझी जाती हैं। दया, वफादारी और ईमानदारी ऐसे गुण हैं जो हमारे रहन-सहन के ढंग से पैदा होने वाले रीति-रिवाजों में हमेशा प्रदीप्त रहते हैं। कभी-कभी हमारे रिवाजों में अच्छे परिवर्तन भी होते रहते हैं। शुरू-शुरू में जब पिता सारे परिवार का वास्तविक संरक्षक होता था और सारे परिवार की जीविका भी वही कमाता था उस जमाने में यह जरूरी था कि वह परिवार के लोगों पर सख्ती से अपना रोब रखे। [illegible] रीति-रिवाजों को बदलने में कितना समय लगता है, यह इस बात से पता चलता है कि हम आज भी अपने पिता की आज्ञा को अपनी माँ की आज्ञा से ज्यादा महत्त्व देते हैं चाहे माँ भी परिवार की आय का एक भाग [illegible] बच्चे की शिक्षा आदि के बारे में उसे भी उतनी ही समझ-बूझ हो [illegible] पिता को है; और हमारे इस व्यवहार के फलस्वरूप [illegible] होती है। सामाजिक परिवर्तनों से हम [illegible] और हमारी [illegible] आता कि हम उनको किस रूप में स्वीकार करें। [illegible] बनाती है कि मर्द उनके लिए रेलगाड़ी या बस [illegible] में [illegible]

होते तो उनको यह सोचना चाहिए कि इसका अधिकार तो उनको उसी समय से नहीं रहा जब से उन्होंने नौकरियों के लिए मर्दों से होड़ करना शुरू किया।

इसलिए समझदार माता-पिता इसका ध्यान रखते हैं कि वे वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल चलें। जब हम इस बात पर विचार करें कि हमारे बच्चे किन बातों को परिवार की बहुमूल्य परम्परा के रूप में आगे बढ़ाएँ तो हमें बीते हुए जमाने की अपेक्षा भविष्य की ओर देखना ज्यादा जरूरी है।

परिवार बच्चों को जनवादी जीवन का अभ्यास कराते हैं। एक बात जिसके बारे में हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि वह हमारे बच्चों के लिए लाभदायक होगी, वह है घर में जनवादी रहन-सहन का ढंग। यदि संसार के भविष्य को उज्ज्वल बनाना है तो विभिन्न राष्ट्रों को एक-दूसरे को समझाने तथा एक दूसरे की सहायता करना सीखना चाहिए ताकि विश्वव्यापी भाईचारे की स्थापना हो सके।

घर में जनवादी जीवन का जो रूप होता है उसे बच्चा आसानी से समझ सकता है। घर में प्रतिदिन उसे जिम्मेदारियों में हिस्सा लेने की शिक्षा भी मिलती है और इसके अतिरिक्त उसे मनोरंजन, खाना, कपड़ा तथा दूसरों का प्यार भी मिलता है। यद्यपि शुरू-शुरू में परिवार की जिम्मेदारियों में उसका भाग बहुत कम होता है पर उसे इससे जिम्मेदारी का ज्ञान होने लगता है कि कहीं सैर को जाते समय उसकी राय ली जाती है, घर की पुताई करवाते समय उसकी राय ली जाती है कि कौनसा रंग लगवाया जाय। और जब दूसरे उसकी बात सुनते हैं तो वह भी दूसरों की बात सुनता है।

यह बात तो सभी मानते हैं कि बच्चों को जिम्मेदारियों में हाथ बँटाना चाहिए, परन्तु क्या इससे उनको हमेशा कुछ लाभ पहुँचता है? यह इस पर निर्भर है कि उसके माता-पिता का क्या रवैया है। एक छोटी लडकी एक दिन नाराज होकर कहने लगी, "मुझे इस तरह दूसरों की मदद करते रहना अच्छा नहीं लगता। मेरी तो यह इच्छा होती है कि मुझे कोई ऐसा काम दिया जाय जिसे मैं स्वयं अपने-आप कर सकूँ। अगर मुझे कोई ऐसा काम दिया जाय जिसे मैं अपनी मर्जी के अनुसार कर सकूँ तो मैं खुशी से काम करूँगी।"

बहुत कम बच्चे ऐसे होते हैं जो अपनी भावनाओं को इतनी अच्छी तरह व्यक्त कर सकते हों; लेकिन यदि हम कभी अपने-आप को अपने बच्चों की जगह रखकर देखें तो हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि दिन-भर एक जगह से दूसरी जगह छोटे-मोटे कामों के लिए भागते रहना और ऐसे ही दूसरे अरुचिकर



काम करते रहना कितना कष्टदायक होता है। यदि हमसे कभी हमारे विचार न पूछे जायँ या हमको अपने स्वतन्त्र विचार व्यक्त करने के लिए [illegible] किया जाए, तो हमें कैसा लगेगा? किसी बच्चे ने पूछा, "तुम कोई मेरे मन में तो बैठे नहीं हो, तुमको क्या मालूम कि मुझे क्या अच्छा लगता है?"

यदि किसी लड़की को अपने पैसों से जूते खरीदना पड़े तो वह [illegible] सोच-विचारकर जूते पसन्द करती है। यही बात हर अनुभव के बारे में [illegible] है। इस बात के लिए कि बच्चा अपनी जिम्मेदारी समझे [illegible]

जो कुछ करने को कहा जाय उसमें उसका भी कोई स्वार्थ हो और वह उस काम को करने का कारण समझे। जब माता-पिता इस बात को समझने का प्रयत्न करते हैं कि बच्चे किस काम को महत्त्व देते हैं, तो ज्यादा कठिनाई नहीं होती। हम बड़े लोग जब बच्चे से कोई काम करने को कहते हैं तो हमारी समझ में तो उसका कारण इतनी आसानी से आ जाता है कि हम यह भूल जाते हैं कि बच्चा इतना नासमझ होता है कि सम्भव है उसे उस काम में दिलचस्पी न हो।

उदाहरण के तौर पर, ६ या १० बरस के लड़के सफाई की तरफ़ बहुत ही कम ध्यान देते हैं। लेकिन कभी-कभी वे इतना बन-सँवर जाते हैं कि बस! लेकिन इसका कारण यह होता है कि वे समझते हैं कि उनकी माँ इससे खुश हो जायगी और सिनेमा देखने जाने की इजाज़त दे देगी (यदि उस समय उनके दिमाग पर यह बात छाई हुई है)। लेकिन यदि हमारे बच्चे साफ रहने की ओर जरूरत से ज़्यादा ध्यान देने लगें तो भी हमको चिन्ता होगी। यह बात लड़कों के स्वभाव के इतनी प्रतिकूल है कि हम शायद अपनी चिन्ता को दूर करने के लिए किसी डॉक्टर के पास सलाह के लिए जायँ। इसलिए यदि हम चाहते हैं कि गोपाल खाना खाने से पहले हाथ धो लिया करे तो हमारी समस्या यह नहीं होगी कि उसे हाथ धोने पर कैसे बाध्य करें बल्कि यह कि हम उसमें खाने से पहले हाथ धोने की रुचि कैसे पैदा करें। (कोई भी बड़ा आदमी अपने बड़प्पन और बल का फायदा उठाकर बच्चे को कुछ भी करने पर बाध्य कर सकता है—परन्तु इससे दोनों को क्या लाभ होगा!)

याद दिलाना क्यों जरूरी है

जिन बातों को हम महत्त्वपूर्ण समझते हैं उनके बारे में हमारे और हमारे बच्चों के विचारों में जो अन्तर होता है उसमें हमको यह समझना चाहिए कि बच्चों के लिए बात को भूल जाना कितना आसान है। दस वर्षीय लतिका को चुटकुलों की किताब पढ़ने की बार-बार याद दिलाने की जरूरत नहीं पड़ती, फिर उसे यह क्यों याद दिलाना पड़ता है कि वह अखबार को इधर-उधर फर्श पर न फैला छोड़ दे। जब हमको यह मालूम होने लगता है कि बच्चे अब इतने बड़े हो गए हैं कि "उनको याद रखना चाहिए," उसके बहुत दिन बाद तक शायद हमको बहुत सी जिम्मेदारियों के बारे में बार-बार उनको याद दिलाने की जरूरत पड़ती रहे। उनको अपनी विभिन्न प्रकार की रुचियों से फुरसत ही कहाँ मिलती है कि वे अपना ध्यान उन बातों में लगाएँ जो हम चाहते हैं कि वे याद रखें।

लेकिन हमें याद दिलाने तक ही सीमित रहना चाहिए। बच्चे के पीछे पड़ जाने की अपेक्षा उसको किसी बात को संक्षिप्त ढंग से याद दिलाने का परिणाम अच्छा होता है। (कौन कह सकता है कि पति-पत्नी में आए-दिन जो छोटे-मोटे झगड़े होते रहते हैं उसका कारण कहीं यह तो नहीं है कि पति जब छोटा-सा बालक था उस समय उसे अपनी माँ का किसी काम के बारे में बार-बार याद दिलाना, कभी-कभी झिड़ककर भी, बहुत बुरा लगता था? और बहुधा तो वह बातें जिनके बारे में उसे बार-बार टोका जाता था, बिलकुल ही महत्त्वहीन होती थीं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि पति अपनी पत्नी की आवाज को अपनी माँ की आवाज के समान पाता है और वह इस बात पर विरोध प्रकट करता है कि उसे 'छोटे बालक' के समान अपराधी समझा जाय?) जब कोई बच्चा यह कहता है, "जाओ, नहीं सुनते" तो सम्भव है कि हमारे निरन्तर टोकते रहने और आलोचना करते रहने को अनसुना कर देने की अनजाने ही उसकी आदत पड़ गई हो।

इस बात को निश्चित करने का कि बच्चे हमारे विरोधी न बनकर हमारे साथ रहें एक और उपाय यह है कि हमारे आदेश बहुत स्पष्ट और सीधे-सादे हों। अक्सर ऐसा होता है कि बच्चे सचमुच समझ नहीं पाते कि आखिर हम चाहते क्या हैं, क्योंकि हम अपने आदेशों में जरूरत से ज्यादा शब्दों का प्रयोग करते हैं।

इसके अलावा, इस उम्र के बच्चे इतने व्यस्त रहते हैं कि उनको इस बात का अधिकार है कि उनको पहले से हर बात की सूचना दी जाय—"तुम अब दस मिनट और खेल सकते हो, उसके बाद तुमको बरतन साफ करने हैं।"

यदि हम इस बात को ध्यान में रखें कि केवल हमारे ही बच्चे ऐसे नहीं होते जो बात को टाल जाते हों या भूल जाते हों, तो बड़ा लाभदायक होगा। कभी-कभी माताओं का उत्साह बनाए रखने के लिए केवल इतनी जरूरत होती है कि उनमें यह विश्वास पैदा हो जाय कि वे बच्चों में अच्छी आदतें पैदा करने में 'असफल' नहीं हैं; उनके बच्चे याद दिलाने पर खुशी से काम कर देते हैं, यह स्वयं बहुत अच्छी आदत है।

और फिर जब बच्चे किसी काम को करने की याद रखें तो उनकी [illegible] प्रशंसा क्यों न की जाय। रसोई के फर्श पर गन्दे पाँवों के बने कीचड़ के निशान तो आसानी से मिट सकते हैं पर उनके लिए बच्चों को जो डाँट पड़ती है उसकी याद आसानी से नहीं मिटती। परन्तु इस बात की [illegible] है कि माताओं को याद दिलाया जाय कि प्रशंसा से अच्छे व्यवहार के लिए बड़ी प्रेरणा मिलती है।



यदि हम समझदार हैं तो इस समस्या को हल करते समय कि बच्चों से कोई काम करवा लेने की अपेक्षा उनका सहयोग प्राप्त करना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, हम इस पर ज्यादा ध्यान देंगे कि उस काम से हम बच्चे को क्या लाभ पहुँचाना चाहते हैं, यह नहीं कि उससे हमको क्या लाभ होगा। जब कोई बच्चा बहुत आज्ञाकारी और विनम्र प्रकृति का होता है तो हम बहुत खुश होते हैं, परन्तु हमें यह देख लेना चाहिए कि कहीं वह केवल हमारी आज्ञा का पालन तो नहीं करता है। हम जो बात चाहते हैं वह है व्यवहार के अच्छे सिद्धान्तों के प्रति आज्ञापालन या उनको अपना लेना।

निजी जिम्मेदारी

६ से १२ वर्ष तक की अवस्था में बचा अपने शरीर की सफाई के सम्बन्ध

में ज्यादा-से-ज्यादा जिम्मेदारियाँ ले सकता है। १२ बरस का होने से पहले ही थोड़ा-बहुत याद दिलाने पर वह इस प्रकार के कामों की जिम्मेदारी ले सकता है जैसे नहाना, कपड़े बदलना, यह फैसला करना कि किस दिन कौनसे कपड़े पहने और अपने कपड़े धोबी को देना। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि बच्चे को सीखने का कितना अवसर मिला है और उसे कैसी शिक्षा दी गई है, इस उम्र के लड़के और लड़कियाँ इस प्रकार के काम भी कर सकती है जैसे मोजे और जाँघिए आदि धोना, छोटे-मोटे कपड़ों पर इस्त्री कर लेना, बटन टाँक लेना आदि। बाल कटवाना, मुर्गियों को दाना-पानी देना और उनके अण्डे जमा कर लाना, पहले से इसका प्रबन्ध करके रखना कि किसी विशेष अवसर पर पहनने के लिए एक जोड़ा साफ कपड़ा रखा रहे, आदि काम ऐसे हैं जिनकी जिम्मेदारी बच्चों को धीरे-धीरे खुद ले लेना चाहिए।

बड़े लड़कों और लड़कियों को छोटे भाई-बहनों की जिम्मेदारी देने से पहले बहुत ध्यानपूर्वक सोच-विचार लेना चाहिए। ११ वर्षीय गीता इतनी समझदार तो हो गई है कि वह ६-वर्षीय जोगेन्द्र को बस पर स्कूल ले जा सके और वापस ला सके परन्तु उसे यह समझाने की जरूरत पड़ेगी कि इससे उसको अधिकार नहीं मिल जाता कि वह उसे यह भी आदेश दे कि वह अपनी खीर में कितनी चीनी डाले।

घर के कामों की जिम्मेदारी

यदि लड़कों और लड़कियों को इस योग्य बनाना है कि वे आगे चलकर अपने परिवार के जीवन का भार सँभाल सकें तो उनके लिए यह आवश्यक है कि वे शुरू से ही परिवार की दिनचर्या की विभिन्न बातों से परिचित हो जाएँ। १२ बरस की उम्र तक उनको इस योग्य हो जाना चाहिए कि वे अपना खाना खुद लगा सकें, थोड़ा-बहुत खाना पकाने का भी ज्ञान उनको हो, तथा वे ऐसे छोटे-मोटे कामों की योजना बनाकर उनको पूरा कर सकें जैसे कमरे की सफाई आदि।

जो बच्चे देहातों में रहते हैं उनको शहर के बच्चों की अपेक्षा [illegible] होते हैं। उनको ऐसे काम का अनुभव प्राप्त होता है जिनके द्वारा [illegible] लोग अपनी जीविका कमाते है। वे पशुओं की देखभाल करते हैं तथा [illegible] में काम करते हैं, खेत पर काम करने वालों के लिए खाना आदि ले [illegible] अब तो कहीं-कहीं उनको मशीनें चलाने और उनकी मरम्मत करने [illegible] मिलता है। शहर के लड़कों और लड़कियों को काम करने [illegible]

मिलता है; कभी किसी लड़के ने घर की सफाई में हाथ बँटा लिया या किसी लड़की ने पड़ोसी के यहाँ की दावत में जाकर खाना परोसने में सहायता कर दी।

लेकिन चाहे शहर हो या देहात, माता-पिता को अपनी सन्तान को ऐसे अनुभवों का अवसर प्रदान करना चाहिए जिनसे वह आगे चलकर आत्म-विश्वासी और काम के आदमी बन सकें। कुछ बच्चों को सुबह से शाम तक इतना काम करना पड़ता है कि उनकी कमर टूट जाती है या कुछ बच्चों को अखबार बेचने के लिए इतना चक्कर लगाना पड़ता है कि उनको बड़े होने पर अपने बचपन की याद करके ही नफरत होने लगती है और दूसरी तरफ कुछ परिवारों को यह धुन होती है कि अपने बच्चों के जीवन को जितना आरामतलब बना सकें बना दें। इन दोनों के बीच का कोई रास्ता ढूँढ निकालना आसान काम नहीं है।

एक बात जिस पर हम माता-पिता अधिक ध्यान नहीं देते वह यह है कि काम के प्रति हमारा रवैया बच्चों पर क्या प्रभाव डालता है। जिस उत्साह से हम किसी काम में जुटते हैं और काम के दौरान में हमारा परिश्रम बच्चों पर प्रभाव डाले बगैर नहीं रह सकता। यदि माँ को हर बार पिताजी की खुशामद करनी पड़ती है कि परदे बाँध दें या वह हर समय दिन में तीन बार जूठे बरतन जमा हो जाने का दुखड़ा रोया करती हैं तो यदि सुभाष और कमला हमेशा इन दो कामों को टालने के फेर में रहते हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

यह सच है कि हममें से कुछ ऐसे होंगे जो घर के छोटे-मोटे बेतुके काम, जिनको करने पर हम बाध्य होते हैं, जोश के साथ करते हों। लेकिन यह बात कि घर के प्रतिदिन के कामों के प्रति विभिन्न लोगों का रवैया अलग-अलग होता है, इस बात का प्रमाण है कि यह काम हँसी-खुशी भी किये जा सकते हैं और आदमी इनसे उकता भी सकता है, यह इसपर निर्भर होता है कि उसे बचपन में कैसी शिक्षा दी गई है। ऐसा क्यों होता है कि किसी औरत को खाना पकाने का बड़ा चाव होता है और किसी को उससे घृणा होती है? क्या इसका कुछ-कुछ सम्बन्ध बचपन के अनुभव से है? क्या पहले प्रकार की स्त्री की माँ ने उसको खाना पकाने का अनुभव प्राप्त करने का अवसर दिया था और उसकी सफलता पर उसकी प्रशंसा की थी? वह औरत जो घर की ओर ध्यान न देकर बगीचे को सुन्दर बनाने में लगी रहती है, शायद किसी ऐसी माँ की बेटी होगी जिसे स्वयं घर के काम से चिढ़ रही होगी और उसने घर के काम को एक भयानक रूप में अपनी बेटी के सामने रखा होगा; या वह घर के काम में इतनी निपुण रही होगी कि उसने कभी अपनी बेटी को सिखाने

की परवाह ही नहीं की।

हमको इस बात से सबक लेना चाहिए कि बच्चा हो या बड़ा आदमी, वह उस काम को बड़े उत्साह से करता है जो उसे पसन्द होता है। लड़के अपनी सायकिल को रँगने में, या लड़कियाँ अपने स्कूल की किसी दावत के लिए पकवान तैयार करने में तथा इसी प्रकार के अन्य कामों में, जिनमें उनको दिलचस्पी होती है, कितनी मेहनत करते हैं। यदि हम उन परिस्थितियों को मनोरंजक बना दें जिनमें बच्चे काम करते हैं तो बच्चे कई और नये-नये कामों में दिलचस्पी लेने लगेंगे—जैसे बरतन धोते समय गाने गाना या हास्यजनक कविताएँ पढ़ना आदि।

इसका एक उपाय और है कि बच्चों के साथ मिलकर काम किया जाय। हर वह माँ, जिसके दस बरस का बच्चा है, इस बात को समझती है कि उसका बच्चा कितनी देर और काम कर सकता है, और वह यह भी जानती है कि यदि वह उसके साथ काम करे तो वह उससे और कितना काम करवा सकती है—सूखी पत्तियाँ जमा करना, लकड़ियों के ढेर लगाना, खिड़कियाँ साफ करना या वही रोज का बरतन धोने का काम। इस प्रकार की आपत्तियाँ उठाना कि 'जब तक करै पूता-पूता, तब तक करै अपने बूता' कोई अर्थ नहीं रखता। इसका एक सीधा जवाब है कि बच्चों के साथ काम करके हम उनमें काम करने की दीर्घकाल तक रहने वाली रुचि पैदा कर रहे हैं तथा उनके साथ रहने का मौका भी पा रहे हैं।

माता-पिता की हैसियत से हमको एक बहुत बड़ा लालच होता है कि हम बच्चों को घर के काम में सहायता देने का अनुभव प्राप्त करने नहीं देते क्योंकि उसी काम को स्वयं कर लेना ज्यादा आसान होता है। यदि हम बच्चों को उससे भी अधिक अवसर दें जितने हम देते हैं तो हमें आगे चलकर गर्व करने का अवसर मिल सकता है।

आम तौर पर यह समझा जाता है कि बच्चों को अपराधी बनने से रोकने का एक बहुत ही अच्छा उपाय यह है कि बच्चों में यह भावना पैदा की जाय कि वे समाज के उपयोगी सदस्य हैं। इस सम्बन्ध में अपने परिवार के बच्चों में यह भावना पैदा करना पहला कदम होना चाहिए।

पहले ज़माने में बहुत से बच्चों को अपने जीवन के शुरू में ही बहुत ज्यादा काम करना आरम्भ कर देना पड़ता था। हममें से कोई भी नहीं चाहेगा कि वह दिन फिर लौटकर आ जायँ जब बच्चों को अपनी शक्ति से बाहर कई-कई घंटे तक खेतों पर और कारखानों में काम करना पड़ता था। परन्तु आधुनिक जीवन में,

बच्चे सबसे पहले शरारत करना सीखते हैं क्योंकि उनको कोई और काम ही नहीं होता। इस बात की चिन्ता कोई नहीं करता कि उनको वह सन्तोष मिले जो अपने चारों तरफ के व्यस्त जीवन में भाग लेकर, वास्तव में महत्त्वपूर्ण भाग लेकर, प्राप्त होता है।

मानसिक शक्ति का पूरा उपयोग करने में बच्चों की सहायता करना

हममें से हर एक यह आशा करता है कि हमारे बच्चे प्रतिभाशाली होंगे। हमको वे हमेशा अभूतपूर्व मालूम होते हैं लेकिन हम उनके इतना निकट होते हैं कि हम उनकी योग्यता को पूरी तरह जॉच नहीं सकते।

स्कूल जाने के थोडे ही दिन बाद हमको यह ज्ञात होने लगता है कि दूसरे बच्चों की अपेक्षा उनके दिमाग कैसे हैं। यदि स्कूल के अनुमान से हमको यह पता चलेगा कि रजनी का दिमाग केवल साधारण योग्यता रखता है तो हम उसे बहुत आगे ढकेलने की जबरदस्ती कोशिश नहीं करेंगे; इसी प्रकार जब हमको यह बताया जायगा कि विजय की बुद्धि बहुत तेज है तो हम उसके लिए विशेष सुविधाओं का प्रबन्ध करेंगे।

स्कूल में बच्चे की प्रगति के बारे मे विचार करते समय केवल उसके मानसिक स्तर का ही ध्यान नहीं रखना पड़ता। मान लो कि सुशील अपनी कक्षा के दूसरे विद्यार्थियो के साथ नहीं चल पाता। क्या वह काम को समझ नहीं पाता है जिसके कारण वह पिछड़ा रहता है या उसकी भावनाओं में कोई चीज ऐसी है जो उसे परेशान करती रहती है?

हम चाहे जितनी सहायता करें या कोंचें, पर मन्द-बुद्धि बालक को हम असाधारण बुद्धि वाला नहीं बना सकते। परन्तु उसकी वास्तविक क्षमता को पहचान कर हम इतना जरूर कर सकते है कि हम उसके पीछे न पड जायॅ और इस प्रकार उसकी खुशी और आत्म-सम्मान की भावना को सुरक्षित रखें। परन्तु यदि संयोग-वश हमारी तरफ से नहीं बल्कि उसके स्कूल मे उससे उसकी क्षमता से ज्यादा आशा की जाती है तो हम उसकी सहायता कर सकते हैं। हम स्कूल वालो को समझा सकते हैं कि यद्यपि गोपाल तेज नहीं पर वह मेहनती है और अपने काम का इतना ध्यान रखता है कि उसे बहुत ज्यादा टोकना और परेशान करना ठीक नहीं।

बच्चे की शिक्षा की योजना बनाने के लिए तथा बाद मे उसे किसी पेशे के लिए तैयार कराने के लिए यह जरूरी है कि हम उसकी मानसिक योग्यता के बारे मे

जितना भी मालूम कर सकते हो कर लें।

बुद्धि क्या है

बुद्धि की परिभाषा देना बहुत कठिन है। कोई मनोवैज्ञानिक दूसरे मनोवैज्ञानिक की दी हुई परिभाषा से सन्तुष्ट नहीं होता, अपनी दी हुई परिभाषा से तो उसको सन्तोष होता ही नहीं। परन्तु बुद्धि जाँचने की परीक्षाओं के द्वारा जो बुद्धि नापी जाती है उसके अनुसार बुद्धि की परिभाषा यह दी जा सकती है कि किसी व्यक्ति की समस्याओं को समझने की योग्यता, उनको हल करने के उपाय ढूँढने की क्षमता और समस्याओं को हल करने के लिए अपने बताये हुए उपायों की आलोचना करने की क्षमता को बुद्धि कहते हैं। दूसरे शब्दों में कोई मनुष्य जिस हद तक अपने-आपको नई परिस्थितियों के अनुकूल बना लेता है और जिस हद तक वह अपने जीवन का एक लक्ष्य नियोजित कर लेता है जिसे प्राप्त करने के लिए वह काम करता है, वह उतना ही बुद्धिमान है। तरुण यदि कहीं जा रहा है और रास्ते में उस जगह का पता कहीं खो जाता है, इस परिस्थिति में जब वह पता पूछने के लिए घर टेलीफोन करता है तब हम कहते हैं कि उसने अपनी बुद्धि का प्रयोग किया। इसी प्रकार यदि यशोधरा की माँ ने उसे बाजार से कोई विशेष तरकारी लाने के लिए भेजा और बाजार में वह तरकारी न मिलने पर यदि वह कोई दूसरी तरकारी खरीद लाती है तो हम कहते हैं कि उसने अपनी बुद्धि का प्रयोग किया।

बुद्धि की यह परिभाषा बहुत संकीर्ण है; इस परिभाषा में कुछ विशेष प्रकार के स्वाभाविक गुणों का समावेश नहीं है जैसे संगीत की क्षमता, या मशीनों के प्रति एक विशेष प्रकार की स्वाभाविक रुचि, जिसका प्रमाण विभिन्न कामों को निपुणता से करने में मिलता है। इस परिभाषा में वे सब चीजें नहीं आतीं जिनसे मिलकर बच्चे का व्यक्तित्व बनता है—उसमें कितना उत्साह और कितनी अभिलाषा है, उसकी प्रवृत्तियाँ, उसकी आकांक्षाएँ और (कुछ मात्रा में) उसकी कल्पना-शक्ति।

योग्यता में भी असमानता होती है और कई योग्यताओं का समूह बिना किसी योजना के एक स्थान पर जमा कर दिया गया है। किसी बच्चे की यन्त्र-सम्बन्धी योग्यता उसकी भाषा-सम्बन्धी कुशलता से अधिक हो सकती है और दूसरा बच्चा हाथों को प्रयोग करने में तो इतना निपुण न हो पर शब्दों के प्रयोग में निपुण हो सकता है। जतीन्द्र में कला-सम्बन्धी योग्यता इतनी अधिक है कि बुद्धि-परीक्षा से पता लगाने पर जब उसकी बुद्धि का स्तर कोई खास ऊँचा नहीं निकलता तब भी कोई इस अभाव पर विशेष ध्यान नहीं देता। इसके विपरीत

रमेश को ले लीजिए; बुद्धि-परीक्षा से तो उसकी बुद्धि का स्तर बहुत ऊँचा मालूम होता है, पर उसमें साधारण समझ-बूझ आश्चर्यजनक हद तक कम है।

फिर भी, स्कूल में बच्चे की प्रगति मालूम करने के लिए वर्तमान बुद्धि-परीक्षाओं का बहुत काफी महत्त्व है। इनसे हमको यह पता चल जाता है कि बच्चे को किस प्रकार के काम मे और किन रुचियों में सफलतापूर्वक लगाया जा सकता है।

माता-पिता इसमें क्या सहायता दे सकते हैं

बच्चे में जितनी बुद्धि होती है उसके अनुसार सफलता तो हम उसे नहीं प्राप्त करवा सकते, परन्तु हम ऐसी परिस्थितियाँ जरूर प्रदान कर सकते हैं जिनसे उसे प्रोत्साहन मिले, हम उनकी महत्त्वाकांक्षाओं को ऊँचा बनाए रखने का प्रयत्न कर सकते हैं और हम उनके प्रयासों की सराहना कर सकते है। निम्नलिखित कुछ ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा हम उनकी सहायता कर सकते है—

१. हम अपने बच्चों को ऐसे अनेक अवसर प्रदान कर सकते हैं जिनमे उनको ऐसी समस्याओं को हल करने का अभ्यास प्राप्त हो जिनमें सूझ-बूझ और साहस की जरूरत होती है। इस प्रकार बच्चे सोचना और तर्क करना सीखते हैं और बच्चा जैसे-जैसे स्कूल में एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाता है उसे अपने स्कूल के काम के सम्बन्ध में इन दो क्षमताओं की दिन-प्रतिदिन अधिक जरूरत पड़ती है।

६ बरस का बच्चा यह 'तर्क' नहीं करता कि यदि वह कीचड़ मे खेलेगा तो उसके पाँव गन्दे हो जायँगे। परन्तु यदि उसे अपने जूते स्वयं साफ करने पड़े तो कीचड़ और जूतों के गन्दे होने का सम्बन्ध उसकी समझ में आ जायगा।

बच्चों को चीजो के कारण पर बहस करने से बहुत प्रेम होता है। बच्चो के दिमाग में जो असंख्य प्रश्न उठते रहते हैं उनको हल करने में सारा परिवार हिस्सा लेकर आनन्द प्राप्त कर सकता है; और जो सूझ-बूझ वाले माता-पिता हैं वह ऐसे उपाय खोज निकालेंगे कि बच्चे स्वयं इन प्रश्नो का उत्तर मालूम करें।

बच्चा चीजो और पदार्थों के सम्पर्क में जितना ज्यादा आयगा, उतनी ही आसानी से वह घटनाओं के क्रम को समझ सकेगा और सम्बन्धों को, कारणों को, तथा परिणामों को तर्कपूर्वक समझ सकेगा। क्या हम उससे ऐसे प्रश्नों का उत्तर मालूम करने को कहते हैं कि लकड़ी में नाखून गड़ाने से कुछ लकड़ियाँ फट क्यों जाती हैं या कब पेंच लगाना चाहिए और कब कील? यदि हम किसी लड़की को स्वयं खाना परोसने की आदत डाल दें और किसी अवसर पर उसे यह निराशा हो कि सारा खाना तो पक गया है पर आलू कच्चे रह गए हैं, तो वह स्वयं तर्क



करके इस नतीजे पर पहुँच जायगी कि आलुओं को पहले पकाना चाहिए। यदि हम हमेशा अनुभव द्वारा सीखने पर जोर दें तो इससे दिमाग को इस्तेमाल करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। किताब में पढ़कर यह मालूम करने से कि आलू कितनी देर में पक जाता है दिमाग पर उतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ता जितना अनुभव से।

२. ऐसी परिस्थितियाँ प्रदान करके, जिनमें बच्चों को न केवल नई-नई चीजों को खोज करने की स्वतन्त्रता हो बल्कि नये-नये प्रयोग करने और उनसे सीखने के लिए सामग्री भी हो, हम बच्चों के अनुभव को बढ़ा सकते हैं और उनको प्रोत्साहन दे सकते हैं। कुछ परिवारों को ऐसा करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उनके घर में काफी जगह नहीं होती—न कोई कोठरी, न कोई तहखाना, न कोई ऐसी जगह जहाँ बच्चे अपनी कठपुतलियों के

साथ खेल सकें या अपनी पालतू मछलियाँ रख सकें। बच्चों की कौतूहलमय उत्सुकता उनको जिन कामों को करने के लिए प्रेरित करती है, हमें उन कामों के लिए आवश्यक सामग्री उनको प्रदान करनी चाहिए ताकि उन कामों का करना सम्भव हो सके, चाहे वह औज़ार हों या मिट्टी, या रंग, या सुई-धागा, या छपाई का सामान। यदि हम बच्चों को यह साधन प्रदान नहीं करते तो यदि बच्चे अपने कौतूहल को शान्त करने के लिए व्यापारिक ढंग से चलाए जाने वाले आमोद-प्रमोद के साधनों का सहारा लेने लगें तो हमको आश्चर्य न होना चाहिए। जो लोग बच्चों को इस बात पर डाँटते हैं कि उनके बिस्तर के नीचे हास्यपूर्ण कहानियों की पुस्तकों के ढेर क्यों लगे रहते हैं, वे क्या कभी इसका प्रयत्न भी करते हैं कि बच्चों के लिए कोई ऐसी जगह हो जहाँ वे अधिक रचनात्मक कामों में अपना समय व्यतीत कर सकें? हम सब लोग रसोईघर का होना जरूरी समझते हैं जहाँ बच्चों के शरीर के लिए भोजन तैयार होता है। पर क्या वह जगह जहाँ बच्चा तरह-तरह के प्रयोग करके अपने मानसिक विकास के लिए भोजन प्राप्त कर सके, रसोई से कम महत्त्व रखती है?

परिवार को बटोरकर ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर किताबें सुनाना दिमाग की सक्रियता को बढ़ाने का बहुत ही अच्छा साधन है और यह एक ऐसा आनन्द है जो हर परिवार में होना चाहिए। समाज के जिन समूहों को सार्वजनिक लाइब्रेरियों की सुविधा प्राप्त है, वे उनका और भी उचित प्रयोग कर सकते हैं। जिन समूहों को यह सुविधा प्राप्त नहीं है वे कस्बे-कस्बे देहात-देहात में लाइब्रेरियाँ स्थापित करवाने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं।

हममें से शायद ही कोई ऐसा हो जो वह सब किताबें और पत्रिकाएँ खरीद सके जिनको पढ़ने की हमको इच्छा होती है। यदि हम अपने खर्च में किताबों के लिए कुछ धन अलग करके रख दिया करें तो हमको यह ध्यान रहेगा कि आमोद-प्रमोद पर ज्यादा पैसा खर्च करने या रसोईघर के लिए कोई अनावश्यक-सी चीज़ ले आने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा होगा कि हम वह पैसा किताबों के लिए बचा लें।

कोई ऐसी किताब खरीदना जिससे बच्चों को दुनिया की विभिन्न चीज़ों के बारे में जानकारी प्राप्त हो सके, पैसे का सबसे अच्छा उपयोग है। पढ़ना सीखने से पहले ही बच्चों में चीज़ों के बारे में जानने की उत्सुकता इतनी होती है कि वे चित्रों से ही बहुत सी बातें मालूम कर लेते हैं।

जबकि कम दामों की असंख्य उपयोगी किताबें मिलती तो कोई कारण नहीं है कि हम बच्चों के पढ़ने के लिए अच्छी किताबें न दे सकें।

जिस उम्र से बच्चे पुरानी चिर-परिचित बच्चों की कविताएँ सुनने लगते हैं, जो उनके माता-पिता के जमाने में भी प्रचलित रही होंगी, उसी समय से यदि उनको किताबें पढ़कर सुनाई जायँ तो वे बहुत कुछ सीखने के लिए तैयार हो सकते हैं। जिन परिवारों के लोगों ने ६-६ बरस के बच्चों के साथ बैठकर "बन्दर की कहानी" या "पञ्चतंत्र की कहानियाँ" पढ़ने का आनन्द उठाया है वे बच्चों के बड़े हो जाने पर उनके साथ "गीताञ्जलि" या "सूरसागर" पढ़कर घण्टों आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। इन किताबों को सुनते समय बच्चे अनजाने ही इतिहास, जीव-विज्ञान तथा अध्यात्म-शास्त्र का न जाने कितना ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

परिवार के लोगों को जमा करके जोर-जोर से पुस्तक पढ़ने का लाभ यह होता है कि बच्चों का ज्ञान बढ़ता है और बातचीत करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। पढ़ते समय हम पुस्तक के विषय पर बहस भी करते जायँ तो बच्चों को इस बात की आदत पड़ती है कि किसी बात को स्वीकार या अस्वीकार करने से पहले वे उसके विभिन्न पहलुओं पर विचार कर लें। छोटे बच्चे जो कुछ पुस्तक में छपा देखते हैं उस पर आसानी से विश्वास कर लेते हैं, इसलिए यदि माता-पिता अखबारों में छपने वाली सामयिक घटनाओं के बारे में, या रेडियो पर होने वाले वादविवादों के विषय के बारे में बातें करें तो बड़ा लाभ होगा।

२. केवल माता-पिता ही अपने बच्चों के साथ अच्छी पुस्तकों का लाभ तथा आनन्द नहीं उठा सकते बल्कि बच्चे भी उनके साथ ऐसे रचनात्मक कामों में भाग ले सकते हैं जिनके द्वारा मनुष्य सन्तोषप्रदायक कलाएँ सीखता है। वे परिवार जहाँ लोग काम स्वयं करते हैं उनमें इस बात को प्रोत्साहन मिलता है कि अधिक-से-अधिक काम घर में ही हों। इसके अतिरिक्त ऐसे परिवारों में बच्चों को अपने आपको व्यक्त करने के लिए अत्यन्त मनोरंजक साधनों को प्रयोग करने का अवसर मिलता है जैसे बुनाई, बरतन बनाना, लकड़ी पर बेल-बूटे खोदना, चित्रकला, फोटोग्राफी, तथा शौक की दूसरी चीजें।

शहर में या देहात में बच्चों को सैर के लिए बाहर ले जाना, जैसे दूध की डेरी दिखाने, या रेल का गोदाम दिखाने जहाँ दुनिया भर की चीजें आती-जाती रहती हैं, या जहाज दिखाने, या कोई कारखाना दिखाने—ये सब ऐसे अनुभव हैं जिनमें समय के अतिरिक्त कुछ अधिक खर्च नहीं होता, परन्तु इनसे बच्चों की

कल्पना-शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

अपने माता-पिता के साथ रचनात्मक कामो मे भाग लेकर तथा सैर-सपाटे के द्वारा बच्चों को पुस्तकों से और ज्यादा ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है, इसलिए ऐसी दशा मे जबकि बच्चा अधिक पढ़ने के फलस्वरूप अपने स्कूल के काम में उन्नति कर सकता हो, इस उपाय का प्रयोग विशेष रूप से किया जाना चाहिए।

४. बच्चों में अपनी योग्यता और क्षमता में विश्वास होने की भावना को प्रोत्साहित करने और उनमें घमण्ड करने, दूसरो को दबाने, तथा प्रतियोगिता की भावना पैदा करने मे अन्तर है जिसे हर माता-पिता को जानना चाहिए। जब बच्चे दूसरे बच्चों के बड़े समूह का भाग बन जाते हैं तब बहुधा उनको यह लालच होता है कि वह दूसरों से बढ़ जायँ या उनको यह भय होता है कि कहीं दूसरे उनसे बाजी न मार ले जायँ। यद्यपि स्कूलों मे पूरे प्रयत्न के साथ इसकी कोशिश की जाती है कि हर बच्चे के काम को उसके पिछले काम की तुलना में जाँचा जाय, फिर भी अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब उनकी तुलना दूसरे बच्चो से की जाती है।

जो बच्चा सबसे ज्यादा रद्दी कागज जमा करके लाकर देता है उसे इनाम दिया जाता है; जो बच्चा अपना पाठ सप्ताह के शुरू मे ही याद कर लेता है उसे सप्ताह के अन्त में दो दिन की छुट्टी दे दी जाती है; जतीन्द्र तैरने मे निपुण है, तरुण क्रिकेट खेलने में।

बच्चों में प्रतियोगिता की भावना पैदा करने मे माता-पिता का कितना बडा हाथ होता है, यह कोई नहीं बता सकता; लेकिन यह बात आसानी से कही जा सकती है कि माता-पिता का यह प्रभाव दो रूप धारण कर सकता है। वे माता-पिता, जिनकी महत्वाकांक्षाऍ अपने बारे में भी और अपने बच्चे के बारे मे भी बहुत ऊँची होती हैं, प्रायः बहुत सी चीजों के सम्बन्ध में हमारी प्रतियोगिता की भावना को बहुत तीव्र बना सकते हैं। "हमको अपने घर की पोताई करवानी चाहिए; पॉडेजी ने अपने घर की पोताई करवा ली है। उनके घर के सामने तो हमारा घर अब बहुत गन्दा दिखाई देता है।" "जगमोहन को ऊँची कक्षा मे चढ़ा दिया गया और वह तुम्हारी अपेक्षा आधा तेज भी नहीं है।" इस प्रकार की बातों के पीछे जो भावना छिपी होती है वह बच्चो के दिमाग मे बैठ जाती है और उनके सोचने के ढंग का एक अभिन्न अंग बन जाती है।

यदि किसी बच्चे का पिता अपने-आपको सुधारने पर इतना तुला बैठा है कि वह दिन-भर काम करके आने के बाद रात को स्कूल में पढ़ने जाता है, या उसकी माँ अपने हाथ से कपड़े धोकर पैसे बचाती है और उन पैसों से ग्रामोफोन के रेकार्ड लाती है, तो इसका बच्चे पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ सकता है : एक तो यह कि वह समझने लगे कि उसके माता-पिता यह सब केवल "दूसरों की बराबरी" करने के विचार से करते हैं या यह कि उसे उसका ज्ञान हो जाय कि इस प्रकार के प्रयत्नों से उसके माता-पिता को कितना हार्दिक सन्तोष प्राप्त होता है।

हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि बच्चे को किसी काम को सफलतापूर्वक पूरा करके आनन्द प्राप्त करने और किसी काम में अपना योग देकर सन्तुष्टि प्राप्त करने में दिलचस्पी पैदा हो न कि दूसरों को प्रतियोगिता में नीचा दिखाने में।

५. अपनी मानसिक शक्तियों का उचिततम प्रयोग करने में हम अपने बच्चों की सबसे बड़ी सहायता तो इस प्रकार कर सकते हैं कि हम उनको उनके असली रूप में स्वीकार करें और उनसे उतने ही की आशा रखें जितनी उनमें क्षमता है। महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं है कि बच्चे का दिमाग कितना है बल्कि यह कि सामाजिक व्यवस्था में सफलतापूर्वक खप जाने के लिए उसका दिमाग़ और उसकी भावनाएँ एक-दूसरे के सहयोग से उसकी कितनी सहायता करती हैं।

एक दूसरे का साथ देते हैं

यदि हमसे पूछा जाय तो शायद हम असानी से कह देंगे कि हम बच्चों
कूल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजते हैं। लेकिन क्या हम यह समझते हैं
शिक्षा आखिर है क्या? क्या शिक्षा से हमारा अभिप्राय केवल पढ़ाई-लिखाई,
ल, गणित और इतिहास आदि से है—उन चीजों से जो स्कूल की इमारत
सीमित हैं या शिक्षा को हम एक ऐसा क्रम समझते हैं जो बच्चे के जन्मकाल
चल रहा है और जीवन-भर चलता रहेगा।

यदि हम शिक्षा को इस वृहद्‌तर रूप में देखें तो इसमें भाग लेना अत्यन्त
नोरंजक होगा। बच्चों को घर पर स्वतः बिना किसी के प्रयत्न किये ही जो शिक्षा
तिदिन मिलती रहती है उसमें हमने चाहे कितनी सक्रियता क्यों न दिखाई हो,
र हमेशा हम स्कूल की सहायता का आधार लेते हैं, जहाँ उसे अधिक नियमित
रूप से शिक्षा दी जाती है। कुछ माता-पिता बच्चे को स्कूल में भरती कराकर सम-
झने लगते हैं कि अब उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं रह गया, परन्तु जो समझदार
माता-पिता होते हैं वे यह भी मालूम करना चाहते हैं कि स्कूल में क्या हो रहा है,
शिक्षकों का उद्देश्य क्या है, और वे स्वयं बच्चों की क्या सहायता कर सकते हैं कि
वे अपने स्कूल के अनुभव से अधिकतम लाभ उठा सकें।

स्कूल में एक दिन में हर विषय को पढ़ाने के लिए जो एक-आध घण्टा
दिया जाता है उससे बच्चे को यह सीखने में कोई सहायता नहीं मिलती कि वह
दूसरों से मिल-जुलकर किस प्रकार रहे और न ही इससे निश्चित हो जाता है उनकी
शिक्षा का अनुभव उसके लिए हर्षमय होगा। आजकल स्कूल ही बच्चे का जीवन
है और घर पर बच्चे को जो शिक्षा मिलती है वह उसी जीवन का एक अभिन्न अंग
है। जिस प्रकार स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विभिन्न विषयों के बीच की दीवारें तोड़ी
जा रही हैं उसी प्रकार घर और स्कूल के बीच की दीवार भी तोड़ दी जानी चाहिए।

क्या आप अपने बच्चे के स्कूल से परिचित हैं?

बच्चे को सुबह रात-भर के विश्राम के बाद खिला-पिलाकर और नाश्ता
सुथरे कपड़े पहनाकर जैसे-तैसे स्कूल भेजकर माता-पिता निश्चिन्त नहीं हो

सकते। शारीरिक रूप से न सही पर मन से उनको प्रतिदिन अपने बच्चों के साथ स्कूल जाना चाहिए, और कभी-कभी शारीरिक रूप से भी ताकि स्कूल में जो कुछ बच्चे की शिक्षा के लिए किया जा रहा है उसको घर पर वे और सुदृढ़ बना दें। स्कूल जाने वाले छोटी उम्र के बच्चों को उनके माता-पिता के स्कूल आने से बड़ी खुशी होती है, फिर भी कुछ माता-पिता उस समय तक स्कूल में कदम नहीं रखते जब तक उनके बच्चे के किसी मुसीबत में फँस जाने के कारण उनको बुलवा न भेजा जाय।

स्कूल में जाने से माता-पिता को क्या-क्या लाभ हैं?

१. बच्चे के अध्यापक या अध्यापिका से थोड़ा-सा परिचय होने से भी यह मालूम हो सकता है कि बच्चे का व्यवहार स्कूल में कैसा है और अध्यापक को भी बच्चे के परिवार और उसके घर के जीवन की जानकारी से लाभ पहुँच सकता है। बच्चे के माता या पिता से थोड़ी ही देर के लिए मिलकर उसे यह जानकारी प्राप्त हो सकती है।

२. बच्चे को उसकी कक्षा में देखने से हमको दूसरे बच्चों के साथ उसको देखने का अवसर मिलता है; हमको इसका कुछ ज्ञान होता है कि दूसरे उसको किस प्रकार स्वीकार करते हैं; घर पर हमने उसमें जो प्रवृत्तियाँ देखी हैं क्या वही प्रवृत्तियाँ उसकी उम्र के दूसरे बच्चों में भी पाई जाती हैं; और यदि वह स्कूल को पसन्द करता है तो क्यों और नहीं करता तो क्यों।

३. माता-पिता जब समय निकाल कर अपने बच्चे के स्कूल जाकर या माता-पिताओं तथा अध्यापकों की संयुक्त सभाओं में जाकर बच्चे की शिक्षा में अपनी दिलचस्पी दिखाते हैं तो इससे बच्चे के हृदय में भी स्कूल का महत्त्व बढ़ जाता है। यदि हम महीने में केवल एक रात भी अपने बच्चे के स्कूल की समस्याओं पर विचार करने से आनाकानी करें तो हम यह आशा कैसे कर सकते हैं कि बच्चे के हृदय में यह उज्ज्वल विश्वास बना रहेगा कि स्कूल अत्यन्त मनोरंजक स्थान है—वह भावना जो स्कूल में प्रवेश करते समय उसके हृदय में होती है। हम अपने रवैये से बच्चे के रवैये पर बहुत काफ़ी प्रभाव डाल सकते हैं। "अमृत को अपने स्कूल से नफ़रत है। लेकिन मैं उसे दोष नहीं देती, क्योंकि जब मैं पढ़ती थी तब मैं भी यही सोचती थी," अमृत की माँ उसके सामने कहती है। उसने कभी यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि क्या उसके स्कूल में सचमुच कोई ऐसी बात है जिसके कारण वह स्कूल से नफ़रत करता है या वह केवल अपनी माँ के विचार

दोहरा रहा है, क्योंकि वह समझता है कि यही करना उचित है। सम्भव है कि अमृत का स्कूल उतना ही अच्छा हो जितना उसकी माँ का बुरा था परन्तु उसे घर पर वह समर्थन नहीं मिल रहा जिसकी उसको ज़रूरत है।

४. स्कूल के सम्पर्क में रहकर माता-पिता यह बात बड़ी आसानी से समझ सकते हैं कि स्कूल में जो कुछ होता है उसमे वह बहुत योग्यतापूर्ण सहयोग दे सकते हैं। सामाजिक शिक्षण के विषय पर कोई बहस सुनकर शायद नरेन्द्र की माँ को यह ध्यान आए कि वह अपने बेटे के साथ स्कूल के लिए कुछ मान-चित्र और तस्वीरें भेज सकती है। या किसी स्थान के बारे मे बहस सुनकर परिवार के लोगों के सामने यह प्रश्न उठे, "क्यों न हम लोग इतवार के दिन वहाँ की सैर कर आयें; इस प्रकार हमको उस जगह के विषय में जानकारी भी ज्यादा हो जायगी।" माता-पिता को बच्चे की रुचियाँ और उसकी क्षमताओ को उन्नत करने के बारे मे सतर्क रहना चाहिए क्योंकि इनमे से किसी भी रुचि या क्षमता को आगे चलकर वह अपनी जीविका कमाने का साधन बना सकता है और उसी के अनुकूल शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

माता-पिता से स्कूल के काम मे भी सहायता ली जा सकती है। बच्चों के लिए दोपहर के समय भोजन का प्रबन्ध करने मे, स्कूल के योजनाएँ बनाने में, अपनी रुचियों का प्रदर्शन करने, वाचनालयो की व्यवस्था करने तथा माता-पिताओं की सभाओं का संगठन करने में उनकी सहायता ली जा सकती है।

५. बच्चों के माता-पिता तथा उनके अध्यापकों के बीच बहुधा जो एक दीवार-सी खड़ी रहती है उसको तोड़ने के लिए माता-पिता का कभी-कभी स्कूल जाना बहुत जरूरी है।

बहुत से माता-पिता ऐसे होते हैं जिनको अपने बच्चों के अध्यापकों से डर लगता है। उनको यह ख्याल होता है कि चूँकि वे इतने पढ़े-लिखे नहीं हैं और अध्यापक की तरह विद्वत्तापूर्ण बातें नहीं कर सकते इसलिए शायद अध्यापक उनको तिरस्कार की दृष्टि से देखें। परन्तु वे यह क्यो नहीं सोचते कि वे बढ़ई या लोहार की तरह की बातें भी तो नहीं कर पाते। हम सबका अपना-अपना काम का क्षेत्र अलग होता है, इसलिए एक दूसरे के प्रति तिरस्कार की भावना रखना अनुचित है। कुछ अध्यापक बच्चों के माता-पिता से इसलिए भी ज्यादा घबराते हैं क्योंकि उनकी हर समय आलोचना की जाती है। वे किसी बच्चे के घर जाने के विचार मात्र से काँप उठते हैं, विशेप रूप से अपनी नौकरी के आरम्भ

मे। और बहुधा, अध्यापक बिना समझे-बूझे माता-पिता पर ऐसी बातों की जिम्मेदारी थोप देते हैं जो वे समझते भी नहीं। और ये बातें ऐसी होती हैं कि यदि माता-पिता और अध्यापक एक-दूसरे का सम्मान करें और एक-दूसरे पर विश्वास रखें तो इन समस्याओं को आसानी से हल किया जा सकता है।

बजाय एक-दूसरे पर संदेह करने के और एक-दूसरे से डरने के माता-पिता और अध्यापकों को एक-दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए। यदि उन दोनों को बच्चों में दिलचस्पी है तो वे आसानी से इस प्रकार का सहयोग स्थापित कर सकते हैं। आजकल इस बात की कोशिश की जा रही है कि बच्चों की प्रगति की रिपोर्ट उनके माता-पिता के पास भेज देने के बजाय उनसे स्वयं मिलकर बच्चे की प्रगति के बारे में बातचीत की जाया करे। ऐसा करने से वे दोनों शक्तियाँ—बच्चे का स्कूल और उसके माता-पिता—जिनका बच्चे के जीवन पर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है, एक-दूसरे के निकट आ सकती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में स्कूलों में इतने परिवर्तन हो गए हैं कि अपेक्षतः नवयुवक माता-पिताओं को भी अपने अनुभव के आधार पर अपने बच्चों के स्कूलों की आलोचना करते समय सावधान रहना चाहिए। यदि स्कूल की किसी विशेष योजना का अभिप्राय हमारी समझ में न भी आए तो भी हमको उस समय तक अपनी राय न देनी चाहिए जब तक हम उसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त न कर लें। जब माता-पिता बच्चे के स्कूल में की जाने वाली चीजों का मजाक उड़ाकर बच्चे के मन में यह विरोध-सा खड़ा कर देते हैं कि वह माता-पिता की बात को माने या स्कूल में बताई गई बात को, तो इससे उसका उत्साह-बल कम होता है। स्कूल को हमारे समर्थन की आवश्यकता होती है।

यदि पूरी तरह पता लगाने के बाद हम इस नतीजे पर पहुँचें कि सचमुच स्कूल में कोई गलत बात की जा रही है तो हम अपनी राय स्कूल के अधिकारियों के पास तक उचित ढंग से पहुंचा सकते हैं। अपने मन से कुछ कर डालने की अपेक्षा यह तरीका अपनाने से आसानी से हम उस गलती को बदलवा सकते हैं।

यदि हम पूरी बात का पता लगाए बिना ही अध्यापक के खिलाफ या स्कूल के किसी नियम के विरुद्ध अपने बच्चे की 'तरफदारी' करें, तो इससे बच्चे में स्कूल का सम्मान न करने की अनुचित भावना उत्पन्न होगी। अपने बच्चे की रक्षा करने की भावना माता-पिता के लिए स्वाभाविक ही है। परन्तु जल्दबाजी में अपने 'नन्हे' के संकट में फँस जाने के विचार से उतावले हो जाने

में, जो बहुधा माता-पिता के साथ होता है, और मातृ-प्रेम या पितृ-प्रेम की भावना, तथा अभिमान की भावना से अन्धे न बनकर समस्या को समझदार आदमी की तरह विचारपूर्वक अध्ययन न करने में बड़ा अन्तर है। चाहे समस्या कोई भी हो—प्रफुल्ल को दूसरे बच्चे खेल के मैदान में डराते-धमकाते हैं, या अलका पढ़ना तेजी से नहीं सीख रही है, या माधुरी की शिकायत कि उसकी अध्यापिका उसको ताने देती हैं सच है—यदि हम फौरन अपने बच्चे का पक्ष लेने के बजाय शान्तिपूर्वक समस्या की जांच करें तो परिणाम अच्छा होगा और बाद में हमको लज्जित भी नहीं होना पड़ेगा।

जिन अध्यापकों को हम अपने बच्चों की शिक्षा का भार देते हैं उनको दूसरो की अपेक्षा श्रेष्ठ मनुष्य समझना पर उनको उसके अनुकूल वेतन न देना बड़ा अन्याय है। हमको इस बात को निश्चित कर लेना चाहिए कि केवल योग्य लोग ही शिक्षक बनें। जब हम स्कूलो और शिक्षकों के हाथ में अपनी सबसे बहुमूल्य वस्तु, अर्थात् अपने बच्चे, सौंपते हैं तो हमको इसकी पूर्ण रूप से व्यवस्था करनी चाहिए कि शिक्षकों की भावनाओ में परिपक्वता हो, उनके विचार संकीर्ण न हों, वे बुद्धिमान और सजग हों, उनमे संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण काम को पूरा करने की क्षमता हो।

कई समाज ऐसे हैं जहाँ शिक्षको के आचरण पर ऐसी पाबन्दियाँ लगी होती हैं जो माता-पिता अपने ऊपर नहीं लगाना चाहते। बहुधा शिक्षकों से यह भी आशा की जाती है कि वे अपने खाली समय मे बच्चों के क्लब और उनके दूसरे संगठनों की देख-रेख का काम भी सम्भाले। कुछ स्कूलों मे विवाहित अध्यापिकाओं की अपेक्षा अविवाहित अध्यापिकाओं को ज्यादा पसन्द किया जाता है। परन्तु विवाहित अध्यापिकाएँ अपने बच्चो के अनुभव से दूसरे बच्चों की जरूरतों को आसानी से समझ सकती हैं। शिक्षक के लिए यह जरूरी है कि उन पर ऐसी पाबन्दियाँ न लगाई जायँ कि वह वास्तविक मनुष्य ही न रह जायँ।

एक समस्या जिसके विषय मे माता-पिता को स्कूल के अधिकारियों से जरूर बात करनी चाहिए वह है बच्चो को एक कक्षा से ऊँची कक्षा में भेजने की समस्या। अधिकांश बच्चे जिस समूह के साथ स्कूल में भरती होते हैं उसी के साथ एक कक्षा से दूसरी कक्षा में बढ़ते चले जाते हैं। बहुत से स्कूल आजकल ऐसे हैं जो छोटी कक्षाओं मे प्रायः सभी विद्यार्थियों को 'पास' कर देते हैं। परन्तु कई ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जिनमे यही सबसे उचित होता है कि बच्चा उसी कक्षा में एक बार

फिर पढ़े, जैसे बीमारी के कारण बहुत दिनों तक स्कूल न जा सकने के कारण या किसी और कारण नियमित रूप से स्कूल न जा सकने के कारण। यह इससे कहीं अच्छा है कि बच्चे को अगली कक्षा में भेज दिया जाय और आगे चलकर वह अच्छी तरह तैयारी न कर सकने के कारण या अपनी कक्षा के दूसरे बच्चों की तुलना में कम ज्ञान रखने के कारण बार-बार बुरी तरह असफल हो।

बहुधा ऐसा होता है कि कक्षा का काम बच्चे के लिए बहुत सरल होता है और इसलिए उसे अपनी पूरी क्षमता का प्रयोग करने की जरूरत नहीं पड़ती। स्कूलों में ऐसे बच्चों को अगली कक्षा में भेज दिया जाता था। ऐसा करने से कभी-कभी ऐसा होता था कि वे अपने से ज्यादा शक्तिशाली और ज्यादा योग्य बच्चों के बीच पहुँच जाते थे। इस समस्या से बचने के लिए अब स्कूलों में यह किया जाता है कि उचित कक्षा में ही बच्चे के अनुभव को और सम्पन्न बनाने का प्रयत्न किया जाता है। उसके लिए कोई विशेष योजनाएँ बनाकर या उस समय जब कक्षा के दूसरे विद्यार्थी कोई ऐसा काम कर रहे हों जिसमें उसे ज्यादा अभ्यास करने की जरूरत नहीं उसे कोई दूसरी किताब पढ़ने का अवसर देकर इस कठिनाई को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार के बच्चों में ऐसी अन्य रुचियाँ पैदा करने के लिए जो उसके उत्साह को बढ़ाए रखें और उसे सतर्क रखे, माता-पिता बहुत सहायक हो सकते हैं। उसे अगली कक्षा में भेज देने का आग्रह करने से अच्छा यह है कि उसे संगीत, दस्तकारी या किसी कला की शिक्षा दी जाय ताकि उसमें अपनी क्षमता को प्रयोग करने और उन्नति करने के लिए प्रयत्न करने की आदत को प्रोत्साहन मिल सके। जिन बच्चों की मानसिक शक्ति दूसरे बच्चों की अपेक्षा ज्यादा होती है उनको इस प्रकार की बातों से बड़ा प्रोत्साहन मिलता है कि उन्हें लाइब्रेरी में जाने की स्वतन्त्रता हो, या वे अपने पिता के साथ सैर को जा सकें या अपनी क्षमताओं को प्रयोग करने का उन्हें कोई और अवसर दिया जाय।

कोई भी समस्या हो, बच्चे का उपकार इसी में है कि उसका स्कूल और उसका घर दोनों ही मिलकर उस समस्या को हल करने की योजना बनाएँ।

लिखना-पढ़ना सीखना

हममें से अधिकांश लोग यह समझते हैं कि स्कूल जाने का अर्थ सबसे पहले यह होता है कि हम पढ़ना सीखें। और बच्चे को जितनी बातें सीखनी पड़ती हैं उनमें शायद किसी और का इतना महत्त्व नहीं जितना पढ़ने का है क्योंकि जब तक वह अच्छी तरह पढ़ना नहीं सीख लेता वह दूसरी चीजों के बारे में जानने

की इच्छा को पूरा करने में लाचार रहता है।

चूँकि माता-पिता इस बात को जानते हैं कि पढ़ सकने की क्षमता का स्कूल में बच्चे की प्रगति से कितना गहरा सम्बन्ध है, इसलिए वे उसे स्कूल भेजने से पहले ही पढ़ने का थोड़ा-बहुत अभ्यास करा देते हैं। आश्चर्य की बात तो जरूर है, पर माता-पिता का यह प्रयत्न उसकी सहायता करने की अपेक्षा उसकी प्रगति में बाधक अधिक होता है। उदाहरण के लिए बच्चे को घर पर सीधे-सीधे अक्षर का ज्ञान करा देना आवश्यक है। इसकी अपेक्षा यदि हम उसे अपनी समस्याओं को स्वयं हल करने का अभ्यास कराएँ तो वह सचमुच बहुत लाभदायक होगा, क्योंकि पढ़ना सीखने मे कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, विभिन्न शब्दों का 'रूप' पहचानना, पृष्ठ पर उनकी 'स्थिति' पर नजर जमाना और फिर यह भी ध्यान रखना कि कहीं कोई और आगे न निकल जाय। स्कूल में भरती होते समय बच्चा अपना नाम लिख लेता हो, यह कोई महत्त्व नहीं रखता (बहुत से पाँच बरस के बच्चे भी अपना नाम लिखना सीख लेते हैं), परन्तु यदि उसे किताबें पढ़कर सुनाई गई हैं और उससे बातें की गई हैं तो यह अधिक लाभदायक है, क्योंकि इस प्रकार वह कई शब्दों के अर्थ समझने लगता है और उनको अपने अनुभवों से तथा उन बातों से जो उसे समझाई गई हैं सम्बन्धित करने लगता है।

स्कूल जाने से पहले पढ़ने का अभ्यास करने के लिए माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चो को स्वयं अपना मार्ग चुनने दें। बहुत से तेज बच्चे इश्तिहारों से, अखबारों के शीर्षकों से और साइन बोर्डों से पढना सीखते हैं। परन्तु स्कूल जाने से पहले छापा हुआ अक्षर पढ़ने के लिए बच्चों के साथ जबरदस्ती करने मे कोई लाभ नहीं होता।

एक दूसरी बात जो महत्त्वपूर्ण है वह यह कि बच्चे पटना सीखने के लिए तत्पर हों। बच्चे का ६ वर्ष का हो जाने का अर्थ यह नहीं होता कि वे पटना जरूर सीखने लगें। कुछ बच्चे इससे पहले ही पढ़ना सीखने योग्य हो जाते हैं और कुछ बाद मे। बच्चे की वास्तविक आयु की अपेक्षा उसकी मानसिक आयु अधिक महत्त्व रखती है। पहली कक्षा में कुछ बच्चे ज्यादा तेजी से उन्नति करते हैं, दूसरों को धीरे-धीरे आगे बढ़ाने की जरूरत होती है।

शिक्षक को इस बात का बहुत ध्यान रखना चाहिए कि अलग-अलग विद्यार्थियों की जरूरतें भी अलग-अलग होती हैं, कुछ विद्यार्थियों पर ज्यादा समय खर्च करने की जरूरत होती है कुछ पर कम। यदि हर बच्चे के पास अलग-अलग

अपनी लिखने की कापी है तो शिक्षक आसानी से पता चला सकता है कि किस बच्चे की क्या कठिनाई है। इस प्रकार की व्यवस्था में यह होता है कि जो बच्चा ज्यादा जल्दी सीख लेता है उसे अपनी गति से आगे बढ़ने दिया जा सकता है और शिक्षक अपना समय उन बच्चों पर खर्च कर सकता है जिनको उसकी सहायता की ज्यादा जरूरत है। बच्चे को स्वयं शिक्षा देने की अपेक्षा माता-पिता के लिए यह ज्यादा जरूरी है कि वे उसके शिक्षक से मिलने में ज्यादा दिलचस्पी लें क्योंकि बहुत थोड़े ही माता-पिता ऐसे होते हैं जो शिक्षक की उस उन्नत शिक्षा-प्रणाली से परिचित हों जिसके द्वारा वह बच्चों को पुस्तकों की दुनिया में ले जाता है।

बहुत से माता-पिता इस बात को नहीं समझते कि यदि पहली कक्षा का शिक्षक अच्छा हो तो बच्चे को कितना फायदा पहुँच सकता है। जब वह स्कूल में अच्छी तरह घुल-मिल जाने की पहली कोशिश कर रहा हो और अपनी भावी आदतों का निर्माण करने की ओर पहला कदम उठा रहा हो, उस समय यह बहुत ज़रूरी है कि उसका शिक्षक बहुत कुशल और अनुभवी हो। शुरू-शुरू में अच्छी शिक्षा न मिलने के कारण बहुत से बच्चों की प्रगति केवल धीमी ही नहीं पड़ जाती बल्कि उनके आत्म-सम्मान की भावना को तथा अपनी योग्यता में उनके विश्वास को स्थायी रूप से बड़ी हानि पहुँचती है। उनमें दब्बूपने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है और अपने ऊपर से उनका विश्वास उठ जाता है, और बाद में इन कमजोरियों को दूर करना बहुत मुश्किल होता है। कोई बच्चा जो शुरू-शुरू में पढ़ने में बहुत सुस्त हो, आगे चलकर ७, ८ या ९ वर्ष की अवस्था में तेजी से पढ़ने लग सकता है। सम्भव है कि कोई दूसरा बच्चा ज्यादा समय तक पढ़ना न सीख सके। जरूरत इस बात की होती है कि हर बच्चे को उसकी अपनी-अपनी गति के अनुसार चलने दिया जाय।

माता-पिता किस प्रकार सहायता कर सकते हैं

माता-पिता स्वयं तो इस बात का पता नहीं लगा सकते कि उनका छः-वर्षीय बच्चा पहली कक्षा के योग्य है कि नहीं, लेकिन वह पढ़ने का अनुभव प्राप्त करने के लिए तैयार करने में बहुत-कुछ कर सकते हैं। उनका उत्साहजनक, आनन्दमय साथ बच्चे के लिए किसी विशेष कौशल की शिक्षा से कहीं ज्यादा महत्त्व रखता है।

शान्त और सुखी बच्चे किसी ऐसे नये काम को जिसमें साहस की जरूरत हो, उन बच्चों की अपेक्षा ज्यादा उत्साह के साथ कर सकते हैं जो चिन्ता और

भय का शिकार होते हैं। इसलिए जिन माता-पिताओं ने अपने बच्चों को स्वाभाविक गति से बढ़ने दिया है और उनमें भय और चिन्ता पैदा नहीं होने दी है उन्होंने अपने बच्चों को स्कूल के तमाम अनुभवों के लिए तैयार करने में बहुत बड़ा कदम उठाया है। जो बच्चे यह सीख चुके हैं कि दूसरे बच्चों से मिल-जुलकर कैसे खेलें उनको उनके साथ काम करने में भी कोई कठिनाई न होगी। यदि उनके घर का जीवन नियमित रहा है और उनको नियम तथा विधि के अनुसार काम करने की आदत रही है तो वे स्कूल की दिनचर्या का भी आसानी से पालन कर सकेंगे। अजय को यदि अपने-आप कपड़े पहनने की शिक्षा दी गई है और वह नियमित समय पर खाना खाने के लिए बुलाए जाने पर आ जाता है, तो अपने स्कूल की जिम्मेदारियाँ सम्भालने में भी उसे कोई कठिनाई न होगी। इसके विपरीत, रमन की आदत यह पड़ चुकी है कि घर पर जब भी वह किसी बात के लिए मचलता था वह उसके लिए पूरी कर दी जाती थी इसलिए उसे स्कूल के काम में मन लगाने में बड़ी कठिनाई होगी। उसे हर समय अपने अध्यापक की सहायता की जरूरत पड़ेगी जबकि करुणा को इस प्रकार की जरूरत हर समय नहीं पड़ेगी, क्योंकि उसके माता-पिता ने उसको इसकी शिक्षा दी है कि वह हर बात के लिए मचलकर उनको परेशान न किया करे।

बच्चों को पढ़ना सीखने के लिए तैयार करने का एक दूसरा उपाय है जो कुछ घरों में उसी समय से चुपचाप और आनन्दमय रूप में आरम्भ हो जाता है जबसे कि बच्चा बात करना सीखता है। ऐसे घरों में तरह-तरह के मनोरंजक अनुभव जैसे अजायबघर की सैर, या देहात की सैर, बच्चों के जीवन का वैसा ही अभिन्न अंग बन जाता है जैसा सोना या खाना। चित्रों और कहानी की पुस्तकों से उनकी जिज्ञासा को जागृत किया जाता है और माता-पिता अपने बच्चों के प्रश्नों का ठीक तरह पूरी गम्भीरता के साथ उत्तर देते हैं।

जो माता-पिता अपने बच्चों को मेहनत करके इसकी शिक्षा देते हैं कि विभिन्न पेड़ों में और जन्तुओं में क्या अन्तर होता है, उनको यह समझाते हैं कि कोयला, लकड़ी, मक्खन, कागज, और रोटी आदि कहाँ से आती है, उनके बच्चों को न केवल बहुत-सी आम चीजों के बारे में जानकारी हो जाती है बल्कि उनमें ध्यान से सुनने का गुण भी आ जाता है। स्कूल में जब उनको अपने शिक्षक के आदेशों को सुनकर याद करना पड़ता है और उनका पालन करना पड़ता है, उस समय यह शिक्षा बहुत उपयोगी साबित होती है। बच्चों को वे अपनी देखी हुई

चीजों को या अपने विचारों को व्यक्त करने का अवसर देने से उनमें सुलझे हुए ढंग से सोचने की शक्ति पैदा होती है। अपने अनुभवों को वर्णन करने के लिए उनको प्रोत्साहित करने से उनमें दूसरे लोगों के सामने भाषण देने की योग्यता आती है, जिसका आगे चलकर स्कूल में बड़ा महत्त्व होता है।

यदि अलंकारमय कविताएँ, तुकबन्दियाँ और ऐसे खेल जिनका आधार शब्दों के स्वर और उनके अर्थ पर होता है, घर पर शुरू से ही बच्चों के खेल के अनुभव का एक भाग रहा हो तो बच्चे को शब्दों में दिलचस्पी पैदा होती है जिससे पढ़ना सीखने में आसानी होती है। हम सब लोग बड़ी आसानी से बहुत से शब्दों को अपभ्रंश रूप में प्रयोग करके अशुद्ध भाषा प्रयोग करने की आदत में फँस जाते हैं, लेकिन यदि बच्चे को आरम्भ से ही शुद्ध और साफ उच्चारण सुनने की आदत हो तो वह उन्हीं शब्दों को जब छपा हुआ देखेगा तो आसानी से पहचान सकेगा। जब तीन बरस का बच्चा "खिड़की" को "खिकड़ी" या "ढोलची" को "डोचली" कहता है तो हमको बड़ा मजा आता है, पर यदि बच्चा स्कूल में भरती होते समय भी इसी प्रकार के गलत उच्चारण करता हो, यह बहुत अनुचित है।

और आखिरी बात यह कि पढ़ने के लिए तैयार होने का अर्थ होता है पढ़ना सीखने में रुचि होना। वह बच्चा जिसे भिन्न-भिन्न स्थानों की सैर के द्वारा और इधर-उधर घूमने-फिरने के कारण अपने चारों ओर के संसार से परिचय हो गया है; जिसने अनेकों कहानियाँ सुनी हैं और जिसे चित्रों की किताबें देखने का अवसर मिला है; जिसे इसका कुछ-कुछ ज्ञान है कि पढ़ना सीखना एक ऐसा मन्त्र होगा जिसकी सहायता से "अलीबाबा चालीस चोर" की तरह 'खुल जा समसम' कहते ही उसके सामने एक अद्भुत संसार का रास्ता खुल जायगा; वह बड़ी उत्सुकता और खुशी से पढ़ना सीखने के लिए बेचैन रहेगा।

पढ़ने में कठिनाई

यदि बच्चे को पढ़ना सीखने में कठिनाई होती है तो इसके कई कारण हो सकते हैं जो सम्भव है एक दम से माता-पिता की समझ में न आयें। परन्तु इस कठिनाई का कारण जितनी जल्दी ढूँढ लिया जाय उतना ही अच्छा है।

इस सम्बन्ध में सबसे पहले यह मालूम करना चाहिए कि बच्चे की आँख में तो कोई खराबी नहीं है। स्कूलों में बच्चों का जो डाक्टरी परीक्षण होता है उससे केवल बहुत मोटी-मोटी खराबियों का ही पता चलता है। किसी आँख के

डाक्टर को दिखलाकर इसका निश्चय कर लेना चाहिए कि बच्चे को कहीं ऐनक की जरूरत तो नहीं है।

कभी-कभी पढना सीखने में कठिनाई ऊँचा सुनने के कारण भी होती है। जो बच्चा साफ नहीं सुन पाता उसे पढ़ने में जरूर कठिनाई होगी। शब्द के वास्तविक उच्चारण में और जो उच्चारण वह सुनता है सम्भव है कोई सम्बन्ध ही न हो। यदि बच्चे को बहुत ही ऊँचा सुनाई देता है तो उसे विशेष कक्षा में रखने की जरूरत है। यदि केवल बहुत थोडा ही ऊँचा सुनता है तो सिर्फ इस बात की जरूरत है कि उसे शिक्षक के पास बिठाया जाय। इससे यह कठिनाई दूर हो सकती है।

क्या इसमें इसका भी प्रभाव पड़ता है कि बच्चा बाएं हाथ से लिखता है या दाएं से?

बहुत से बच्चों को काफी दिन की उलझन और परेशानी के बाद यह समझ में आता है कि उनको बाईं से दाहिनी तरफ पढ़ना चाहिए। बच्चे यदि क्रम-बद्ध चित्र-कथाओं को देखते रहे हों तो उनको पढ़ने की दिशा का ज्ञान आसानी से हो सकता है। इसीलिए माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चों को इन चित्र-कथाओ को स्वयं देखकर समझने दें, अधीर होकर स्वयं उनको समझाने न लगें। जो बच्चे लबडहत्थे होते हैं उनके लिए दाहिनी तरफ से बाईं तरफ की दिशा अधिक स्वाभाविक होती है। जब ऐसे बच्चे को लिखने के लिए या चित्र खींचने के लिए कागज दिया जाय तो कागज़ को उस दिशा से विपरीत दिशा में तिरछा करके रखना चाहिए जिसमे दाहिने हाथ से लिखने वाले बच्चो के लिए रखा जाता है। ऐसा न करने से बाएँ हाथ से लिखने वाले बच्चे को अपनी कलाई को घुमाना पड़ेगा और अजीब बेतुके ढंग से उल्टी दिशा में लिखना पड़ेगा।

स्कूल जाने से बहुत पहले ही यह निश्चित हो जाता है कि बच्चा बाएँ हाथ से लिखता है या दाएँ से। बाएँ हाथ से लिखने वाले बच्चे को दाहिने हाथ से लिखने पर माता-पिता या शिक्षक को बाध्य न करना चाहिए।

पढ़ना सीखना शुरू करते समय बच्चे कभी-कभी शब्दों को उल्टा पढ़ने लगते हैं जैसे 'क़लम' को 'मलक़' और अक्षर और गिनतियाँ उल्टी लिखने लगते हैं। यदि यह प्रवृत्ति स्वाभाविक सीमा से बढ़ जाय अर्थात् बच्चा धीरे-धीरे शब्दों और अक्षरों को उनके वास्तविक रूप मे 'देखने' न लगे तो उसको अलग से थोड़ी ज़्यादा सहायता करने की जरूरत होगी नहीं तो वह बच्चा हतोत्साह

हो जायगा।

क्या बच्चा खुश रहता है ?

बहुत ही कम माता-पिता होते हैं जो इस बात को समझते हों कि यदि बच्चा पढ़ना सीखने में बहुत सुस्त है तो सम्भव है कि इसका सम्बन्ध पढ़ने से स्वतः कुछ भी न हो। शायद उसका मन बहुत दुखी रहता हो जिसके कारण पढ़ने की ओर ध्यान देने में बाधा पड़ती हो। अपने घर के बाहर जिस बड़े आदमी के सम्पर्क में वह सबसे पहले आता है वह शायद उसका शिक्षक होता है जो स्कूल में उसकी माँ का स्थान ले लेता है। यदि बच्चे को घर पर खुशी से और उत्साह-पूर्वक अपनी माँ का काम करने की आदत रही है तो इसकी आशा की जा सकती है कि वह अपने शिक्षक की बात को भी माने। परन्तु यदि घर पर उसकी अपनी माँ से नहीं बनती थी तो यही रवैया उसका अपने शिक्षक के प्रति हो जायगा और वह पढ़ना सीखने का कोई प्रयत्न नहीं करेगा।

जब कोई बच्चा पढ़ने के प्रति उदासीन रहने लगता है और उसकी इच्छा पढ़ने को नहीं होती तब हमको यह विचार होता है कि शायद इसका कारण यह है कि उसे पढ़ने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। वास्तव में, सम्भव है कि बात बिलकुल उल्टी ही हो; पढ़ने में उसकी कठिनाई का कारण शायद यह हो कि उसके दिमाग़ पर कोई बोझ हो जिसे वह दूर न कर पा रहा हो और जिसके कारण उसमें और उसके शिक्षक में सहयोग का सम्बन्ध न स्थापित हो पाता हो। शायद बच्चे का स्वभाव शिक्षक के स्वभाव से मेल न खाता हो। माता-पिताओं तथा सभी दूसरे लोगों की तरह, शिक्षकों की भी अपनी व्यक्तित्व-सम्बन्धी तथा पारि-वारिक-जीवन की समस्याएँ हो सकती हैं जो बच्चों के प्रति उनके सम्बन्ध की राह में बाधक हों।

यदि माता-पिता और शिक्षक सबके पूरी तरह प्रयत्न करने के बाद भी बच्चे की भावना-सम्बन्धी समस्याएँ राह में बाधक हों तो किसी ऐसे डाक्टर से परा-मर्श करना चाहिए जो मस्तिष्क स्वास्थ्य का विशेषज्ञ हो।

चूँकि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को पढ़ना सीखने में ज़्यादा कठिनाई होती है इसलिए यह अन्दाजा होता है कि माताएँ लड़कियों की जरूरतों की अपेक्षा लड़कों की जरूरतों को कम अच्छी तरह जानती हैं। क्योंकि औरतों के लिए यह स्वाभाविक है कि वे अपने बेटों से वैसे व्यवहार की आशा करें जो उनकी सुवि-धाओं के अनुकूल हो और चूँकि लड़कियाँ उतनी उद्दंड नहीं होतीं जितना कि

लड़के, इसलिए वे ज्यादा आसानी से अनुकूल बनाई जा सकती हैं। इस सम्बन्ध में यह भी याद रखना जरूरी है कि लड़कियाँ साधारण विकास के मामले में लड़कों से कुछ आगे होती हैं इसलिए शायद उनको पढ़ना सीखने में लड़कों की अपेक्षा ज्यादा आसानी होती है।

परन्तु किसी हालत में भी यह नहीं करना चाहिए कि बच्चे की भावनाएँ यदि पढ़ना सीखने के मार्ग में बाधक हों तो उसका यह सीधा-साधा, सतही कारण बताकर टाल दिया जाय कि शायद बच्चे को पढ़ना कठिन मालूम होता है। बच्चे की भावना-सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ पढ़ने के चारों तरफ ही बनती हैं इसका कारण शायद यह है कि शुरू की कक्षाओं में पढ़ने पर इतना जोर दिया जाता है और माता-पिता भी पढ़ने को बच्चे की प्रतिभा का प्रमाण समझकर उसे बहुत महत्त्व देते हैं।

यदि एक बार बच्चे को पढ़ने से नफरत हो जाय तो वह फिर अपने को सुधारने का चाहे जितना प्रयत्न करे उसकी असफलता और निरुत्साह की भावना हमेशा उसकी राह में बाधक होगी। इस दशा में धैर्य तथा सहानुभूति के साथ उसकी कठिनाई को समझना बहुत जरूरी है। बहुधा माता-पिता यह सोचकर कि बच्चा आलसी है, या जिद्दी है या वह पढ़ने की कोशिश ही नहीं करता, इतने चकरा जाते हैं और उनको इतना क्रोध आता है कि वे समझदारी से कोई कदम नहीं उठाते। "सुमन भी तो आखिर तुम्हारी बहन ही है, फिर तुम पढ़ने में उस जितनी तेज क्यों नहीं हो?" "पढ़ने में तुमको कोई भी कठिनाई न हो, लेकिन तुम कोशिश ही नहीं करते!" लाचार बच्चे पर इस तरह की डाँट-फटकार अक्सर पड़ती रहती है। परन्तु इससे वह केवल और बौखला जाता है; उसकी चिन्ता बढ़ जाती है और उसकी कठिनाई भी बढ़ जाती है।

बच्चे को उसकी गति से ही चलने दो

बच्चों से अपने बड़े भाई या बहन, या अपने ही जोड़ुवाँ भाई, अथवा किसी मित्र या रिश्तेदार के बच्चे की बराबरी करने की आशा नहीं करना चाहिए। यदि बार-बार उसके कान में इस प्रकार की असमान बराबरी की बात डाली जाती रही तो वह अपनी असफलता पर निश्चय ही निरुत्साह हो जायगा। इस बात पर आश्चर्य होता है कि हम बड़े लोग एक गलत धारणा के आधीन कि इस व्यवहार से बच्चा अधिक प्रयत्न करने के लिए प्रोत्साहित होता है, हमेशा उसे रोकने और जबरदस्ती आगे बढ़ाने से बाज नहीं आते।

जिस बच्चे को पढ़ने में कठिनाई होती हो उसकी सहायता के लिए सबसे पहले जो बात जरूरी है वह यह कि उसके स्कूल के साथ सहयोग किया जाय। कुछ देशों में तो ऐसे डाक्टर होते हैं जो बच्चों की पढ़ने की कठिनाई का इलाज करने के विशेषज्ञ होते हैं। इस प्रकार के डाक्टरी केन्द्र केवल तभी स्थापित किए जा सकते हैं जब हम सब लोग उसको चलाने की कोशिश करें। सभी बच्चों के माता-पिता को यह समझना चाहिए कि इस प्रकार की संस्थाओं से बहुत लाभ होता है।

लिखना और गणित

विभिन्न बच्चों को लिखना सीखने में उतना ही अलग-अलग समय लगता है जितना पढ़ना सीखने में क्योंकि हर बच्चे के स्नायु अलग-अलग समय में लिख सकने के योग्य बन पाते हैं।

क्योंकि अच्छी तरह लिखना जानने के लिए यह जरूरी होता है कि कई बहुत छोटे-छोटे स्नायु एक दूसरे के सहयोग में काम करें इसीलिए बहुत-से स्कूलों में यह तरीका अपनाया जाता है कि बच्चों को पहले हर अक्षर को अलग-अलग बहुत सादे ढंग से तथा छोटी-छोटी रेखाओं को परस्पर जोडकर लिखना सिखाया जाता है। यह तरीका छोटे बच्चों के लिए बहुत उपयोगी होता है।

इस सम्बन्ध में अमरीका आदि देशों में बच्चों को बचपन में ही टाइप-राइटर का प्रयोग सिखाने को बहुत महत्त्व दिया जाता है। यह मालूम किया गया है कि यदि बच्चा टाइपराइटर का प्रयोग कर सकता है तो वह हाथ से लिखने की अपेक्षा ज्यादा बातों को व्यक्त करता है तथा ज्यादा शब्दों का भी प्रयोग करता है। टाइपराइटर का छपा हुआ लेख हाथ के लिखे हुए लेख की अपेक्षा अधिक सफल रचना मालूम होती है, यद्यपि उसमें भी ग़ल्तियाँ होती हैं।

जब बच्चा पहली कक्षा में जाता है उसे संख्याओं में केवल दिलचस्पी ही नहीं होती उसको कई बार उनके प्रयोग की जरूरत भी पड़ती है। शायद उसकी कक्षा दूसरे हाल के दरवाजे से तीसरे कमरे में है, इसलिए अपनी बैठने की जगह का पता लगाने के लिए उसे गिनने की जरूरत पड़ती है। कभी-कभी उसका शिक्षक उससे यह कहता है कि तीन और लड़कों को चुनकर उनके साथ जाकर खेलो।

यदि घर पर प्रतिदिन के अनुभव में उसने संख्याओं का प्रयोग सीखा है तो उसे इस अभ्यास में मजा आयगा नहीं तो वह चकरा जायगा और उसका दिमाग उलझ जायगा। लेकिन कभी-कभी माता-पिता बच्चों को गिनती सिखाने पर ज्यादा

जोर देते हैं, उनको उन गिनतियों का अर्थ नहीं समझते। बहुत-से ५-६ बरस के बच्चे ऐसे होते हैं जो बड़ी आसानी से १० तक गिनती गिन सकते हैं पर उनको यह नहीं मालूम होता कि इन विभिन्न शब्दो का आपस मे क्या सम्बन्ध है।

असंख्य ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा माताएँ अपने बच्चों को संख्याओं का अर्थ समझा सकती हैं। वह सिलाई करते समय अपने चार वर्ष के बच्चे से धागे की दो घर्खियाँ या खाना लगाते समय तीन चम्मच लाने को कह सकती हैं। लकड़ी के टुकड़ो से घर बनाते समय यदि उससे दो या चार टुकड़ों को तले-ऊपर रखने को कहा जाय तो उसे बड़ा आनन्द आयगा और वह इस प्रकार इन संख्याओं का अर्थ भी समझ जायगा।

हम लोग अपने बच्चों से इतनी लापरवाही से बात करते हैं कि हम उनको बहुत सी ऐसी जानकारी से वंचित रखते हैं जो उनके लिए बहुत उपयोगी हो सकती है। उदाहरण के तौर पर प्रायः सभी बच्चे शुरू से ही दूध और कपड़े से परिचित होते हैं परन्तु शायद पाँच बरस के बच्चों मे से आधे या चौथाई भी ऐसे नहीं होंगे जिनको यह मालूम हो कि यह चीजें कहाँ से आती हैं। आम जानकारी तथा विशेष आवश्यकताओं दोनो के सम्बन्ध मे (जैसे पढ़ने और गणित मे जल्दी प्रगति करने के लिए जरूरी बातो के सम्बन्ध मे) माता-पिता वास्तव में बड़ी सहायता कर सकते हैं। दूकान में बच्चे को स्वयं १ पौंड या २-पौंड के बिस्कुट के डिब्बे पहचानने का अभ्यास कराने से उसमे विभिन्न भारो और आकारो में अन्तर करने की योग्यता पैदा होती है। बाद में इसी प्रकार उसे सेब के दो टुकड़े करना या दस पैसो में से अपने लिए ३ पैसे अलग करना भी सिखाया जा सकता है।

इसके विपरीत, अपनी स्कूल की शिक्षा के प्रारम्भ मे बच्चों को पहाड़े याद करा दिए जा सकते हैं और वे बिना यह समझे कि वे क्या कर रहे हैं उनको दोहरा सकते हैं क्योंकि इसमे समझने की नहीं केवल रटने की जरूरत होती है। बच्चों के साथ पच्चीसी या लूडो, या स्नेक्स-एण्ड-लैडर्स तथा ताश के सीधे-सादे खेलों के द्वारा माता-पिता अपने बच्चों के सामने संख्याओं को इस रूप में रख सकते हैं कि वे उनका अर्थ समझने लगें।

'बड़े' और 'छोटे' तथा 'लम्बे' और 'छोटे' तथा 'हल्के' और 'भारी' का अन्तर भी इसी प्रकार बच्चों को ऐसे खेलों के द्वारा समझाया जा सकता है जिनमें वजन, दूरी और आकार पहचानने की समस्या हो। ६ बरस के बहुत से बच्चे घड़ी देखकर इस प्रकार के वक्त तो ठीक-ठीक बता सकते है कि नौ बजा है, या

ग्यारह बजा है, पर वे सवा सात या साढ़े तीन या पाँच बजकर बीस मिनट आदि का अन्दाजा घड़ी देखकर नहीं लगा सकते।

सामाजिक शिक्षा 'क्यों'

'सामाजिक शिक्षा' के स्कूल की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण भाग बनने से पहले जिन माता-पिताओं ने शिक्षा प्राप्त की है वे इस पर आश्चर्य प्रकट करेंगे कि आखिर 'सामाजिक शिक्षा' है क्या?

बच्चों को स्कूल के जीवन में वे तमाम अनुभव मिलने चाहिएँ जिनके द्वारा वह स्कूल छोड़ने के बाद अपने जीवन की समस्याओं का सामना करने के लिए पूरी तरह तैयार रहे। जब तक कोई मनुष्य उस संसार के बारे में पूरा ज्ञान नहीं रखता जिसमें वह रहता है तब तक उससे अपनी बुद्धि का पूरा प्रयोग करने की आशा नहीं की जा सकती। विशेष रूप से आजकल जबकि हम सब लोग एक-दूसरे के इतना निकट आ गए हैं और हमारा जीवन संसार के दूसरे लोगों के जीवन से सम्बद्ध है। इसलिए हमारे लिए यह समझना अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि हमारा दूसरे लोगों के साथ सम्बन्ध किस प्रकार का है।

उस जमाने में जब हर परिवार के पास अपनी अलग गाय होती थी, उस जमाने में घर-घर दूध बाँटने की कोई जरूरत ही नहीं थी। लेकिन आजकल जबकि शहरों में दूध कई मील दूर से आता है, यह जरूरी है कि हमारे बच्चे इस बात को जानें कि हड़ताल हो जाने पर या कोई ऐसी दुर्घटना हो जाने के कारण यह भी सम्भव हो सकता है कि उनको किसी दिन दूध न मिले। जिन प्रदेशों में गेहूँ ज्यादा पैदा होता है उनको यह समझने की जरूरत है कि यदि अकाल पड़ जाने पर फसल खराब हो जाय तो केवल उन्हीं पर उसका प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि उन देशों के बच्चों पर भी पड़ेगा जहाँ उस प्रदेश से गेहूँ भेजा जाता है। शहर में रहने वाले बच्चों को यह सिखाना चाहिए कि हमारी प्राकृतिक सम्पत्ति को किस प्रकार सुरक्षित रखा जा सकता है—जंगलों की रक्षा करना क्यों जरूरी है; बड़ी-बड़ी नदियों पर बाँध किस प्रकार बाँधे जाते हैं, या बड़े-बड़े कारखानों के कचरे से नदियों को गन्दा होने को किस प्रकार बचाया जा सकता है। इन बातों का ज्ञान होने पर वह आगे चलकर पूरी समझ के साथ इन विषयों से सम्बन्ध रखने वाले कानूनों पर अपना मत दे सकते हैं।

भूगोल, इतिहास और नागरिक-शास्त्र को अलग-अलग और स्वतन्त्र विषयों के रूप में पढ़ाने की अपेक्षा 'सामाजिक शिक्षा' को एक अलग विषय के रूप

से पढ़ाना किस प्रकार ज्यादा उपयोगी है ? यह परिवर्तन हमारे लिए इसलिए जरूरी हो गया कि हम इस बात को समझने लगे है कि हमारा संसार भी बहुत बदल गया है। यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे दूसरे मनुष्यों की जरूरतों को समझें तो उनको यह भी मालूम होना चाहिए कि दूसरे लोग जिन परिस्थितियो में रहते हैं, उनकी शासन-प्रणाली किस प्रकार बनी, और दूसरे लोगो के साथ जो-कुछ होता है उसका हम पर क्या प्रभाव पड़ता है। मनुष्य के परस्पर सम्बन्धो को और उनसे सम्बन्धित समस्याओं को छोटे-छोटे टुकड़ों में अलग-अलग 'विषयों' के रूप में बाँट देना असम्भव है।

जब इस वस्तुगत संसार को समझने के लिए इतनी समझदारी और कौशल की जरूरत पड़ती है तो फिर मनुष्यो के आपस के सम्बन्ध को समझना तो और भी कठिन काम है। दूसरे देशो के लोगो के साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए हम क्या कर सकते हैं ? सड़कों, टेलीफोन और मोटरों आदि से हमें आपस में मित्रता बढ़ाने में किस प्रकार प्रोत्साहन मिलता है ? जो खेल हम खेलते हैं उनके लिए हम नियम क्यों बनाते हैं ? जब शहर के बहुत से लोग बेरोजगार हो जाते हैं तो क्या देहात के किसानों पर इसका कोई प्रभाव पड़ता है ? सामाजिक शिक्षा के द्वारा हमेशा इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न तो नहीं किया जाता पर बच्चों के मस्तिष्क में इन समस्याओं को समझने की जिज्ञासा पैदा की जाती है।

सामाजिक शिक्षा में बच्चो को जिस प्रकार की जानकारी प्रदान की जाती है उसके प्रति उनकी दिलचस्पी का पता उन प्रश्नो से चलता है जो वे स्वयं इन समस्याओं के बारे में करते हैं। तीसरी कक्षा से छठी कक्षा तक के बच्चे इस प्रकार के प्रश्न करते हैं—

संसार के लोग विभिन्न भागों में किस प्रकार बँट गए ? देश किस प्रकार बने ? मनुष्य ने तेल का प्रयोग किस प्रकार सीखा ? पेंसिल में जो सीसा (लेड) होता है वह कहाँ से आता है ? क्या चीन के लोग हमारे जैसे ही कपड़े पहनते हैं ? कुछ लोगों को काम क्यों मिल जाता है और कुछ बेरोजगार क्यों रहते हैं ?

चीजों के उद्गम और घटनाओ के कारण जानने में उनकी दिलचस्पी, विभिन्न बातो के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने की उनकी इच्छा यह बताती है कि शिक्षकों को प्राकृतिक विज्ञानों के बारे मे कितनी अच्छी जानकारी रखने की

जरूरत है और उन विचारों के बारे में जिनका सम्बन्ध विभिन्न देशों के लोगों के रहन-सहन और उनके आपस के व्यवहार से होता है।

स्कूल में बच्चों को दूसरे बच्चों के साथ मिल-जुलकर मित्रतापूर्वक रहने का अनुभव प्राप्त होता है और दर्जनों दूसरी जिम्मेदारियाँ सँभालने की भी शिक्षा मिलती है। जब उनसे कहा जाता है कि वह जोर से न बोलें या हॉल में चलते समय दबे पाँव कदम रखें ताकि एड़ियों से खट-खट की आवाज न हो, तब उनको दूसरों के अधिकारों का ज्ञान होता है। जब उनको किताबें साफ रखने की शिक्षा दी जाती है या ड्राइंग के ब्रुश और पेस्टिल के रंग सावधानी से इस्तेमाल करना सिखाया जाता है या कागज व्यर्थ बरबाद न करने की शिक्षा दी जाती है तब वे चीजों को सावधानी से खर्च करना सीखते हैं। जब उनको यह बताया जाता है कि परिवारों में रहने का ढंग इस कारण पैदा हुआ कि असहाय बालक को शिशुकाल में किसी के संरक्षण की आवश्यकता होती थी, तब वे पारिवारिक जीवन का अर्थ और उसका महत्त्व समझने लगते हैं।

सामाजिक शिक्षा में इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि विभिन्न प्रकार के ज्ञान को एकत्रित करके एक सूत्र में बाँध दिया जाय, अभी तक यह ज्ञान विभिन्न विषयों के रूप में अलग-अलग बिखरा हुआ था और बच्चे किसी विषय को सीख पाते थे और किसी को नहीं। जब जीवन का अध्ययन उसके सम्पूर्ण रूप में किया जाता है तब वह हमको अधिक अर्थपूर्ण मालूम होने लगता है।

विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा

वे माता-पिता जिनको इसका कुछ ज्ञान होता है कि असंख्य लोग अपने सिर पर अज्ञान और अविश्वास का कितना बड़ा बोझ उठाए फिरते हैं, अपने बच्चों को स्कूल की कक्षाओं में विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करते देखकर बहुत खुश होते हैं। बच्चों में जितनी जल्दी वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करने की कोशिश की जाय उतना ही अच्छा है। विज्ञान और सामाजिक शिक्षा दोनों का उद्देश्य वही है : इस संसार को समझने में बच्चों की सहायता करना और उनमें इस बात का ज्ञान पैदा कराना कि लोग इस संसार के बारे में उपयोगी बातें किस प्रकार पता लगाते रहते हैं।

बच्चों के सामने समस्याएँ रखकर (जैसे पानी भाप बनकर क्यों उड़ जाता है, या बर्फ कैसे जमती है, या चुम्बक लोहे को क्यों आकर्षित करता है) उनको सीधे-सीधे और विस्तारपूर्वक अध्ययन करने का काम 'शुरू से ही' उनकी

कक्षाओं मे आरम्भ किया जा सकता है। अपने प्रतिदिन के अनुभवों से वह चीजों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए योजना बनाने की जरूरत को समझने लगता है। वह निष्पक्ष भाव से विचार करना सीखता है और उन व्याख्याओं को स्वीकार करने से इन्कार करता है जिनका आधार सत्य पर नहीं होता। विज्ञान के सीधे-सादे प्रयोगो के द्वारा तथा चीजों का वैज्ञानिक ढंग से निरीक्षण करने के द्वारा—इनका आयोजन बच्चे की सोचने और तर्क करने की बढ़ती हुई योग्यता के अनुकूल होना आवश्यक है, बच्चा कई बहुमूल्य बाते सीखता है जैसे किसी समस्या को हल करने में दूसरो के साथ मिलकर काम करना और आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए उस विषय से सम्बन्धित पुस्तको का अध्ययन करने का उचित ढग आदि।

अपने विचारों को व्यक्त करने का साधन

हम सब लोग यह चाहते हैं कि बोलने मे भी और लिखने में भी बच्चे जो कुछ कहना चाहते हैं उसे स्पष्ट रूप से व्यक्त करें। जब तक बच्चा आसानी से लिखना नहीं सीख लेता उस समय तक उसे केवल अपनी वाणी का ही आधार लेना पडता है। इसीलिए अपने विचारो को लिखकर व्यक्त करने की क्षमता प्राप्त करने से बहुत पहले ही अनेक परिस्थितियो मे यह जरूरी हो जाता है कि बच्चों को बेझिझक और अपनी इच्छा से अपने विचारो को व्यक्त करने का अवसर दिया जाय।

जिन बच्चों को घर पर दबाकर नहीं रखा जाता वे स्कूल जाकर अपने विचारों को व्यक्त करने से कभी नहीं झिझकते। इसमे सन्देह नहीं कि स्कूल में भरती होने पर जब बच्चा दूसरे बच्चों के एक बडे समूह के सम्पर्क में आता है तब उसे उस समूह का एक भाग बनने में थोड़ा समय अवश्य लगता है, परन्तु कुछ ही सप्ताह में उसे उनमें इतना घुल-मिल जाना चाहिए कि वह अपने साथ के दूसरे लड़को से किसी ऐसी चीज के बारे में बात कर सके जिसमे उसे दिलचस्पी है, या बहस में हिस्सा ले सके।

बच्चा आगे चलकर किसी समूह के सामने आसानी के साथ और स्वाभाविक ढंग से बोल सकता है या उसे ऐसा करने मे संकोच होता है, यह इस पर निर्भर होता है कि उसके सबसे पहले शिक्षकों ने उसे किस हद तक इस काम मे प्रोत्साहित किया है। बहुत से ऐसे माता-पिता को जिनका स्कूल का जीवन ज्यादा गम्भीर और कठोर वातावरण में बीता है, जहाँ कक्षा मे खड़े होकर लड़कों को रटी हुई चीजें सुनानी पडती थीं, आजकल के स्कूलो की पहली कक्षाओं का अपेक्षतः

मुक्त और स्वच्छन्द वातावरण कुछ विचित्र-सा मालूम होता है। परन्तु इस प्रकार का वातावरण इस बात का सूचक है कि शिक्षक पुराने ढंग का और लड़कों पर धौंस जमाने वाला नहीं है।

अपने विचारों को अच्छी तरह व्यक्त करने की शिक्षा देने में माता-पिता बच्चों की बड़ी सहायता कर सकते हैं। बच्चे को जितनी ही अधिक चीजों का अनुभव होगा, उसका शब्द-भण्डार भी उतना ही विस्तृत होगा और अपने विचारों को शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता भी उसमें उतनी ही ज़्यादा होगी। यदि कोई व्यक्ति किसी सामाजिक समूह के सामने मौन साधे रहता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि उसे उस विषय पर कुछ कहना ही नहीं है। लेकिन वह बच्चा, और बच्चा ही क्यों बड़े लोग भी, जो जीवन में विभिन्न प्रकार की चीजों से सम्पर्क में आता है वह बहस में ज़्यादा आसानी से और ज्यादा पूरी तरह भाग ले सकता है।

अपने विचारों को कागज़ पर लिखकर व्यक्त करना सीखने से पहले बच्चे बहुधा अपने विचारों को ऐसी भाषा में व्यक्त करते हैं जो इतनी अछूती और कर्ण-प्रिय होती है कि बाद में बहुत प्रयास करने पर भी वह वैसी भाषा का प्रयोग करने में असमर्थ होते हैं। वे शिक्षक और माता-पिता जो समय निकालकर बच्चों की कहानियाँ या उनकी तुकबन्दियाँ या उनके अनुभवों का वर्णन उनके ही शब्दों में लिख लेते हैं, वे इन बच्चों को आगे चलकर अपने विचारों को कागज़ पर लिखकर व्यक्त करने में बहुत सहायता पहुँचाते हैं।

बच्चे का अपने विचारों को लिखकर व्यक्त करने का बहुत गहरा सम्बन्ध शब्दों की रचना से होता है अर्थात् किन अक्षरों को मिलाकर वे शब्द बनते हैं। जब बच्चे पत्र लिखने से या स्कूल में निबन्ध लिखने से घबराते हैं उसका एक कारण यह हो सकता है कि उनका ध्यान हमेशा उन शब्दों की ओर आकर्षित किया जाता है जिनको वे अशुद्ध लिखते हैं।

शब्दों को ठीक-ठीक लिखना सीखने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए हमको बच्चों की उन स्वाभाविक क्रियाओं का सहारा लेना चाहिए जो उनको शब्दों का प्रयोग करने पर बाध्य करती हैं। अपने किसी आयोजित तमाशे के लिए तख्तियाँ बनाते समय या किसी नाटक के लिए पोस्टर लिखते समय या उनके लिए टिकट बनाते समय बच्चे इस बात का बड़ा ध्यान रखते हैं कि कहीं कोई शब्द गलत न लिख दें। बच्चों को मनोरंजक ढंग से शब्दों से परिचित कराने के लिए माता-पिता को प्रतिदिन की स्वाभाविक घटनाओं तथा परिस्थितियों का प्रयोग करना

चाहिए। वे शब्द जिनका उच्चारण एक होते हुए भी अर्थ अलग-अलग होते हैं ऐसी पहेलियों और खेलों मे आधार बनाए जा सकते हैं जिनमें इन शब्दों के भिन्न अर्थ स्पष्ट हो जायँ।

शब्दों को शुद्ध रूप में लिखने के मामले में विभिन्न बच्चों की योग्यता मे बड़ा अन्तर होता है। साधारणतः तो यह मालूम होता है कि जो बच्चा ज्यादा पढ़ता है वह शब्दों को ठीक से लिखने में भी सफल होगा, परन्तु ऐसा होता नहीं। ऐसा बच्चा, सम्भव है, पुस्तक के विषय में इतना खोया रहता हो कि शब्दों को पूरे ध्यान से न देखता हो।

जो माता-पिता अपने बच्चों को शब्दो को सही रूप में लिखने का अभ्यास कराते हैं उनको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे जिस ढंग से बच्चों को सिखाएँ वह स्कूल मे प्रयोग किए जाने वाले ढंग से बहुत भिन्न न हो। उदाहरण के तौर पर बहुत से बड़े लोगो ने अपने शिक्षाकाल मे जिस ढंग से शब्दो का सही रूप पहचानना सीखा था आज उस ढंग का प्रयोग बहुत कम होता है; उसकी अपेक्षा टेढ़े और कठिन शब्दों के अक्षर याद कराने का अभ्यास कराया जाता है।

बहुत छोटी अवस्था से ही बच्चो को इसमें बहुत आनन्द आता है कि जो कुछ वे पढ़ते हैं या अनुभव करते हैं उसे नाटक के रूप मे करके दिखाएँ। किसी पात्र का अभिनय करते समय यदि बच्चा अपने-आपको उसी में लीन कर देता है तो वह बच्चे की झिझक दूर करने का बहुत अच्छा तरीका है। यह बच्चे की दबी हुई अभिलाषाओं को व्यक्त करने का एक रूप है और इससे बच्चे का व्यक्तित्व बनने और बढ़ने में बड़ी सहायता मिलती है। यह एक ऐसी चीज है जिसमें माता-पिता नाटक का सामान और तरह-तरह के पात्रों के अनुसार कपड़े जमाकर के बच्चों की बड़ी सहायता कर सकते हैं। पुराने बक्स जिनमें सड़े-पुराने बहुमूल्य कपड़े रखे जाते हैं, पुरानी टोपियाँ, परदे, पुराने कपड़े, और बेकार जेवर आदि चीजे उन बच्चों के लिए एक बहुमूल्य खजाना बन सकती हैं जिनको नाटक में रुचि होती है।

संगीत-सम्बन्धी अनुभव

बच्चे संगीत-कला कब सीख सकते हैं और उनको कब सीखनी चाहिए, यह एक ऐसी समस्या है जिसका निर्णय आयु के अतिरिक्त अन्य कई चीजों पर निर्भर होता है। इस विषय में न केवल बच्चों की शारीरिक तथा मानसिक परिपक्वता का ध्यान रखना पड़ता है बल्कि इसका भी कि उनको संगीत की कोई

विशेष योग्यता है या नहीं और उनको संगीत का इससे पहले क्या अनुभव रहा है। वह बच्चा जिसके परिवार के लोगों को संगीत से बड़ी रुचि है वह कोई विशेष क्षमता न रखते हुए भी एक ऐसे बच्चे की अपेक्षा ज्यादा आसानी से संगीत सीख सकता है जिसके घर में न कभी गाना गाया जाता था न कभी सुना जाता था। वह बच्चा, जिसे अपने स्नायुओं पर असाधारण रूप से काबू है, ऐसे बच्चे की अपेक्षा ज्यादा जल्दी कोई बाजा बजाना सीखना शुरू कर सकता है जिसके स्नायुओं का परस्पर सहयोग उसकी आयु की दृष्टि से कुछ बहुत अच्छा न हो। किसी बच्चे में संगीत की क्षमता चाहे जितनी अधिक या कम हो उसके संगीत सीखने पर इसका बहुत प्रभाव पड़ता है कि संगीत के प्रति उसका रवैया क्या है। यदि बहुत छोटी अवस्था में ही संगीत सीखने पर बाध्य किए जाने के कारण, या बहुत अधिक अभ्यास के कारण, या लगातार बड़ी देर तक अभ्यास करने के कारण उसे संगीत से घृणा-सी हो गई है तो उसकी प्रगति उतनी संतोषजनक नहीं होगी जितनी उस बच्चे की जिसका संगीत-सम्बन्धी सारा अनुभव बहुत आनन्दमय रहा है।

इस सम्बन्ध में यदि घर पर अच्छा संगीत सुनने का और साथ मिलकर गाने का अवसर मिलता रहे तो बहुत फायदा होता है। अच्छे संगीत को, लोक-संगीत को भी और पक्के गाने को भी, समझने और उससे आनन्द प्राप्त करने की शिक्षा प्राप्त करना उतना ही उपयोगी और संतोषप्रद अनुभव है जितना स्वयं संगीत की तानें बनाना, और वह एक ऐसा अनुभव है जो अपेक्षतः अधिक बच्चों को रुचिकर हो सकता है।

वे बच्चे भी जो शुरू में बहुत 'बेसुरे' मालूम होते हैं गाना सीख सकते हैं। सम्भव है कि कम अभ्यास मिलने के कारण शुरू की कक्षाओं में बहुत से बेसुरे बच्चे पाए जाते हैं। उन पर जबरदस्ती जोर डाले बिना और उनकी यह धारणा पैदा किए बगैर कि संगीत कोई बहुत विशेष काम है जिसे वे कर रहे हैं, बच्चों को जितनी कम अवस्था में धुनों को समझने का अभ्यास कराया जायगा आगे चलकर उनको घर पर भी और स्कूल में भी संगीत के अनुभव से उतना ही ज्यादा आनन्द आयगा।

बच्चों को बाजे बजाने का बड़ा शौक होता है। सिगरेट के डब्बों की डुग-डुगी, चिकरा, खँजड़ी, ढोलक आदि बाजे बड़ी आसानी से घर पर ही बन सकते हैं। परन्तु इन कामों में रुचि तभी पैदा हो सकती है जब इनको अत्यन्त रुचिकर ढंग से किया जाय।

बच्चे कौनसे बाजे बजाएँ ?

संगीत की शिक्षा आरंम्भ करते समय बच्चों के लिए कौनसा बाजा सबसे उपयुक्त होगा, इस विषय पर काफी वादविवाद हुआ है। कुछ बच्चे तीन या चार वर्ष की अवस्था से ही वायलिन या सितार आदि बजाना आरम्भ कर देते हैं और अपनी अपूर्व प्रतिभा से बच्चों की क्षमता के सम्बन्ध मे बनाये गए सब नियमों को गड़बड़ कर देते हैं। उनकी अपूर्व प्रतिभा के आधार पर कुछ माता-पिता यह समझ बैठते हैं कि इससे कोई अन्तर नहीं होता कि बच्चा किस बाजे पर संगीत सीखना शुरू करे, महत्त्व केवल इसका है कि वह बहुत छोटी अवस्था मे ही सीखना आरम्भ कर दे।

यदि हम इस समस्या पर थोड़ा सा विचार करे तो हमारी समझ मे आ जायगा कि बच्चे के शारीरिक विकास के बारे में हमे जो कुछ ज्ञान है उसके आधार पर यह धारणा सत्य नहीं है। बाँसुरी या वायलिन बजाने के लिए उँगलियों को बड़ी निपुणता से चलाना जरूरी होता है। इसलिए ऐसे बाजो को बजाने मे निपुणता प्राप्त करना तो दूर उनको प्रयोग करना भी अधिकाश बच्चो के बस के बाहर की बात होती है। केवल कुछ ही बच्चे, जिनमे विभिन्न स्नायुओं को घुमाने-फिराने मे काफी सहयोग पैदा हो गया हो, इनका प्रयोग कर सकते है। इसके अतिरिक्त यदि हम यह बात ध्यान में रखें कि सुरों की गलती पकड़ने के लिए बहुत सधे हुए कानों की जरूरत होती है, तो यह बात बड़ी आसानी से हमारी समझ मे आ जायगी कि छोटे बच्चों को गाना सिखाने के लिए पियानो को सबसे सफल माध्यम क्यों समझा जाता है।

यद्यपि दूसरे बाजों की तरह इसे 'अपने हाथ में' नही पकड़ा जा सकता, परन्तु पियानो के लिए इतनी ज्यादा बातों को जानने की जरूरत नहीं होती जितनी दूसरे बाजो के लिए होती है। गिनती के कुछ बच्चे, जिनमें स्वाभाविक रूप से संगीत की विशेष क्षमता होती है, वे परदेवाले (रीड) बाजो पर या तार वाले बाजों पर बहुत जल्दी प्रगति कर सकते हैं। परन्तु पियानो एक ऐसा बाजा है जो अधिकाश दूसरे बाजों की अपेक्षा बच्चे के स्नायुओं तथा मस्तिष्क के विकास के सबसे ज्यादा अनुकूल होता है क्योंकि इसमें सुर एक निश्चित क्रम से लगे होते हैं और इसको बजाने के लिए स्नायुओ को उतने नपे-तुले ढंग से हिलाना-डुलाना नहीं पड़ता।

संगीत सीखने का आधार संगीत के प्रति बच्चे की रुचि और संगीत

सिखाए जाने के ढंग पर इतना ज्यादा होता है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी बाजे को सीखना शुरू करने के लिए 'सबसे अच्छी' उम्र क्या होती है। ६ बरस की अवस्था से पहले सीखना शुरू करने से शायद कुछ ही बच्चों को लाभ हो सकता है।

कुछ बच्चों में ताल का ज्ञान तो होता है पर उनमें वह दूसरे गुण नहीं होते जो संगीत में निपुण होने के लिए जरूरी हैं। ऐसे बच्चे अपने-आप को व्यक्त करने के लिए नृत्य को ज्यादा अच्छा माध्यम बना सकते हैं।

जिस समय हम बच्चों को इस प्रकार के अवसर दें तो हमको यह न भूल जाना चाहिए कि हम उनको इसका भी काफी वक्त दें कि वे अपनी इच्छा के अनुसार भी बहुत से काम कर सकें। पाँच या छः घण्टे रोज के हिसाब से हफ्ते के छः दिन तक साल-भर स्कूल जाने के कारण बचपन का काफी समय बँधकर रह जाता है। स्कूल के बाद के वक्त को और छुट्टी के दिन को भी संगीत, नृत्य या नाटक आदि की शिक्षा में बाँधकर यदि हम बच्चे के लिए कोई समय ऐसा न छोड़ें जिसका वह अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग कर सके तो हम उसे एक ऐसी चीज से वंचित कर देंगे जिसकी पूर्ति किसी दूसरे 'लाभ' से नहीं हो सकती।

घर पर पढ़ने की समस्याएँ

यद्यपि आजकल अधिकांश शिक्षक घर के लिए काम देने पर इतना जोर नहीं देते जितना एक जमाने में दिया जाता था फिर भी बहुत से स्कूलों में अब भी स्कूल के बाद घर पर करने के लिए काम दिया जाता है। यदि ऐसा है तो घर पर पढ़ने का समय और परिस्थितियाँ इस प्रकार नियमित कर देनी चाहिएँ कि बच्चों को इससे घृणा न होने लगे। अच्छा तो यह है कि घर का काम ऐसा हो जिसे बच्चा स्वयं अपनी इच्छा से करे, वह ऐसा काम हो जिसे बच्चा अधिक जानकारी प्राप्त करने की रुचि के आधीन स्वयं खुशी से करे जैसे स्कूल में जो विषय पढ़ाया जा रहा है उसके सम्बन्ध में चित्र या ऐसी दूसरी चीजें जमा करना जिससे उस विषय पर ज्यादा रोशनी पड़ सके। घर का काम ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा वह अपनी विशेष रुचियों को व्यक्त कर सके और उसे अपने विशेष गुणों का प्रमाण देने का अवसर मिल सके। कोई बच्चा नक्शा बनाने में बड़ी खुशी से घण्टों वक्त खर्च कर सकता है; कोई लड़की अपनी कापी में रंग-बिरंगे चित्र बनाकर रंगों के प्रति अपनी रुचि और प्रेम का प्रमाण देती है।

दुर्भाग्यवश, घर पर करने के लिए जो काम दिया जाता है वह बिलकुल

एक पुराने बँधे हुए ढर्रे के अनुसार होता है—इतने सवाल लगाकर ले आना, और इतने शब्दों को शुद्ध रूप मे लिखकर ले आना। ऐसी दशा मे घर के काम को रोचक बनाने मे माता-पिता की बुद्धि बिलकुल भी काम नहीं देती।

कई घण्टे स्कूल में बँधे रहने के बाद बच्चों को इसकी जरूरत होती है कि उनको खुले मैदानो में क्रियाशील खेलो में भाग लेने के लिए समय मिले। इसलिए घर पर पढ़ने का समय स्कूल के फौरन बाद नहीं होना चाहिए। खाना खाने से पहले या खाना खाने के फौरन बाद का समय पढ़ने के लिए अच्छा होगा। अधिकाश बच्चे सोने से पहले थोड़ी देर आराम करना चाहते है, इसलिए घर पर पढ़ने का काम सोने से फौरन पहले तक के लिए उठा रखना अनुचित है। घर पर पढ़ने के लिए ऐसा वातावरण होना चाहिए कि बच्चे का ध्यान इधर-उधर न भटके और उसे बीच-बीच में विघ्न न पड़े। एक आरामदेह कुरसी, एक मेज जहाँ रोशनी का अच्छा प्रबन्ध हो, पढ़ने के लिए जरूरी चीजें है। कुछ बच्चे वहाँ बैठकर पढ़ना पसन्द करते हैं जहाँ परिवार के दूसरे लोग बैठे हों, परन्तु यदि वे अलग कमरे में पढ़ें तो वह अपना ध्यान भी पढ़ने में जल्दी लगा सकेंगे और उनका काम भी जल्दी खत्म हो जायगा। यदि वे रोज रात को एक ही स्थान पर पढें तो वे ज्यादा काम कर सकते हैं क्योंकि उनको हर बार एक नई परिस्थिति को अपनी सुविधा के अनुकूल बनाने में समय बरबाद नहीं करना पड़ेगा। कभी-कभी वे बच्चे जो अपने माता-पिता की अकेली सन्तान होते हैं स्कूल मे उन बच्चों की अपेक्षा ज्यादा अच्छे विद्यार्थी होते हैं जिनके कई भाई-बहन होते हैं। शायद इसका कारण यह हो कि वे घर पर निर्विघ्न पढ़ सकते हैं। इसके विपरीत हममे से बहुत से ऐसे लोग होंगे जिनकी कई भाई-बहनो के साथ बचपन मे पढ़ने की स्मृतियाँ बहुत सुखद होंगी।

बहुधा यह भी होता है कि बच्चा दो ऐसे कामों के बीच मे जिनमें उसे रुचि हो—जैसे रेडियो के दो कार्यक्रमों के बीच मे—अपना काम बड़ी फुर्ती से पूरा कर लेता है। इससे यह भी लाभ होता है कि बच्चे को समय बरबाद करने के लिए प्रोत्साहन नहीं मिलता। अक्सर ऐसा होता है कि बच्चे यह समझते है कि वे पढ़ रहे हैं जबकि वे केवल शब्दों को बगैर समझे ही बार-बार दोहराते रहते हैं।

क्योंकि बहुत से बड़े लोग यह समझते हैं कि बच्चों को घर के लिए काम देना उचित है इसलिए कुछ ऐसी बातों का ज्ञान लेना आवश्यक है जो शिक्षा-विशेषज्ञों ने पता लगाई हैं :

१. वे बच्चे जो घर पर पढ़ने में बहुत ज्यादा समय व्यतीत करते हैं वे बहुधा दूसरे लड़कों की अपेक्षा बहुत ज्यादा तेज नहीं होते या उतने ही तेज होते हैं। एक मन्द बुद्धि बालक, जो अपनी पढ़ाई का बहुत ध्यान रखता है, घर पर यदि सारा समय भी पढ़ता रहे तो भी वह केवल इसी कारण स्कूल में ज्यादा अच्छा विद्यार्थी नहीं बन सकता।

२. बहुत से शिक्षकों का विचार है कि घर के काम के द्वारा लड़के को अच्छे नम्बर पाने में कोई ज्यादा सहायता नहीं मिलती। जो माता-पिता स्कूल में अपने बच्चे की सफलता के बहुत इच्छुक रहते हैं उनको इस बात का ध्यान रखना चाहिए।

३. परन्तु इसके साथ ही लाभ की दृष्टि से देखा जाय तो वह बच्चा, जिसने छोटी कक्षाओं में घर पर पढ़ने की आदत डाल ली है, आगे की कक्षाओं में पहुँचकर, हाई स्कूल आदि की कक्षाओं के लगभग, उससे लाभ उठा सकता है, क्योंकि उस समय घर पर पढ़ना जरूरी हो जाता है।

४. कई मौके ऐसे होते हैं जब माता-पिता को घर पर पढ़ने के सम्बन्ध में बच्चों की सहायता करनी चाहिए। इस प्रकार वे अपने बच्चों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध भी स्थापित कर सकते हैं। स्कूलों पर इस बात का उत्तरदायित्व है कि वे बच्चों के माता-पिता को बताएँ कि वे किस बात में और किस प्रकार सहायता कर सकते हैं। यदि माता-पिता इसमें दिलचस्पी दिखाएँ कि उनके बच्चे क्या कर रहे हैं तो बच्चों का रवैया भी पढ़ने की ओर बहुत अच्छा हो जाता है।

स्कूल के बाद घर पर पढ़ना छोटे बच्चों के लिए उसी समय लाभदायक होता है जब वे बिना किसी दबाव के, स्वाभाविक रूप से और ज्ञान बढ़ाने के प्रति अपनी रुचि के आधीन ऐसा करते हैं। यदि कोई बच्चा देश-भर की विभिन्न रेलवे लाइनों के नक्शे जमा करता है और अपने पिता से यह मालूम करता है कि अलग-अलग रेलें क्यों बनाई गईं, कौन-कौनसी रेलवे लाइनें कब-कब बनाई गईं आदि, तो उसे अपने देश के इतिहास का, प्राकृतिक सम्पत्ति का, व्यापार का, नदियों तथा पहाड़ों आदि का ज्ञान होता है तथा यह मालूम होता है कि कौनसे लोग दूसरे देशों से आकर किस जमाने में कहाँ आबाद हुए। परन्तु यदि बच्चा स्वयं अपनी रुचि से इस काम को आरम्भ करे तभी इसका कुछ महत्त्व हो सकता है।

अपने समय का उचित उपयोग करने में उसके घर वाले बच्चे की बड़ी

सहायता कर सकते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि बच्चों को जबरदस्ती आगे ढकेला जाय, उनको हर समय कोंचा जाय और उनको एक क्षण की भी फुरसत न दी जाय। इसका अर्थ यह होता है कि बच्चों को इस बात का अवसर दिया जाय कि वे अपने खाली समय को उपयोगी ढंग से व्यतीत कर सकें। जैसे पुस्तकें, चित्र, दूसरा सामान आदि इनको दिया जाय और सबसे बढ़कर तो यह कि उनको एक ऐसा वातावरण मिले जो उत्साहजनक हो और जिसमें उनके विचार पनप सकें।

बच्चों के बारे में बहस करते समय हम बार-बार इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि बच्चों को अच्छी तरह जानना कितना जरूरी है। और चूँकि बच्चों के जीवन का बहुत बड़ा भाग स्कूल में बीतता है इसलिए माता-पिता को बच्चे के स्कूल से भी परिचित होना जरूरी है। माता-पिता और स्कूल दोनों को एक दूसरे का हाथ बँटाना चाहिए। बहुधा ऐसा होता है कि माता-पिता केवल चुप रहकर ही हाथ बटाते हैं और यदि वे चुप नहीं रहते हैं तो शिकायतें करते हैं। वे आखिर रचनात्मक सहयोग क्यों नहीं करते? उदाहरण के लिए यदि स्कूल में दोपहर के समय लड़कों को गरम खाना देने की योजना, या स्कूल के पाठ्य-विषयों में परिवार के जीवन के बारे में भी शिक्षा देने की योजना में यदि माता-पिता सहयोग दें तो समाज के दूसरे लोग भी आगे बढ़कर सहायता करते हैं।

प्रतिदिन की समस्याएँ



यदि बच्चे के व्यवहार में कोई अनोखी बात दिखाई दे तो उसका कारण मालूम करने से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि बच्चे के जीवन में उस व्यवहार से पहले कोई ऐसी बात तो नहीं हुई जिससे उसका व्यवहार बदल गया हो। वह बच्चा किन विशेष परिस्थितियों में रहा है? जिन बड़े लोगों के बीच में वह रहा है वे किस प्रकार के थे? उसके साथ क्या-क्या घटनाएँ हुई हैं?

यह ज़रूरी नहीं है कि बच्चे के व्यवहार में जब भी हम कोई ऐसी बात देखें जो हमारी समझ में न आए तो हम फौरन 'उसे दूर करने का उपाय' ढूँढने लगें। बहुधा ऐसा होता है कि जो समस्याएँ बहुत जटिल मालूम होती हैं वे समय के साथ-साथ और बच्चे के बड़े होने के साथ-साथ दूर होती जाती हैं। जिस प्रकार छोटे बच्चों के जीवन में एक ऐसी 'अवस्था' आती है जब उनका स्वभाव बहुत क्रोधी हो जाता है, वही दशा उसके व्यवहार में सहसा आने वाले अन्य परिवर्तनों की भी होती है। वे वर्षा के बादल की तरह सहसा मूसलाधार बरसने लगते हैं और फिर उतनी ही जल्दी छँट जाते है।

लेकिन बच्चे के व्यवहार की हर खराबी को यह कहकर टाल देना मूर्खता होगी कि "अरे, उम्र ही उसकी यह सब करने की है", या "बड़ा हो जायगा तो ठीक हो जायगा।" परन्तु ऐसे मामलों में फौरन चिन्तित होकर एक हंगामा खड़ा कर देने के बजाय यदि हम धीरज से काम लें तो हम बहुत सी परेशानियों से बिलकुल बच जायेंगे।

बदलती हुई अवस्थाएं

बच्चे के जीवन में एक अवस्था वह आती है जब वह बिना बात मार बैठता है, या जब उसे तरकारियों से अरुचि हो जाती है; या ऐसा समय आता है जब खाना खाते समय वह सारी तमीज भूल जाता है और बिलकुल जङ्गलियों की तरह व्यवहार करने लगता है जबकि उसे दिन-ब-दिन ज्यादा तमीज़दार बनना चाहिए; या कभी-कभी उसके दिमाग पर किसी ऐसी चीज़ का भूत सवार हो जाता है कि उसका व्यवहार हमको पागल बना देता है।

बच्चों के व्यवहार में इस प्रकार के जो अल्पकालीन परिवर्तन आते हैं उनका क्या अर्थ होता है, इसके बारे में हम कुछ भी नहीं जानते। परन्तु हमको

उनमें और उनके व्यवहार में अन्तर करना सीखना चाहिए, क्योंकि जिस चीज की ओर वास्तव में हमें ध्यान देना चाहिए वह है उनका व्यवहार।

जब कोई १० बरस का बच्चा अपने हाथ की गन्दगी की कोई परवाह नहीं करता तो क्या इसका अर्थ यह है कि वह कभी साफ रहना सीखेगा ही नहीं? क्यों नहीं सीखेगा! लेकिन यह कैसे मालूम किया जाय कि कौनसी चीज महत्त्व रखती है और कौनसी नहीं? यदि मीरा अपनी उम्र के दूसरे बच्चों से बहुत ज्यादा लम्बी है और इस कारण वह बहुत झेंपती है, तो क्या वह हमेशा झेंपती ही रहेगी या जब उसके साथ ही दूसरी लड़कियाँ भी तेजी से बढ़ने लगेंगी तो उसकी झेंप दूर हो जायगी? हाथों को साफ रखने की समस्या तो समय के साथ स्वयं हल हो जायगी परन्तु लम्बा होना और उसके कारण झेंपना इतनी आसानी से दूर नहीं हो सकता। परन्तु कभी कभी ऐसा भी होता है कि बच्चे के विचित्र व्यवहार से उसकी वास्तविक कठिनाई का पता चल सकता है। कभी-कभी इस विचित्र व्यवहार का कारण ढूँढने में हम किसी ऐसी खराबी का पता लगा लेते हैं जिसके लिए किसी विशेषज्ञ के परामर्श की जरूरत होती है। यदि बच्चे के व्यवहार में कोई ऐसी नई बात दिखाई दे जो उसके साधारण व्यवहार से भिन्न होने के कारण हमें चिन्तित करे, बच्चे पर नजर रखने के साथ ही हमको अपने-आप से यह प्रश्न करना चाहिए, "क्या यह महत्त्वहीन बात है जो कुछ दिनों बाद अपने आप खत्म हो जायगी और इस विषय में कोई खास कदम उठाने की जरूरत नहीं? या यह व्यवहार किसी गुप्त कठिनाई का बाह्य रूप है, किसी ऐसी चीज के प्रति बच्चे की प्रतिक्रिया है जो उसे परेशान कर रही है और उसके विकास को रोक रही है?" यदि उसके साथ रहने वाले दूसरे लोगों तथा उसकी परिस्थितियों की दृष्टि में उसे देखने पर भी कुछ पता न चले तो किसी विशेषज्ञ से परामर्श करना चाहिए।

जब बच्चे बाहर से 'गालिया' सीखकर आते हैं या अन्य अश्लील बातें सीखते हैं तो प्रायः सभी माता-पिता चौंक उठते हैं। एक क्षण के लिए तो हम अपनी तर्क-शक्ति बिलकुल ही खो देते हैं, क्योंकि हमारे अबोध बालक की जबान अश्लील शब्द के स्पर्श से अपवित्र हो गई है। हम यह भूल जाते हैं कि यदि बच्चा रोज़-रोज़ इस प्रकार की भाषा के सम्पर्क में न आए, या उसका ध्यान उसकी ओर इतना न आकर्षित कराया जाय कि वह समझने लगे कि वह कोई बहुत ही अनोखी बात कर रहा है—जैसे गाली बकने पर उससे मुँह धोने के लिए कहकर

या इसी प्रकार की किसी और मूर्खतापूर्ण बात के द्वारा—तो वह हमेशा ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करेगा। वह गालियों को भी उसी प्रकार प्रयोग करता है जैसे वह किसी दूसरी नई चीज को करता है। या शायद वह ऐसा इसलिए करता है कि वह पूरी तरह अपने 'गिरोह' का एक 'अंग' बनकर रहना चाहता है। यदि हम उसकी इस हरकत पर उत्तेजित होकर एक फसाद न खड़ा कर दें तो कुछ दिन में इस बात का नयापन खत्म हो जायगा और बच्चा इस भाषा को भूल जायगा।

यदि हम इस पर आगबबूला हो जायें और बच्चे पर यह जताएँ कि हमको उसकी इस बात से बड़ा क्षोभ हुआ है तो हम केवल उसमें यह सतर्कता जाग्रत करने मे सफल होंगे कि वह उस भाषा का प्रयोग हमारे सामने न करे। यदि हम उस लड़के के साथ उसका खेलना बन्द करवा दें जिससे उसने यह गालियाँ सीखी हैं, तो हम केवल समस्या को निषेधात्मक रूप मे हल कर देंगे; उस दूसरे बच्चे के जीवन पर इसका कोई रचनात्मक प्रभाव नहीं पड़ेगा।

उद्दण्डता और ढिठाई का जमाना

बच्चों के जीवन में एक ऐसी अवस्था आती है, जो प्रायः सभी बच्चों के जीवन मे आती है, जब उनके व्यवहार से माता-पिता को बहुत चिन्ता होती है; वह है उनका उद्दण्ड और उच्छृंखल व्यवहार जिसके द्वारा छोटे-छोटे बच्चे स्कूल जाना आरम्भ करने के बाद अपनी स्वतन्त्रता स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। क्योंकि इस अवस्था मे अपनी उम्र से बड़े लड़कों से उनका 'पाला पड़ता है' जो अनुभवहीनता की इस अवस्था से गुजर चुके होते हैं, इसलिए ये छोटे बच्चे अपने छोटेपन की कमी को ढिठाई के द्वारा और बल का प्रयोग करके पूरा करने की चेष्टा करते हैं। कुछ बच्चे जो इस परिस्थिति का सामना नहीं कर पाते और बिलकुल भयभीत हो जाते हैं। वे 'रोने बच्चे' या 'माँ का दूध पीने वाले बच्चे' कहलाने लगते हैं। इस समस्या से डर जाने की अपेक्षा बच्चे के लिए यह ज्यादा स्वस्थ व्यवहार है कि वह डटकर सामना करे और स्वयं पहले आक्रमण करे।

परन्तु अपने छोटे से प्यारे बच्चे को सहसा 'शेर' बनते देखकर माताओं को प्रायः बहुत कष्ट होता है। जब बच्चा जोर-जोर से चीखता-चिल्लाता घर मे प्रवेश करता है, डपट कर किसी चीज की माँग करता है, जोर-जोर से पाँव पटककर चलता है और उसकी सूरत बिलकुल सड़क के आवारा छोकरों की-सी होती है, तब माँ सोचने लगती है कि उसे सुधारने के लिए कुछ करना चाहिए। बजाय खुश होने के कि उसका बच्चा सामने आने वाली समस्याओं का डटकर मुकाबला

कर सकता है, वह उसको डॉटती-फटकारती है। अपने बच्चे को मुक्केबाजी करते देखकर उसे अपने भाग्य को सराहना चाहिए, क्योंकि इसी के द्वारा वह आगे चलकर अपने साहस का प्रमाण देने में सफल होगा। जो बच्चे अपने माता-पिता के कहने पर लड़ाई-झगड़े से दूर रहते हैं वे जीवन-भर अपनी इस भूल पर पछताते हैं। क्या साहस का प्रमाण देने का कोई और उपाय नहीं है? सम्भव है, हो, पर किसी लड़के से कहकर देखिए और उसे मना लीजिए!

छोटी लड़कियों को इस प्रकार अपनी साख जमाने की आवश्यकता नहीं होती; उनकी शक्ति दूसरी ही चीजों मे प्रदर्शित होती है। अपने स्कूल के साथियों की प्रशंसा प्राप्त करने के लिए हर बच्चे के लिए यह जरूरी होता है कि वह किसी-न-किसी काम मे प्रमुख हो। जो लड़का बहुत हृष्ट-पुष्ट होगा वह एक दुर्बल शरीर वाले लड़के की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होगा। इसी प्रकार लड़कियाँ किसी कला मे निपुणता के द्वारा, या अच्छे नम्बर पाकर, या सुन्दर कपड़ों के द्वारा अपने साथियों की प्रशंसा प्राप्त कर सकती हैं। लड़कियों के बचपन मे एक समय ऐसा भी आता है जब वे ऐसी लड़कियों के साथ मित्रता करना चाहती हैं जिनको सब अच्छा समझते हैं तथा जो लड़कियाँ प्रशंसित समूह में से होती हैं उनकी 'सबसे घनिष्ठ सहेली' होने के लिए उनमें आपस में ईर्ष्या और जलन भी होती है। इस प्रवृत्ति का कारण भी वही होता है जिसके कारण बच्चे एक-दूसरे की नाक तोड देते हैं या मारपीट मे एक-दूसरे के कपड़े फाड़ डालते हैं, पर लड़कियों में यह प्रवृत्ति इतने नग्न और चिन्ताजनक रूप मे देखने मे नहीं आती।

छेड़-छाड़ और लड़ाई-झगड़ा

माताएँ अपनी सबसे बड़ी परेशानियों का जिक्र करते समय आखिर बच्चों की आपस की छेड़-छाड और उनके लड़ाई-झगडों का जिक्र सबसे ज्यादा क्यों करती हैं? यह बात कि हमको इनसे बडी झुँझलाहट होती है क्या इसका उतना ही बड़ा कारण नहीं है जितना यह कि हमको इस बात की बडी चिन्ता रहती है कि इनका बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

यदि हम यह समझ ले कि यह एक ऐसा वरदान है जिससे माँ-बाप के इकलौते बच्चे वंचित रह जाते है, तो हम इनका वास्तविक महत्त्व समझने के बहुत निकट पहुँच जायँगे। क्योंकि अधिकांश छेड़-छाड़ और लड़ाई-झगड़े बच्चों के एक दूसरे के साथ मिल-जुलकर रहना सीखने के भोंडे और कोलाहलमय प्रयत्न-मात्र होते हैं। भाइयो और बहनों के साथ यह अभ्यास सबसे ज्यादा सुविधा से

साथ प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार का व्यवहार कई कारणों से हो सकता है।

अवस्थाओं का अन्तर बच्चों के बहुत से लड़ाई-झगड़ों का कारण होता है। ४ और ७ बरस के बच्चों में या ७ और १२ बरस के बच्चों में बहुत कम बातें मेल खाती हैं। चार बरस का बच्चा सात बरस के बच्चे की बहुमूल्य बिजली की रेलगाड़ी से खेलना चाहता है। बारह बरस का बच्चा उन 'मूर्खतापूर्ण' मजाकों को सहन नहीं कर सकता जो आठ बरस का बच्चा निरन्तर करता रहता है।

यदि बच्चों को यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाय कि किन-किन चीज़ों में वह हिस्सा बँटा सकते हैं और कौनसी चीज़ें पूर्णतः उनकी हैं, तो लड़ाई-झगड़े बहुत कम हो सकते हैं। यदि सम्भव हो और आसानी से प्राप्य हो तो बच्चों के लिए काफी जगह का होना भी बहुत लाभदायक हो सकता है। ऐसा प्रबन्ध करने में थोड़ी कठिनाई तो होगी कि दो बहुत भिन्न रुचियों वाले बच्चों को या दो ऐसे बच्चों को जिनकी अवस्था में बहुत अन्तर हो, एक ही कमरे में न रखा जाय, पर यदि ऐसा हो सके तो बड़ा अच्छा है। यदि एक कमरे में रखना ही पड़े तो ऐसी व्यवस्था कर दी जाय कि उनके सोने का समय भिन्न हो तथा उनकी आलमारियाँ अलग-अलग हों या एक ही अलमारी में उनके खाने अलग-अलग हों। बच्चों को इस बात का अवसर देने से, कि वे अपनी जगह का उपयोग अपने फैसले के अनुसार करें, उनको यह संतोष रहता है कि एक ऐसी समस्या को हल करने में जिसका उनके साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है उनकी 'राय' भी ली गई है।

क्या आपके बच्चे एक-दूसरे के साथ बहुत समय व्यतीत करते हैं। कुछ परिवारों में बच्चों से एक दूसरे के साथ जरूरत से ज्यादा समय बिताने की आशा रखी जाती है। इस दशा में भाई-बहन एक-दूसरे को इतनी अच्छी तरह जानने लगते हैं कि जब तक बाहर का कोई बच्चा न आ जाय उनको आपस में खेलने में न कोई नयापन मालूम होता है और न कोई उत्साह ही बाकी रह जाता है। यदि हम अपनी याद पर जोर दें तो हमें ध्यान आयगा कि १० बरस की उम्र में भी हमारे लिए हमारे मित्र कितना महत्त्व रखते थे। जो परिवार भाई-बहनों की आपस की छेड़-छाड़ और लड़ाई-झगड़े को खत्म करना चाहते हैं वे दूसरे बच्चों को अपने यहाँ बुलाते हैं और अपने बच्चों को दूसरे बच्चों के घर जाने पर प्रोत्साहित करते हैं।

लड़कों और लड़कियों की रुचियों के अन्तर के कारण भी बहुत से झगड़े

होते हैं। परन्तु यह भी बहुत आवश्यक होता है कि लड़के और लड़कियाँ बचपन में ही एक-दूसरे की रुचियों और पसन्दों के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लें। बचपन में ऐसी बातों की संख्या जिनपर वे आपस मे सहमत होते हैं उनसे अधिक होती है जिन पर वे सहमत नहीं होते। और हमको यह आशा रखनी चाहिए कि यही बात आगे चलकर बड़े होने पर भी उनके आपस के सम्बन्ध मे बाकी रहेगी। हमको यह न भूल जाना चाहिए कि बच्चों की जिस उम्र का हम अध्ययन कर रहे हैं, यही वह अवस्था होती है जब लड़के और लड़कियाँ आपस में घुलना-मिलना पसन्द नहीं करते। ६ या १० बरस की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते लड़कों और लड़कियों में एक-दूसरे के प्रति वह सहज स्वीकृति नहीं रह जाती जो बहुत बचपन मे होती है। शायद प्रकृति इस प्रकार इस बात की नींव डालती है कि किशोरावस्था में पहुँचकर उनमें फिर एक-दूसरे के प्रति एक नये प्रकार का आकर्षण पैदा हो। इसका कारण चाहे कुछ भी हो पर एक समय ऐसा आता है जब लड़के लड़कियों को देखकर और लड़कियाँ लड़कों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। आंशिक रूप से यह इस बात का भी प्रयत्न होता है कि वे एक-दूसरे पर अपने लड़की होने का या लड़के होने का रोब जमाएँ, क्योंकि वे लड़के और लड़कियाँ जिनके इस प्राकृतिक अन्तर को भिन्न व्यवहार और शिक्षा के द्वारा बहुत बढ़ा-चढ़ाकर नहीं पेश किया गया है, वे एक-दूसरे के साथ बड़े मजे से खेलते-कूदते हैं, बशर्ते उनकी रुचियाँ समान हों। लेकिन हम चाहे जितनी भी कोशिश करें पर हम १० बरस के लड़के में यह प्रवृत्ति नहीं पैदा कर सकते कि वह लड़कियों के साथ मेलजोल बढ़ाना पसन्द करे। वह कभी नहीं चाहेगा कि उसकी वर्षगांठ की दावत में लड़कियाँ भी आएँ।

भाई और बहन आपस मे लड़ते हैं और एक-दूसरे के बाल नोचते हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। यदि वे अपनी सारी ईर्ष्या और बुरी भावनाएँ अपने दिल में ही दबाकर रखें तो हमको यह पता भी नहीं चल सकता कि उनमें यह भावनाएँ कभी थीं भी। इस प्रकार के लड़ाई-झगड़ो मे हमको यह जानने का एक अवसर मिलता है कि बच्चे को कौनसी चीज परेशान कर रही है। जब छेड़खानी एकतरफा होती है तब हमको गौर से सोचना चाहिए। यदि अरुण अपने छोटे भाई को छेड़ती है तो क्या इसका कारण यह तो नहीं है कि उस परिवार में पहले लड़कियाँ ज्यादा थीं और लड़के के जन्म पर परिवार वालों ने बड़ी धूमधाम से खुशियाँ मनाई थीं?

साथ प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार का व्यवहार कई कारणों से हो सकता है।

अवस्थाओं का अन्तर बच्चों के बहुत से लड़ाई-झगड़ों का कारण होता है। ४ और ७ बरस के बच्चों में या ७ और १२ बरस के बच्चों में बहुत कम बातें मेल खाती हैं। चार बरस का बच्चा सात बरस के बच्चे की बहुमूल्य बिजली की रेलगाड़ी से खेलना चाहता है। बारह बरस का बच्चा उन 'मूर्खतापूर्ण' मजाकों को सहन नहीं कर सकता जो आठ बरस का बच्चा निरन्तर करता रहता है।

यदि बच्चों को यह बात अच्छी तरह समझ में आ जाय कि किन-किन चीजों में वह हिस्सा बँटा सकते हैं और कौनसी चीजें पूर्णतः उनकी हैं, तो लड़ाई-झगड़े बहुत कम हो सकते हैं। यदि सम्भव हो और आसानी से प्राप्य हो तो बच्चों के लिए काफी जगह का होना भी बहुत लाभदायक हो सकता है। ऐसा प्रबन्ध करने में थोड़ी कठिनाई तो होगी कि दो बहुत भिन्न रुचियों वाले बच्चों को या दो ऐसे बच्चों को जिनकी अवस्था में बहुत अन्तर हो, एक ही कमरे में न रखा जाय, पर यदि ऐसा हो सके तो बड़ा अच्छा है। यदि एक कमरे में रखना ही पड़े तो ऐसी व्यवस्था कर दी जाय कि उनके सोने का समय भिन्न हो तथा उनकी आलमारियाँ अलग-अलग हों या एक ही अलमारी में उनके खाने अलग-अलग हों। बच्चों को इस बात का अवसर देने से, कि वे अपनी जगह का उपयोग अपने फैसले के अनुसार करें, उनको यह संतोष रहता है कि एक ऐसी समस्या को हल करने में जिसका उनके साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है उनकी 'राय' भी ली गई है।

क्या आपके बच्चे एक-दूसरे के साथ बहुत समय व्यतीत करते हैं। कुछ परिवारों में बच्चों से एक दूसरे के साथ जरूरत से ज्यादा समय बिताने की आशा रखी जाती है। इस दशा में भाई-बहन एक-दूसरे को इतनी अच्छी तरह जानने लगते हैं कि जब तक बाहर का कोई बच्चा न आ जाय उनको आपस में खेलने में न कोई नयापन मालूम होता है और न कोई उत्साह ही बाकी रह जाता है। यदि हम अपनी याद पर जोर दें तो हमें ध्यान आयगा कि १० बरस की उम्र में भी हमारे लिए हमारे मित्र कितना महत्त्व रखते थे। जो परिवार भाई-बहनों की आपस की छेड़-छाड़ और लड़ाई-झगड़े को खत्म करना चाहते हैं वे दूसरे बच्चों को अपने यहाँ बुलाते हैं और अपने बच्चों को दूसरे बच्चों के घर जाने पर प्रोत्साहित करते हैं।

लड़कों और लड़कियों की रुचियों के अन्तर के कारण भी बहुत से झगड़े

होते हैं। परन्तु यह भी बहुत आवश्यक होता है कि लड़के और लड़कियाँ बचपन में ही एक-दूसरे की रुचियों और पसन्दों के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लें। बचपन में ऐसी बातों की संख्या जिनपर वे आपस में सहमत होते हैं उनसे अधिक होती है जिन पर वे सहमत नहीं होते। और हमको यह आशा रखनी चाहिए कि यही बात आगे चलकर बड़े होने पर भी उनके आपस के सम्बन्ध में बाकी रहेगी। हमको यह न भूल जाना चाहिए कि बच्चों की जिस उम्र का हम अध्ययन कर रहे हैं, यही वह अवस्था होती है जब लड़के और लड़कियाँ आपस में घुलना-मिलना पसन्द नहीं करते। ९ या १० बरस की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते लड़कों और लड़कियों में एक-दूसरे के प्रति वह सहज स्वीकृति नहीं रह जाती जो बहुत बचपन में होती है। शायद प्रकृति इस प्रकार इस बात की नींव डालती है कि किशोरावस्था में पहुँचकर उनमें फिर एक-दूसरे के प्रति एक नये प्रकार का आकर्षण पैदा हो। इसका कारण चाहे कुछ भी हो पर एक समय ऐसा आता है जब लड़के लड़कियों को देखकर और लड़कियाँ लड़कों को देखकर नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। आंशिक रूप से यह इस बात का भी प्रयत्न होता है कि वे एक-दूसरे पर अपने लड़की होने का या लड़के होने का रोब जमाएँ, क्योंकि वे लड़के और लड़कियाँ जिनके इस प्राकृतिक अन्तर को भिन्न व्यवहार और शिक्षा के द्वारा बहुत बढ़ा-चढ़ाकर नहीं पेश किया गया है, वे एक-दूसरे के साथ बड़े मजे से खेलते-कूदते हैं, बशर्ते उनकी रुचियाँ समान हों। लेकिन हम चाहे जितनी भी कोशिश करें पर हम १० बरस के लड़के में यह प्रवृत्ति नहीं पैदा कर सकते कि वह लड़कियों के साथ मेलजोल बढ़ाना पसन्द करे। वह कभी नहीं चाहेगा कि उसकी वर्षगाँठ की दावत में लड़कियाँ भी आएँ।

भाई और बहन आपस में लड़ते हैं और एक-दूसरे के बाल नोचते हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। यदि वे अपनी सारी ईर्ष्या और बुरी भावनाएँ अपने दिल में ही दबाकर रखें तो हमको यह पता भी नहीं चल सकता कि उनमें यह भावनाएँ कभी थीं भी। इस प्रकार के लड़ाई-झगड़ों से हमको यह जानने का एक अवसर मिलता है कि बच्चे को कौनसी चीज परेशान कर रही है। जब छेड़खानी एकतरफा होती है तब हमको गौर से सोचना चाहिए। यदि अरुणा अपने छोटे भाई को छेड़ती है तो क्या इसका कारण यह तो नहीं है कि उस परिवार में पहले लड़कियाँ ज्यादा थीं और लड़के के जन्म पर परिवार वालों ने बड़ी धूमधाम से खुशियाँ मनाई थीं ?

यदि हमको इसका पता चल जाय कि हम अकारण और अनुचित छेड़खानी का कारण क्या है तो हम उन कारणों को ही दूर करने का उपाय कर सकते हैं। इस सम्बन्ध मे यदि हम स्वयं अपने व्यवहार को जॉचे तो बहुधा हमको यह मालूम होगा कि हम हर बच्चे की विशेष और भिन्न-भिन्न जरूरतों पर काफी ध्यान नहीं देते रहे हैं। शायद यह बात कभी हमारे ध्यान मे भी नहीं आई कि वीणा को ११ बरस की उम्र में उससे कहीं ज्यादा सुविधाएँ प्राप्त हैं जितनी इसी अवस्था मे लतिका को प्राप्त थीं, जो इस समय १३ बरस की है।

क्या कभी हमने यह विचार किया कि खाने से पहले गोपाल के उतावलेपन का कारण यह भी हो सकता है कि उसे जरूरत से ज्यादा उकसाया जा चुका है (पास-पड़ोस के जिन बच्चो के साथ वह खेलता हैं वे सब उम्र मे उससे बड़े हैं) और वह इतना थक चुका है कि जरा-सी चूँ करने पर ही वह अपनी छोटी बहन पर झपट पड़ता है? सम्भव है कि अपने से बड़े लडकों से उसे इतना दब कर भीगी बिल्ली बनकर रहना पड़ता है कि पहला अवसर पाते ही वह अपनी खिसियाहट किसी दूसरे पर उतारकर संतोष प्राप्त करता है।

यह कोई नहीं बता सकता कि किस हद तक छेड़-छाड और लडाई झगड़े को स्वाभाविक समझकर टाल जाना चाहिए। परन्तु शायद यह बात बिलकुल सच है कि यदि हम इन झगड़ों को सुनकर उससे अधिक हद तक अनसुना कर दिया करें जितना हम साधारणतः करते हैं, और बीच मे पड़कर झगडों का फैसला कराने का प्रयत्न न किया करें, तो हम देखेंगे कि इससे बच्चो को कोई हानि नहीं होगी। जब हम बच्चों के शोर-गुल से झुँझलाकर उसे बन्द कराने का प्रयत्न करते हैं तो बहुधा हम किसी एक बच्चे को बचाकर दूसरों के साथ बेइन्साफी करते हैं।

क्या आपके बच्चे आपसे बहस करते हैं?

बिना वादविवाद के परिवार का जीवन उतना ही नीरस होकर रह जायगा जितना होटल में अकेले रहना। परिवार मे हर व्यक्ति के विचार, विश्वास और भावनाएँ दूसरों पर प्रभाव डालती हैं; परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का प्रायः हर विचार और हर काम उस जीवन से भी सम्बन्धित होता है जो सब लोग मिलकर बिताते हैं।

आखिर बच्चो के बहस करने मे ऐसी परेशानी की बात क्या है? कहीं इसका कारण यह तो नहीं है कि जब वे बहुत छोटे थे और हम माता-पिता उन पर अपना दबाव रखते थे, उस समय किसी बात पर यदि वे हमारा विरोध करते थे

या उनके विचार हमारे विचारों के अनुकूल नहीं होते थे तो हम धौंस डालकर उनको चुप करा देते थे ? बच्चे जैसे-जैसे बडे होते जायँ वैसे-वैसे हमें उनकी इस प्रवृत्ति को बढ़ते देखकर खुश होना चाहिए कि उनके अपने नये-नये विचार हों और वे उन विचारों को व्यक्त करने का प्रयत्न करें न कि हम उनकी इस प्रवृत्ति को रोक दें। यह सच है कि यदि घर में वादविवाद न हो तो बडी शान्ति और आराम रहता है। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि जिस समय बच्चे हमसे बहस करने लगते हैं या आपस में बहस करते हैं तो हम उनको इस कारण 'चुप हो जाने' को कह देते हैं कि यदि वे हमेशा आज्ञाकारी और विनम्र बने रहेंगे तो हमको सोचना कम पडेगा ?

शायद जरूरत इस बात की है कि हम दो प्रकार की बहसों का अन्तर समझें—एक तो वह जिसका अर्थ होता है तर्क करना और दूसरी वह जो केवल हठधर्मी होती है। एक बहस का अर्थ होता है किसी विचार के बारे में अपने संदेह दूर करना या उसके सत्य को प्रमाणित करना और दूसरी का अर्थ यह होता है कि वादविवाद उग्र और क्रोधपूर्ण झगड़े का रूप धारण कर ले। जब बच्चे बाद वाली किस्म की बहस करने लगते हैं तो इसका बहुधा अर्थ यह होता है कि वे अपने प्रति किये जाने वाले किसी अन्यायपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध विद्रोह कर रहे हैं, वे उस व्यवहार पर रुष्ट हैं तथा उनमें ईर्ष्या और जलन की भावना है।

अच्छी तरह देखकर और ध्यान से सुनकर यह निर्णय करने के लिए कि किस झगड़े को कितना महत्त्व दिया जाय, माता या पिता के लिए यह जरूरी होता है कि वह ठण्डे दिमाग के हों। लेकिन क्या केवल यह करने से ही हम पता लगा सकते हैं कि 'कुछ करने की जरूरत है' या यह झगडा केवल इस बात का सूचक है कि बच्चे स्वस्थ रूप से वह ढग सीख रहे हैं जिसके द्वारा बड़े लोग समस्याओं को हल करते हैं।

बच्चे आखिर किन बातों के बारे में बहस करते हैं ? दुनिया की हर चीज के बारे में उनकी रुचियों तथा उनकी दिलचस्पी का सम्बन्ध दुनिया की हर चीज से होता है। इन बहसों से हम क्यों झुँझला जाते हैं ? क्योंकि उनमें बहुतसी बहसें अर्थ-रहित या बिलकुल महत्त्वहीन मालूम होती हैं और उनमें जो समय लगता है उसे हम उन कामों में लगाना चाहते हैं जिन्हें हम ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझते हैं ? या इसका कारण यह होता है कि हम या तो इतने व्यस्त रहते हैं या इतने आलसी होते हैं कि हम उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं ढूँढना चाहते ? रेडियो पर तो हमको

गरमा गरम बहस का कार्यक्रम सुनने में बड़ा आनन्द आता है। फिर स्वयं अपने घर में इस प्रकार के वादविवाद पर हमको क्यों आपत्ति होती है? हम अपने घर में होने वाले इन कार्यक्रमों से कुछ सीखने का प्रयत्न क्यों नहीं करते?

जो लोग सभा-मञ्च पर या रेडियो की बहस में किसी विषय पर विभिन्न दृष्टिकोणों के पक्ष में भाग लेते हैं उनको अपने विचारों की पुष्टि के लिए तर्क और तथ्य जमा करने पड़ते हैं। यदि परिवार की बहस को भी इसी स्तर का बना दिया जाय तो बहुत सी बेकार और झुँझला देने वाली बहस को खत्म किया जा सकता है। यदि बच्चे इस बात की जरूरत को समझने लगें कि बहस करते समय उनको अपने तर्क की पुष्टि के लिए तथ्य जमा करने चाहिएँ तो इससे बड़ा लाभ होगा, और वे यह भी समझें कि किसी ऐसी बात पर, जिसके समर्थन में उनके पास तथ्य न हों, केवल इसलिए अड़ा रहना कि उस बात के बारे में उनकी यही भावना है, बड़ी मूर्खता है।

आजकल बच्चों को सोचने का अभ्यास करने की जितनी जरूरत है उतनी शायद पहले कभी नहीं थी। दुनिया के किसी भाग की भी घटनाएँ और कठिनाइयाँ, चाहे वह हमारे देश में हों या दुनिया के किसी और देश में, हमारे प्रतिदिन के जीवन पर इस प्रकार प्रभाव डालती हैं कि बच्चा भी उनको देख सकता है। शायद इस कारण हमको पुराने जमाने के माता-पिता की अपेक्षा इस बात का ज्यादा अवसर मिलता है कि हम अपने बच्चों में किसी समस्या के हर पहलू पर विचार करने की आदत डालें।

बच्चे की बहस में (बड़े लोगों की बहस की तरह) एक चीज जो बहुत ज्यादा आती है वह है 'अधिकारों' का प्रश्न। जब प्रभात यह बहस करता है कि उसे विनय के मोजे पहनने का 'अधिकार था' क्योंकि उसके मोजे भीग गए थे तब हम उसे यह समझा सकते हैं कि यह तो ठीक है कि कभी-कभी दूसरे की चीजों पर अधिकार कर लेना पड़ता है पर यदि वह विनय के मोजे लेने से पहले उससे पूछ लेता तो सब झगड़ा ही मिट जाता। यदि यशोधरा यह बहस करती है कि उसे भी वही सब करने का 'अधिकार' है जो उसकी सहेलियाँ करती हैं तब हम यदि पता लगाएँ तो हमें मालूम होगा कि शायद उसको कुछ ऐसी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं जो उसकी सहेलियों को प्राप्त हैं या शायद सचमुच ही हम उसके साथ बड़ी सख्ती बरतते हैं। हम यह चाहते हैं कि हमारे बच्चे बिना सोचे-समझे हानिकारक विचार और प्रवृत्तियाँ स्वीकार करने से सावधान रहें। इसलिए क्या यह

उचित नहीं है कि जब उनमें हमारे सुझावों को परख कर उनकी भलाई-बुराई जाँचने की योग्यता बढ़ रही हो तो हम उसका स्वागत करें।

समय बरबाद करना, मचलना, रूठ जाना, चुगली खाना और धोखा देना

समय बरबाद करना बहुधा एक बहुत छोटी सी समस्या होती है, परन्तु चूँकि हम बहुधा छोटी-छोटी बातों पर झुँझला उठते हैं इसलिए इस प्रवृत्ति के कारण आपस में झगड़े होते हैं।

हर बात में दखल देना, व्यर्थ कामों में हाथ डालना, इधर-उधर व्यर्थ समय बरबाद करना और ऊब जाने पर आलस्य दिखाना शायद मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है। इसीलिए जब बच्चे स्कूल जाना आरम्भ करते हैं उस समय वे कपड़े पहनने में व्यर्थ समय बरबाद करने लगते हैं। कपड़े पहनना इस समय तक उनके लिए कोई उत्साहजनक काम नहीं रह जाता, क्योंकि उसमें कोई नयापन नहीं होता। यह काम उनके लिए पुराना हो चुका होता है, परन्तु इतना पुराना नहीं कि वे इसे फुरती से अपने-आप कर सकें।

हाँ, जब कहीं अच्छी जगह जाना हो तो बात और ही होती है। इसी कारण यदि हम बच्चे के नाश्ता करने या खाना खाने की क्रिया को भी ज्यादा-से-ज्यादा मनोरंजक बना सकें तो बड़ा लाभ होगा। उदाहरण के तौर पर बच्चा किसी विशेष कारण से बड़ी सज-धज से कपड़े पहनकर तैयार होना चाहता है—उसका कोई मित्र उसे बुलाने आने वाला है या वह अपने स्कूल में कोई नया खिलौना ले जाकर दूसरे बच्चों को दिखाने वाला है—तो वह बड़ी फुर्ती से कपड़े पहन लेता है। सम्भव है कि हमको इसमें कठिनाई हो कि हम बच्चे का ध्यान कपड़े पहनने की ओर से आने वाली मनोरंजक चीज की ओर खींच सकें, पर इसका प्रयत्न करना बहुत लाभदायक होगा। बच्चे की यह हालत हमेशा नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त उन चीजों को दूर करने से भी लाभ होता है जो बच्चे का ध्यान बँटाती हैं। कुत्ते के बच्चे को कमरे से बाहर रखने से या खिलौनों को उसकी दृष्टि से दूर रखने से उसका ध्यान नहीं बँटेगा। यदि जनार्दन जान-बूझकर उल्टा जूता पहनकर अजय को हँसाता रहता है तो अच्छा यह होगा कि अजय को कपड़े पहनने के लिए दूसरे कमरे में भेज दिया जाय।

मचलना बिलकुल ही अलग बात है। इसका अर्थ यह होता है कि आपने शायद किसी प्रकार अपने बच्चे के मन में यह बात बिठा दी है कि उनकी

ओर ध्यान आकर्षित कराने का यही एक उपाय है। आपको उसके दिल से यह बात निकालनी होगी। आप उसकी ओर उस समय बहुत प्रेमपूर्वक ध्यान दीजिए जब वह मचल न रहा हो; आप उसकी बात को ध्यान से सुनिए, किसी और तरफ ध्यान रखकर केवल 'हूँ हूँ' न कीजिए; जब वह रसोई में अपनी माँ को हलवा बनाते देखकर वहीं मँडलाता रहे तो उसे छोटे-मोटे चुटकुले या मनोरंजक कविताएँ सुनाकर उसका ध्यान आकर्षित कीजिए।

इसका कारण कहीं यह तो नहीं है कि परिवार में कोई दूसरा आदमी भी मचलता हो और बच्चा शायद केवल उसकी नकल करता हो? शायद आप भी काम से थक गए हों और मन बहलाने के लिए किसी दूसरे काम में मन लगाना चाहते हों, शायद बच्चे के मचलने का कारण यह हो कि बच्चा अपने-आप पर तरस खाने की प्रवृत्ति को अपना रहा हो। पता लगाइए कि बच्चा यह क्यों समझता है कि उसके साथ बुरा व्यवहार किया जाता है या उसे जरा-जरा सी बात पर झिड़क दिया जाता है। इसका ध्यान रखिए कि उसके साथ ऐसा व्यवहार न किया जाय। उसके बाद उसके मचलने पर टीका करना छोड़ दीजिए और उसे बिलकुल भूल जाइए।

बहुधा बच्चे का मचलना उसके बीमार होने का पहला संकेत होता है। यदि ऐसा है तो किसी डाक्टर को बुलाने की जरूरत है।

रूठ जाना इस बात का सूचक होता है कि बच्चा अपने मन में बहुत सी ऐसी बातें दबाए रखता है जो उसे व्यक्त कर देनी चाहिएँ। रूठ जाने का अर्थ हो सकता है कि (१) वह अपने आपको जरूरत से ज्यादा महत्त्व देता है; (२) जब कोई बात उसकी इच्छा के प्रतिकूल होती है तो वह उसे 'सहन नहीं कर सकता है' और बिलकुल हतबुद्धि हो जाता है कि क्या करे; (३) या सचमुच ही उसकी बात को समझा न जाता हो और उसे अपनी भावनाओं को समझाने का अवसर ही न मिलता हो।

बच्चे के रूठ जाने पर टीका करने, या उसे बार-बार इस आदत को छोड़ देने का आदेश देने से वह और भी घुटने लगता है। शायद इससे उसकी काम करने की शक्ति भी क्षीण होती है और वह पहले से भी ज्यादा कुढ़ने लगता है।

यह बात जानना बहुत दिलचस्प होगा कि रूठ जाने की आदत क्या उन बच्चों में ज्यादा पाई जाती है जिनको अपने माता-पिता की बात का उलटकर जवाब देने की इजाजत नहीं होती। यदि किसी ६ बरस के बच्चे की माँ उसके उसे

'टोलरू' कह देने पर आगबबूला हो जाती है, उसे बच्चे के क्रोधावेश का परिणाम समझकर टाल नहीं जाती, तो यही बच्चा १० बरस का होकर जब कभी किसी बात पर भी क्रुद्ध होगा तो अपने क्रोध को व्यक्त करने के बजाय रूठ जाया करेगा।

यदि बच्चे की रूठ जाने की प्रवृत्ति यह रूप धारण कर ले कि वह किसी की बात न सुने और उदास रहने लगे तो किसी विशेषज्ञ से परामर्श करना चाहिए।

यदि बच्चे में यह अस्वस्थ भावना पैदा हो जाय कि वह सब कामों से विमुख हो जाय तो हमें चाहिए कि उसकी भावनाओं के व्यक्त होने के लिए कोई उपाय ढूँढ निकालें। यदि हम बच्चे के लिए कोई ऐसा काम ढूँढ दें जिसमें वह व्यस्त रह सके तो उसकी तत्कालीन कठिनाई को दूर करने में बड़ी सहायता मिलेगी। थोड़ा समय बीतने पर, जब हम भी यह सीख जायँगे कि इस प्रकार की सङ्कटमय परिस्थिति को कैसे दूर रखा जा सकता है, तब वह बच्चा भी अपनी भावनाओं को उचित ढंग से व्यक्त करने के उपाय ढूँढ निकालेगा।

चुगली खाना बहुत दुखद बात है पर बच्चों में यह बात इतनी आम होती है कि यह स्वाभाविक मालूम होने लगती है। इसका महत्व क्या है? यह आदत इस बात की सूचक होती है कि चुगलखोर बच्चा स्वभावतः कमजोर होता है और वह बड़े लोगों के पास सहायता के लिए आता है। हमारा प्रतिदिन का अनुभव हमको यह बताता है कि हर बच्चा किसी-न-किसी अवसर पर अपनी कमजोरी का प्रमाण देता है, परन्तु यदि किसी बच्चे की यह आदत ही पड़ गई हो कि वह हमेशा दूसरों की बेइन्साफी या बुराई की शिकायत करता रहे तो हमको यह सोचना चाहिए कि उसे दूसरे प्रकार की सहायता की जरूरत है. जिस प्रकार की सहायता वह माँगता है उसकी नहीं। उसे दृढ़ बनाने की जरूरत है कि वह परिस्थितियों का डटकर सामना कर सके। ऐसी दशा में फिर उसे इसकी जरूरत नहीं रह जायगी कि वह दूसरे की बुराई की शिकायत लेकर किसी और के पास दौड़ा हुआ जाय।

यदि काफी बड़े हो जाने के बाद भी बच्चे में शिकायतें करने और चुगली खाने की आदत बाकी रहती है, जिस उम्र में उसे यह समझने लगना चाहिए कि चुगली खाना बहुत बुरी बात है, तो इसका अर्थ यह है कि वह सुरक्षा का अभाव अनुभव करता है। ऐसे बच्चों के माता-पिता के सामने समस्या यह नहीं होती कि वे उसकी चुगली खाने की आदत कैसे छुड़ाएँ बल्कि यह कि उसमें सुरक्षा की

भावना कैसे जाग्रत करें। किसी बच्चे को न्यायी और ईमानदार बनाने के लिए इस बात की जरूरत हो सकती है कि उसके प्रयत्नों की और ज्यादा प्रशंसा की जाय; दूसरे बच्चे को ज्यादा जिम्मेदारी सौंपने से यही काम पूरा हो सकता है, और किसी और बच्चे को यही बात छोटी-मोटी बेइन्साफी को हँसकर टाल देने की शिक्षा देकर, या उसमें चीजों को उनके वास्तविक महत्त्व के अनुसार देखने की क्षमता बढ़ाकर, सिखाई जा सकती है।

धोखा देना (जैसा कि अलग अध्याय में बताया गया है) इस बात का एक और प्रमाण होता है कि अपनी संतुष्टि के लिए बच्चा स्वतः जो संघर्ष करता है उसमें वह 'अपने लक्ष्य तक पहुँचने' में असफल रहता है। खेल में, या स्कूल के काम में, या अपने काम को पूरा करने में अथवा काम को अच्छी तरह पूरा न कर सकने पर जब बच्चा धोखा देने लगता है तो हमको यह पता चलता है कि बच्चे के मन में क्या भय समाए हुए हैं या उसने अपने लिए क्या लक्ष्य निश्चित किए हैं। यदि उसका आत्म-विश्वास दृढ़ नहीं है तो हमें उसका उत्साह-बल बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

क्या वह बच्चा किसी ऐसे समूह में तो नहीं रहता या खेलता है जिसमें प्रतियोगिता की भावना इतनी प्रबल हो कि वह सोचने लगे कि जिस प्रकार भी हो, ईमानदारी से या बेईमानी से, वह सबसे आगे रहे? घर पर उसका बहुत लाड़-प्यार तो नहीं किया गया कि संघर्ष करने की उसमें क्षमता ही न रह गई हो? उसकी आकांक्षाएँ कहीं उसकी योग्यता के बाहर तो नहीं हैं जिसके फलस्वरूप वह ऐसा बालक बन गया हो जिसका सिद्धान्त यह होता है कि 'यदि मैं जीतूँगा नहीं तो मैं नहीं खेलूँगा?'

यदि माता-पिता बच्चों के इस प्रकार के व्यवहार का अर्थ समझने में सफल हो जायँ तो वे उनको इस प्रकार की सहायता दे सकते हैं कि उनमें स्वयं परिस्थिति का सामना करने का विश्वास पैदा हो जाय।

शिष्टता का कितना महत्त्व है?

बच्चे बहुधा इस कारण भी बहुत क्षुब्ध हो जाते हैं कि उनके माता-पिता के दिमाग में शिष्टता और तमीजदारी के कुछ निश्चित नियम जमे होते हैं जबकि बच्चों को इन बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता (होता भी है तो बहुत थोड़ा!)। बच्चे स्वाभाविक रूप से एक हद तक प्रसन्नचित्त और मित्रतापूर्ण होते हैं जिसके कारण उनके बहुत से दोष छिप जाते हैं, जैसे उनका यह न समझना कि किसी का

अभिवादन करने का उचित ढंग 'हिः हिः' करके खिलखिलाना नहीं बल्कि उसमें यह पूछना है कि 'आप कुशल से तो हैं।'

कुछ बच्चों को बिलकुल कठपुतली बना दिया जाता है, केवल उनके ऊपर सामाजिक सदाचरण की एक कलई कर दी जाती है। जो शिष्टता हम अपने बच्चों को सिखाते हैं, यदि उसका कोई वास्तविक महत्त्व नहीं है तो उससे उनको कोई लाभ नहीं पहुँच सकता। सम्भव है कि वे इन सब बातों में तो बहुत निपुण हों कि खाना खाते समय मुँह से चप-चप की आवाज न निकलनी चाहिए, या किसी का अभिवादन करने के लिए किस प्रकार झुककर नमस्कार करना चाहिए, पर फिर भी वे बहुत अशिष्ट और स्वार्थी हों। बच्चे को यह सिखाने की ओर हमको ज्यादा ध्यान देना चाहिए कि वह दूकान पर किसी दूसरे को ढकेलकर उससे पहले अपनी चीज लेने का प्रयत्न न करे। इसकी अपेक्षा बच्चे को यह सिखाने का महत्त्व बहुत कम है कि किसी महिला को देखकर उसे अपनी कुरसी छोड़कर खड़ा हो जाना चाहिए।

वास्तविक विनम्रता मनुष्य की भावनाओं से पैदा होती है। यदि हम बच्चों में दूसरों के प्रति सुहृदयता की भावना जाग्रत करें तो उनमें इस भावना को व्यक्त करने का ढंग आप-से-आप आ जायगा। बच्चों को शिष्ट आचार सिखाने का एक सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम स्वयं अपने आचरण का ध्यान रखें।

सामाजिक सद्व्यवहार का यही एकमात्र आधार है। अच्छा आचरण आदमी दूसरे को देखकर सीखता है। यदि माता-पिता प्रातःकाल उठकर स्वयं अभिवादन किया करें तो बच्चों में भी देखादेखी यह आदत पड़ जायगी, यदि अपने बच्चों के किसी अधिकार की अवहेलना करने के बाद हमारे होंठों पर अनायास ही 'माफ करना' के शब्द आ जायँ तो हमारे बच्चे भी यह आदत सीख लेंगे। किसी उपकार के बदले अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए जब हम 'धन्यवाद' कहते हैं तो हमारा बच्चा भी इसे सीख लेता है; या जो लोग हमारी सेवा करते हैं उनके प्रति मित्रता का व्यवहार रखना बच्चों में भी वही भावना जाग्रत करता है।

शिक्षा देना कब आवश्यक होता है ?

अनेक सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनमें अपने-आपको खपा लेने के लिए छोटे-छोटे विशेष ढंग होते हैं जो बच्चा घर पर नहीं सीख सकता। होटल में खाना खाते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, किसी दावत में निमन्त्रण देने वाले को शिष्टतापूर्वक धन्यवाद किस प्रकार देना चाहिए आदि बातें

ऐसी हैं जो बच्चों को सिखानी पडती हैं। जो बच्चा 'उचित' व्यवहार की बहुत सी बातें जानता है वह आगे चलकर बड़ा होने पर बडी सुगमता से अपने विस्तृत सामाजिक अनुभवों का सामना कर सकता है।

लड़कों और लड़कियों को शिष्टता और तमीज सिखाने के लिए अनेकों पुस्तकें लिखी जाती हैं। १२ वर्ष से कम उम्र के लड़के इस प्रकार की बकवास को, सम्भव है, तिरस्कार की दृष्टि से देखें, परन्तु उनको उन पुस्तकों में दिलचस्पी हो सकती है जिनमें उनकी बहनों की रुचि होती है। यदि उनको इस प्रकार की पुस्तक पढ़ने से बहुत खिसियाहट होती है तो हमको जोर देकर जबरदस्ती उनको पढ़ने पर मजबूर नहीं करना चाहिए।

बहुत सी माताएँ मेहमानों के आने पर अपने बच्चों से सहायता लेती हैं। जब बच्चे को कोई काम दिया जाता है तो उसकी सारी हिचकिचाहट और झेंप दूर हो जाती है, जैसे यदि उसको मेहमानों को यह बताना हो कि वे अपने जूते कहाँ उतारें या उसको नाश्ता लाकर उनके सामने लगाना हो।

यदि हम अपने बच्चों को यह समझाएँ कि कुछ कामों को करने का कोई विशेष ढंग क्यों अपनाया गया है तो बच्चे बहुत से सामाजिक रीति-रिवाजों की जरूरत को समझने लगेंगे। कोट की आस्तीन में जो बटन लगे होते हैं उनका उपयोग क्या है ? अब तो उनका कोई भी उपयोग नहीं, परन्तु एक जमाने में जब विलायत में लोग झालरदार कमीजें पहना करते थे, तब इन बटनों में कमीज की आस्तीन की झालर अटका दी जाती थी ताकि खाना खाते समय शोरबे में डूबकर वह खराब न हो। वही प्रथा अब तक चली आती है। इसी प्रकार हमारे बहुत से रीति-रिवाज पुराने जमाने के अवशेष हैं जो अब तक चले आते हैं। परन्तु हमारे शिष्टता के अधिकांश नियम किसी विशेष कारण के आधार पर ही बनाए गए थे और यदि उनके द्वारा दूसरों से सम्बन्ध स्थापित रखना सुगम और सुखकर हो जाता है तो हमें उन नियमों का पालन करना चाहिए। इन चीजों के बारे में बच्चों से बात करने से उनमें यह समझ सकने की क्षमता पैदा होती है कि कौनसे नियम केवल दिखावे के लिए होते हैं और किन नियमों के पालन करने से मनुष्य के सभ्य होने का प्रमाण मिलता है, क्योंकि ये नियम केवल दिखावे के लिए नहीं होते हैं। एक जमाने में विलायत में लोग महिलाओं को देखकर अपनी हैट उतार लेना शिष्टता समझते थे परन्तु अब वे इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि भीड़ में महिलाओं के सामने हैट लगाए रहना उतनी अशिष्टता नहीं है जितनी कि हैट को उतारने के

प्रयत्न में दूसरों को कुहनी मार देना।

माता-पिता अपने बच्चों को बातचीत करने का ढंग सिखाने मे बहुत सहायक हो सकते हैं। 'प्रतिदिन की छोटी-छोटी बातों' का वैसे तो कोई विशेष महत्त्व नहीं होता परन्तु यदि इस प्रकार की बातचीत से दूसरों की झिझक दूर होती है तो इसका महत्त्व बढ़ जाता है। जिस परिवार मे बच्चों को सामयिक घटनाओं पर बहस करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है या किसी फिल्म या रेडियो के कार्यक्रम के बारे में बच्चों की राय ली जाती है, उस परिवार के बच्चों मे समूह के सामने अपने विचार व्यक्त करने की क्षमता भी पैदा होती है।

किशोरावस्था के बहुत से बच्चे जब वे सामाजिक जीवन में प्रवेश करते है इस बात की शिकायत करते हैं कि उनकी 'समझ मे नहीं आता कि किस विषय पर बातें करें,' विशेष रूप से अपरिचितों से या लड़कियाँ लड़कों से और लड़के लड़कियो से। इसके विपरीत वे बच्चे जिनको बचपन से ही बडे लोगों की बातचीत में भाग लेने का अवसर दिया गया है वे इस उम्र तक पहुँचते-पहुँचते काफी अभ्यास प्राप्त कर लेंगे और यह अवस्था, जिसे बेतुकी उम्र कहा जाता है, उनके लिए बिलकुल भी बेतुकी नहीं रह जायगी। यदि किसी १० या १२ बरस के बच्चे को उसकी माँ यह सिखाए कि किसी का स्वागत करते समय क्या कहना चाहिए या किसी से विदा माँगते समय क्या कहना चाहिए तो वह बडी खुशी से सीख लेगा।

अपने माता-पिता के अतिथियों को रोचक विषयों पर बातचीत करते हुए सुनना बच्चों की शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अग बन सकता है। जिस तरह बच्चो को विनम्रतापूर्वक नमस्कार करना सिखाया जाता है उसी प्रकार उनको यह भी सिखाया जा सकता है कि वे अपनी ओर जरूरत से ज्यादा ध्यान आकर्षित कराने का प्रयत्न न करें। ६ बरस की अवस्था को पहुँचने से बहुत पहले ही बच्चों को यह सीख लेना चाहिए कि दूसरे की बात को काटना, जब अतिथि आए हों तो 'शेखी मारना' बहुत बुरी आदतें हैं।

दूसरे लोगों से सुगमता से बातचीत करने के लिए यह जरूरी है कि बच्चो को उनमे सचमुच दिलचस्पी हो। जिस परिवार का वातावरण बहुत मित्रतापूर्ण होता है और जहाँ तरह-तरह के लोग आते रहते हैं, उस परिवार के बच्चों को

दूसरों से मिलने और उनकी भावनाएँ जानने का बहुत अवसर मिलता है। दूसरों की बात सुनने की क्षमता रखना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना बात करने की क्षमता रखना; इसलिए जो बच्चे इस बात को जितना अच्छी तरह समझते हैं कि लोगों को अपनी रुचियों के विषय में बात करने का कितना शौक होता है, वे सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के लिए उतना ही ज्यादा तैयार होते हैं।

बच्चे की अच्छाइयों की तथा उसके अच्छे काम की बहुधा प्रशंसा करना, उसकी भूलों तथा उसकी खामियों की आलोचना करने की अपेक्षा, कहीं ज्यादा अच्छा है। यदि हम बच्चे का ध्यान उसकी बड़ी-बड़ी भूलों की ओर भी आकर्षित न करें तो उसमें झिझक और संकोच पैदा नहीं होगा।

घबराहट की आदतें

'घबराहट' एक अस्पष्ट-सा शब्द है। हम हर उस व्यवहार को जो हमारी समझ में नहीं आता या जिससे हम परेशान हो जाते हैं, 'घबराहट' का नाम दे देते हैं। जो बच्चा दाँतों से नाखून काटता रहता है वह 'घबराहट' का शिकार है; जो रात को सोते में बिस्तर पर पेशाब कर देता है, या जरूरत से ज्यादा बातें करता है या सोते में चौंक-चौंक पड़ता है वह भी स्नायुओं की कमजोरी के कारण 'घबराहट' का शिकार है। हम बहुधा यह मान लेते हैं कि बच्चे का इस प्रकार का व्यवहार इस बात का प्रमाण होता है कि बच्चा बहुत नाजुक-मिजाज है और जरा-सी बात पर उत्तेजित हो जाता है। कुछ बच्चों की अस्थिर भावनाओं का कारण उनकी स्नायु-व्यवस्था की कमजोरी होती है जो उनके जन्मकाल ही से उनमें पाई जाती है। परन्तु हमको यह नहीं भूल जाना चाहिए कि बच्चे के चारों तरफ के वातावरण का उसके व्यवहार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। हम कभी यह नहीं सोचते कि क्या हमारे बच्चों की 'घबराहट' की कुछ जिम्मेदारी हम पर भी है या नहीं। शायद हमारी आदतें ही (चीखकर बोलना; हर समय अपने बहुत काम करने का दुखड़ा रोते रहना; घबराकर एक काम को छोड़कर दूसरे की ओर लपकना आदि) उनमें घबराहट की प्रवृत्ति पैदा करने के लिए काफी होती हैं। बच्चे से यह आशा करना तो बहुत आसान है कि वह अपनी अवस्था से बड़े लोगों की तरह समझदारी का व्यवहार करे। जो बच्चा ऐसे बड़े लोगों के बीच में रहता है, जो जरा-जरा सी बात पर उत्तेजित हो उठते हैं, उसके स्वभाव में गम्भीरता और स्थिरता पैदा नहीं हो सकती। यदि बच्चा हकलाता है, या हस्त-मैथुन करता है, या टेढ़े-मेढ़े मुँह बनाता रहता है, या सोते में पेशाब कर

देता है, या उसमें कोई ऐसी आदतें हैं जो हमारी समझ मे नहीं आतीं तो इसका कारण यह है कि उस पर कोई-न-कोई दबाव या तो डाला जा रहा है या पहले कभी डाला गया है। यदि बच्चे को अपनी स्फूर्ति को व्यक्त करने का अवसर न मिले तो वह इस घुटन को जिन विविध तरीकों से व्यक्त करता है उनमे से 'घबराहट' की आदतें सबसे आम हैं जिनका सम्बन्ध मुँह से होता है।

यदि हम अपना सारा ध्यान बच्चे की घबराहट की किसी विशेष आदत पर देने लगेंगे तो बच्चा बौखला जायगा और उसकी सारी क्रियाएँ प्रायः बन्द हो जाएँगी। हमारा कर्त्तव्य यह है कि पहले हम इस घबराहट के कारण का पता लगाएँ। 'घबराहट' जिस रूप मे व्यक्त होती है वह इस मूल कारण का केवल एक सूचक चिह्न मात्र होता है।

रात को बिस्तर पर पेशाब करना

यदि स्कूल जाने वाला कोई बच्चा बिस्तर पर पेशाब करता है तो कुछ बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्या बचपन से ही सूखा रहने पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया गया है? क्या सचमुच उसमें कभी सूखा रहने की आदत नहीं पड़ी? यदि पेशाब करने की आदत बहुत पुरानी नहीं है, तो उसके जीवन की कौनसी घटनाएँ ऐसी हैं जिनका उसकी इस आदत से सम्बन्ध हो सकता है? क्या उसके साथ कोई ऐसी घटना हुई है जिससे उसको बहुत भय लगता हो, जैसे स्कूल में बुरे नम्बर पाना आदि? क्या वह पहले अलग कमरे में रहता था या अलग कमरे में सोता था जो अब उससे छीन लिया गया है? या कभी उसे दूसरे बच्चों के साथ योनि-सम्बन्धी कोई खेल खेलने के कारण सज़ा दी गई है? क्या वह किसी अपने से छोटे बच्चे से ईर्ष्या करता है जिसके कारण वह इस प्रकार की बचकानी हरकतें करता है ताकि दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सके?

यदि वह काफी समय से अक्सर बिस्तर पर पेशाब करता रहा है तो यह पता लगाना चाहिए कि कोई बहुत पुरानी घटना ऐसी है जिसका बोझ उसके हृदय पर है और जिसे दूर करने का उपाय उसकी समझ में नहीं आता। क्या उसके माता-पिता निरन्तर आपस मे लड़ते-झगड़ते रहते हैं जिसके कारण वह बिलकुल ही दुखी रहता है? क्या उसके माता-पिता एक-दूसरे से अलग रहते हैं या उन्होंने एक-दूसरे को तलाक दे दिया है जिसके कारण वह निरन्तर कभी एक के पास और कभी दूसरे के पास भटकता रहता है और उनको एक-दूसरे की आलो-

रचना करते हुए सुनता है ? क्या उसके परिवार के बाकी सब लोग प्रतिभाशाली हैं और केवल वही मन्दबुद्धि है, जिसके कारण उसमें आत्मविश्वास पैदा होने के बजाय अपने आप पर विश्वास न होने का दुख उसे हर दम सताता रहता है ? क्या स्कूल में नया-नया भरती होने के कारण उस पर बहुत भार आ पडा है जिसके बोझ से वह दबा जा रहा है ?

और सबसे बड़ी बात यह है कि इसे अपनी इस आदत के लिए बहुत लज्जित तो नहीं किया गया है ? उसे दण्ड तो नहीं दिया गया है, बहुत डॉटा-फटकारा तो नहीं गया और उससे यह तो नहीं कहा गया कि इस आदत को वह केवल अपने प्रयत्न से ही दूर कर सकता है ?

एक बार बच्चे के दिल में यदि यह डर समा जाय कि वह लाख प्रयत्न करने पर भी इस आदत को दूर नहीं कर सकता और इस आदत को छोडने के लिए उसके पीछे पड जाया जाय, तो उसकी चिन्ता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। उसे यह भय लगा रहता है कि बाहर वालों को उसका पता लग जायगा। बजाय उसकी सहायता करने के उसके माता-पिता उसको दोष देते हैं जब कि माता-पिता की सहायता ही वास्तव मे उसका एक मात्र सहारा होती है।

जिस बच्चे की यह आदत हो उसकी सहायता करने के लिए हम यह कर सकते हैं कि उसके हृदय पर जो भी बोझ हो उसे दूर करने का प्रयत्न करें। उसको दण्ड देना, डॉटना-फटकारना या लज्जित करना नहीं चाहिए। हमारा पूरा प्रयत्न यह होना चाहिए कि उसे किसी प्रकार की तकलीफ न हो, उसके दिल पर कोई बोझ न हो और वह अधिक योग्य बन सके। यदि हम उसकी दृढ़ता और आत्मविश्वास बढ़ाने का प्रयत्न करें तो उसका परिणाम हमारी कड़ी-से-कड़ी आलोचना से अच्छा होगा।

यदि बालक की भावनाएँ बहुत जल्दी उत्तेजित हो जाती हैं तो उन बातों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए जो उसको उत्तेजित करती हैं। उसके छोटे भाई या बहन की अपेक्षा इस बच्चे को ज्यादा सावधानी से तथा ध्यानपूर्वक देखने-भालने की जरूरत होती है—यह नहीं कि एक दिन तो उस पर लाड़-प्यार की वर्षा कर दी जाय और दूसरे दिन उसे दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका जाय। ऐसे बच्चे को जरूरत इस बात की होती है कि उसे दृढ़ आधार पर स्थापित किया जाय और उसे यह निश्चित रूप से मालूम हो कि उसके माता-पिता का उसके प्रति क्या रवैया है। उसे इस बात की जरूरत होती है कि उसे

कोई ऐसा काम दिया जाय जिसमें वह एकाग्रचित्त होकर अपना मन लगा सके, न कि यह कि उसे कभी एक काम के लिए दौड़ा दिया जाय और कभी दूसरे के लिए। साधारण बच्चों की अपेक्षा इस प्रकार के बच्चे को भयानक चित्र देखने से, दुखान्त नाटकों से और दुर्घटनात्मक समाचारों से दूर रखने की ज्यादा जरूरत होती है। उसकी नींद और आराम की जरूरतों का हमेशा ध्यान रखना चाहिए।

अपनी इस आदत को दूर करने के लिए यदि उसके सामने क्रियात्मक सुझाव रखे जायँगे तो वह सहर्ष उनका स्वागत करेगा। उदाहरण के तौर पर उसके पास एक अलार्म घड़ी रख दी जाय ताकि वह रात को जाग सके (बिस्तर पर पेशाब करने वाले बच्चे बहुधा बहुत गहरी नींद सोते हैं) या उसका कमरा ही अलग कर दिया जाय ताकि दूसरों को उसकी इस बुराई का ज्ञान होने के कारण उसे लज्जित न होना पड़े। उसे इस बात की जरूरत होती है कि उसके माता-पिता को यह विश्वास हो और वे इस विश्वास को व्यक्त करें कि वह शीघ्र ही अपनी इस आदत को दूर करने में सफल होगा। जरूरत इस बात की है कि उसके माता-पिता उसे चाहते हों, उसे एक बला समझकर उससे घृणा न करते हों।

बच्चे की हर चिन्ता को दूर करने का प्रयत्न कर चुकने के बाद भी (स्कूल में उसकी प्रगति, दूसरे बच्चों के साथ उसका सम्बन्ध या घर पर पैसों आदि की कमी से सम्बन्ध रखने वाली चिन्ताएँ) यदि वह बिस्तर पर पेशाब करना नहीं छोड़ता है तो किसी डाक्टर से परामर्श करना चाहिए। यदि आस-पास इस प्रकार का कोई विशेषज्ञ नहीं है तो सरकार के स्वास्थ्य विभाग से पूछने से इस प्रकार के डाक्टर का पता चल सकता है। बहुत बड़ी उम्र तक बिस्तर पर पेशाब करते रहने का कारण बहुधा कोई शारीरिक विकार नहीं होता। परन्तु जब तक डाक्टर इस विषय में अपनी राय न दे दे उस समय तक बिलकुल निश्चिन्त न हो जाना चाहिए।

कभी-कभी यह आदत भी स्नायुओं की कमजोरी से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी आदतों की तरह किसी ऐसी विशेष घटना के कारण शुरू होती है जिसका बच्चे के दिमाग़ पर बहुत भार रहता है और इस घटना के प्रभाव के दूर हो जाने के बाद भी यह आदत जारी रहती है। यदि माता-पिता इस नतीजे पर पहुँच जायँ कि यह आदत किसी पुरानी आदत का 'अवशेष' मात्र है तो यह बात स्वयं वातावरण को ठीक करने के लिए काफी हो सकती है।

इस प्रकार के बहुत से बच्चों के मामले में यदि माता-पिता का रवैया बदल जाय और वे बच्चे का उत्साह बढ़ाए रखें तो उसे इस बात की जरूरत ही न पड़ेगी कि वह अपनी ओर ध्यान आकर्षित कराने के लिए बचपन की निस्सहायता का आधार ले।

दाँतों से नाखून काटना

दाँतों से नाखून काटना भी इस बात का सूचक है कि बच्चे के दिमाग पर कोई बोझ है। इस समस्या को हल करने के लिए बच्चे की उँगलियों पर कोई कड़वी चीज लगा देने से कोई फायदा नहीं होता, क्योंकि इससे वह मानसिक बोझ दूर नहीं होता जो इस आदत का कारण होता है। हर समय बच्चे को इस बात पर टोकते रहने से भी लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती है। इससे केवल उसके मानसिक बोझ को बढ़ाने का एक साधन और बढ़ जाता है।

इस आदत को दूर करने का सबसे रचनात्मक ढंग यह है कि उन कारणों को दूर कर दिया जाय जो बच्चे को शिथिल कर देते हैं, या उसकी भावनाओं को उत्तेजित करते हैं या उसकी चिन्ता को बढ़ाते हैं और इसके साथ ही धैर्यपूर्वक उन कारणों का पता लगाना चाहिए जो फौरन स्पष्ट नहीं होते। यह बात देखी गई है कि जब बच्चों को कोई काम नहीं होता और साथ ही उनकी भावनाएँ उत्तेजित होती रहती हैं, तब वे नाखून ज्यादा कुतरने लगते हैं। लगातार दो घण्टे तक फ़िल्म देखने, या कोई रोमांचकारी उपन्यास पढ़ने, या गणित की किसी जटिल समस्या को हल करने से भावनाएँ उत्तेजित हो सकती हैं। यदि बच्चे के पास ऐसे काम हों जिनमें वह अपने सारे शरीर का प्रयोग करे और उसे अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का काफ़ी अवसर मिले तो फिर उसे नाखून कुतरने की कोई जरूरत ही नहीं रह जायगी।

नाखून कुतरने वाले बच्चे को पढ़ते समय लेमन ड्राप चूसने के लिए दे देना इस बात को स्वीकार करना है कि उसे अपनी इस आदत को दूर रखने के लिए इस आदत के बदले में कुछ दूसरी चीज चाहिए। परन्तु बच्चों की इस आदत को या 'घबराहट' की किसी दूसरी आदत को छुड़ाने के लिए चिन्ता और परेशानी के कारणों को दूर करने का सहारा लेना चाहिए।

भय, चिन्ताएँ, निराशाएँ और उनको दूर करने के उपाय



जैसे-जैसे बच्चे इस संसार के बारे मे ज्यादा जानकारी प्राप्त करते जाते हैं वैसे-वैसे हमको यह आशा होने लगती है कि वे केवल उन अरोचक और हानिकारक वस्तुओं से डरेंगे जिनसे डरना स्वाभाविक मालूम होता है। परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं। इस प्रकार की वास्तविक आशंकाओ से डरने के बजाय—जैसे मोटर से कुचले जाने की आशका—बच्चे शेरो और भालुओ के आक्रमण से या पलग के नीचे भेड़िये के बैठे होने की आशंका से डरने लगते हैं। बच्चों मे अन्धेरे का भय, 'भूतों' तथा अन्य कल्पित वस्तुओ का भय, डाकुओं और लुटेरों का भय, इतना आम होता है कि यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें इन कल्पित वस्तुओ का भय कहानियों, फिल्मों और रेडियो के द्वारा, या अरोचक विषयों पर बड़े लोगो का वार्तालाप सुनने के द्वारा, या दूसरें बच्चों से सुनकर, या अखबारों में वीभत्स हत्याकाडों आदि की भयानक खबरें पढ़ने के कारण ही पैदा हुआ है।

तूफान का भय जो ८ और ६ बरस के बच्चो में बहुत पाया जाता है बिलकुल भिन्न प्रकार का होता है, क्योंकि तूफान एक ऐसी वस्तु है जिसका अधिकाश बच्चो को स्वयं अनुभव होता है। बहुधा बच्चे यह भय अपने बड़ो से प्राप्त करते हैं जो अपनी अवस्था के बावजूद बिजली की कड़क और चमक से बच्चो की तरह डरते रहते हैं।

जिस प्रकार छोटे बच्चे उन चीजों से डरते हैं जो उनकी समझ मे नहीं आती हैं और उनकी समझ में नहीं आता कि उनके साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाय, उसी प्रकार बड़े बच्चो का भी विचित्र और रहस्यमय चीजो से डरना इस बात का प्रमाण होता है कि वे उन्हीं चीजों से चिन्तित होते हैं जिनसे वे अपरिचित होते हैं या जो उनको समझाई नहीं जाती हैं। जब बच्चे रात को बुरे-बुरे स्वप्न देखते हैं तब वे उनमें वही चीजें देखते हैं जिनसे उनको भय लगता है, जैसे भयानक जानवर, चोर-उचक्के और डाकू आदि। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि बड़े लोग बच्चों के सामने बात करते समय सावधान रहे और बच्चे के सामने ऐसी बातों का जिक्र न करें जो, उनकी अबोधता के कारण, उनको चिन्तित कर दें।

शहर के बच्चों की अपेक्षा ऐसे देहाती बच्चों की संख्या बहुत कम होगी जो कुत्तों से डरते हों। इससे यह मालूम होता है कि किसी जानवर से परिचित होना कितनी बड़ी हद तक उसके भय को दूर कर देता है। यदि कोई परिस्थिति बच्चे को भयभीत कर देती है तो उसके बारे में जितनी ज्यादा जानकारी उसे होगी और उस परिस्थिति का सामना करने के ढंग से वह जितना परिचित होगा, उतना ही कम वह उस परिस्थिति से डरेगा। कौन बच्चा कितनी चीजों से डरता है और किस हद तक डरता है, यह बात हर बच्चे में अलग-अलग मात्रा में पाई जाती है। यदि माता-पिता के लाख प्रयत्न करने पर भी बच्चे के दिल से किसी चीज का भय दूर नहीं होता तो किसी विशेषज्ञ की सहायता लेनी चाहिए और उन कारणों का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिए जिनसे यह भय पैदा होता है।

कुछ विचारहीन और कुत्सित स्वभाव के बड़े लोग ऐसे होते हैं जो जान-बूझकर बच्चों को डराते हैं। इसलिए माता-पिता को चाहिए कि अपने बच्चों को दूसरों के पास छोड़ने से पहले अच्छी तरह सोच-समझ लें कि वे किस प्रकार के लोग हैं। यद्यपि स्कूल जाने से पहले के वर्षों में बच्चे के दिमाग पर पड़ने वाले प्रभावों की अपेक्षा, थोड़ा बड़े हो जाने पर इस बात का महत्त्व कम मालूम होने लगता है फिर भी चूँकि बच्चा स्कूल जाना आरम्भ करने पर दूसरों से ज्यादा बातें करता है और उसकी दिलचस्पियाँ भी बढ़ती हैं, इसलिए इस बात का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है कि वह किस प्रकार के लोगों के सम्पर्क में आता है।

फिल्म तथा नाटक आदि बच्चों में भय पैदा करने का एक कारण होते हैं। परन्तु बहुधा ये चीजें इस प्रकार के भय का मूल कारण नहीं होती हैं। वे बच्चे जो पहले से ही चिन्तित और परेशान होते हैं उन पर इस प्रकार की चीजों के सुनने और देखने का ज्यादा गहरा प्रभाव पड़ता है। बहुत अच्छा हो कि माता-पिता हर उस चित्र को पहले से देख लें जो उनके बच्चे देखना चाहते हैं; परन्तु यह बात केवल कुछ ही गिने-चुने घरों में सम्भव हो सकती है। या वे पत्रिकाओं से पहले से पढ़कर इन फिल्मों के बारे में निर्णय कर सकते हैं। रेडियो के कार्यक्रम में हम बच्चों का कार्यक्रम उनको सुनवा सकते हैं। यदि हम समझते हैं कि कोई विशेष कार्यक्रम उनके लिए उपयुक्त नहीं है तो हम उनका ध्यान किसी दूसरे ऐसे काम की ओर आकर्षित कर सकते हैं जो उस कार्यक्रम से अधिक रोचक हो। एक ऐसे बच्चे की अपेक्षा जो चीजों पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं करता है, ऐसे बच्चे के साथ ज्यादा सावधान रहने की जरूरत होती है जो बहुत भावुक होता है

और जिसकी कल्पना-शक्ति बहुत तीव्र होती है। कभी-कभी बच्चे को उस कार्यक्रम को सुनने की इजाजत दे देने से कम हानि होती है जिसके विषय में उसके सारे मित्र बातें करते हो, क्योंकि यदि उसे मना किया जाय तो वह समझेगा कि उस पर कोई पाबन्दी लगाई जा रही है और यह कि वह दूसरे बच्चो से 'भिन्न' है।

जिस प्रकार यदि उसके माता-पिता उसके साथ उस फिल्म को देख रहे हो तो, किसी उत्तेजनात्मक फिल्म को देखकर बच्चे की भावनाओ मे कम उथल-पुथल होती है उसी प्रकार यदि कोई बड़ा आदमी उसके साथ बैठकर रेडियो का नाटक सुन रहा हो और बाद मे उसके साथ उसकी कहानी पर बहस करे तो बच्चा अधिक सुरक्षा अनुभव करता है। किसी फिल्म के बारे मे या रेडियो के किसी कार्यक्रम के बारे में बच्चे से बात करके हम उस फिल्म या नाटक की असगतियो को उसे समझा सकते हैं; हम उसे बता सकते हैं कि नाटक का मुख्य पात्र मारा नहीं जा सकता, बाद में सब कुछ ठीक हो जायगा, आदि। इस प्रकार उसे उस नाटक के बारे में कुछ पूर्वज्ञान हो सकता है।

इस प्रकार के नाटकों आदि का आनन्द बहुत-कुछ इसमे होता है कि बच्चा 'सुरक्षित ढंग से' भयभीत हो। यदि बच्चे को अपनी सुरक्षा का पूरा विश्वास हो तो वह साहसपूर्ण कामों में भाग लेकर (साहसपूर्ण नाटकों की नकल करके भी) आनन्द प्राप्त कर सकता है। समुद्र के किनारे की सैर करने का, या किसी ऊँचे स्थान पर चढ़ने का, या तैरने का आनन्द तभी आता है जब बच्चे को इसका कुछ-कुछ आभास हो कि इसमें कुछ खतरा है और साथ ही उसे यह भी ज्ञान हो कि उसकी सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध है।

भय, जिसका सम्बन्ध स्वयं अपने आप से होता है

वे भय, जिनको बच्चा जानता है और जिनके बारे में वह बात करता है, वे तो बहुत स्पष्ट होते हैं, पर वे भय जिनका सम्बन्ध स्वयं उसके व्यक्तित्व से होता है वे अधिक गूढ़ और अस्पष्ट होते हैं। हम सब लोग इस बात को जानते हैं कि योग्यता या अयोग्यता की भावना या किसी काम को अच्छी तरह सम्पन्न कर सकने या न कर सकने का सन्तोष या असन्तोष हमारे लिए क्या महत्त्व रखता है। बचपन मनुष्य के जीवन की वह अवस्था होती है जब इस बात की नींव पडती है कि आगे चलकर जीवन में उसका क्या स्थान होगा। इसलिए अपने-आप से उसकी आशाएँ तथा उसकी सफलताएँ, अपनी योग्यता मे उसके विश्वास से बहुत कम नहीं होनी चाहिएँ। यदि वीरेन्द्र ने अपना लक्ष्य यह बना लिया है कि वह हर

काम कर सके जो उसकी उम्र के दूसरे लड़के करते हैं तो या तो वह इस लक्ष्य को पूरा करने में सफल होगा या फिर वह हवाई किले बनाने लगेगा। यदि वह अपनी इन कोरी कल्पनाओं में बहुत तेज और दृढ़ है, यदि वह अपनी कल्पना में क्रिकेट का बहुत अच्छा खिलाड़ी बन गया है, तो उसे फौरन अपनी अयोग्यता तथा असफलता पर इतनी निराशा नहीं होगी।

बच्चों में कभी-कभी इस बात का भी एक अस्पष्ट-सा भय छिपा रहता है कि शायद दूसरे बच्चे उन्हें पसन्द नहीं करते, या शायद वह स्कूल में अच्छे नम्बरों से न पास हो सकें, या शायद उनकी सूरत दूसरों से बुरी है। इसके मुख्यतः दो कारण होते हैं : पहला यह कि वे अपने लिए बनाये हुए आदर्श तक नहीं पहुँच पाते हैं और दूसरा यह कि वे अपने माता-पिता की उन आशाओं को पूरा नहीं कर पाते जो उनको अपने बच्चों से होती हैं। यदि वीरेन्द्र के पिता को यह अभिलाषा है कि उनका बेटा भी हॉकी का उतना ही अच्छा खिलाड़ी बने जितने वह स्वयं थे, तो वीरेन्द्र पर एक दोहरी जिम्मेदारी आ पड़ती है। उसे दो तरह से अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करनी पड़ती है—एक तो अपनी योग्यता के बारे में स्वयं अपने अनुमान को और फिर अपने पिता के अनुमान को पूरा करना उसका कर्तव्य हो जाता है।

इस प्रकार हर बच्चे को दोहरे प्रहार का सामना करना पड़ता है—एक बाहर से होने वाला प्रहार और दूसरा स्वयं उसके अन्दर से होने वाला प्रहार। बच्चे के आत्म-विश्वास को विध्वंसात्मक भय के प्रहारों से नष्ट होने से बचाना बड़ा कठिन काम है, और यह आत्म-विश्वास बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक होता है।

विशेषतः लड़कों से यह आशा की जाती है कि वे आगे चलकर 'कुछ बन सकें' क्योंकि हमारे समाज में बहुत समय से यह नियम है कि जीविका कमाने और परिवार का भरण-पोषण करने का भार लड़कों पर ही होता है। उन पर हर-दम इस प्रकार के प्रश्नों की बौछार होती रहती है कि वे आगे चलकर क्या 'होंगे'; छोटी लड़कियों से यह प्रश्न शायद ही कभी किया जाता हो। (लड़कियों से भी कुछ आशाएँ की जाती हैं; उनसे आशा की जाती है कि वे विवाह करके अपना घर बसायेंगी; इसीलिए किशोरावस्था में बहुत सी लड़कियों को यह भय होने लगता है कि शायद उनका विवाह न होने पाए।)

चूँकि लड़कों के सम्बन्ध में इस बात पर बहुत जोर दिया जाता है कि

आगे चलकर जीवन मे 'कुछ कर दिखाएँ', शायद यही कारण है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों मे हकलाना ज्यादा आम होता है, लड़के साधारणतः ज्यादा बड़ी 'समस्या' बन जाते हैं, बच्चो के डाक्टरों के यहाँ लडके ज्यादा आते हैं और इसीलिए लड़कों में ही चोरी आदि अपराधो की प्रवृत्ति भी ज्यादा पाई जाती है। यद्यपि लडकों से यह आशा की जाती है कि वे जीवन के प्रति ज्यादा सघर्षात्मक रवैया अपनाएँ पर जब वे ऐसा करते हैं तब उनको निन्दा की दृष्टि से देखा जाने लगता है।

मर्दों पर परिवार की जीविका कमाने का भार डालने की जो परम्परा चली आई है उसका प्रमाण इस बात मे मिलता है कि दस-दस ग्यारह-ग्यारह बरस के बच्चे स्कूल छोड़ने के बाद नौकरी पाने के लिए चिन्तित रहने लगते हैं—विशेष रूप से उन परिवारो के बच्चे जिनकी आर्थिक परिस्थिति अच्छी नहीं होती।

चिन्ता के कई कारण होते हैं ?

कुछ बच्चे स्वभावतः दूसरे बच्चों की अपेक्षा अधिक गम्भीर प्रकृति के होते हैं। जिन बच्चों पर यह भरोसा किया जा सकता है कि वे घर से काम करके ला सकते हैं उन्हीं को स्कूल में शिक्षक भी बार-बार याद दिलाते हैं। दूसरे बच्चे हँस-कर टाल जाते हैं।

यह कोई नहीं बता सकता कि किस उम्र के बच्चों पर कितनी जिम्मेदारी डाली जा सकती है। इस विषय पर काफी खोज-बीन करने की आवश्यकता है। परन्तु प्रतिदिन का अनुभव हमको यह बताता है कि हमें बच्चो को चिन्ता से बचाना चाहिए।

अकारण ही चिंन्तित रहने की प्रवृत्ति बच्चे मे बहुत छोटी अवस्था से ही पैदा हो सकती है। उदाहरण के तौर पर यदि दो बरस के किसी बच्चे को महीनों अपनी माँ से अलग रहना पड़ता है तो उसमें उसी समय से यह भावना पैदा हो जाती है कि सम्भव है कि उसके जीवन का आधार फिर उससे छिन जाय।

कभी-कभी बच्चे इसलिए भी चिन्ता करते हैं कि उनके माता-पिता भी चिन्ताग्रस्त रहने के आदी हैं। वे अपने पिता को हर समय अपनी नौकरी छुट जाने की चिन्ता प्रकट करते हुए या अपनी माँ को अपने बुरे स्वास्थ्य का रोना रोते हुए सुनते हैं।

यदि हम चाहते हैं कि बच्चे आगे चलकर साहस के साथ जीवन का सामना कर सकें तो उनको दुर्भाग्य तथा दुर्घटनाओं को हँसते-हँसते झेलने का

अभ्यास होना चाहिए। बच्चों पर उनके माता-पिता के व्यवहार का इस सम्बन्ध में बड़ा प्रभाव पड़ता है कि उनमें यह आदत पड़े कि वे अड़चनों के उठ खड़े होने से पहले ही उनको समझकर दूर करने का उपाय ढूँढ़ निकालें।

हमको बच्चों में एक मौलिक भय की सम्भावना का ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि कहीं वे उस स्वतन्त्रता को स्वीकार करने से डरते तो नहीं हैं जिसे प्राप्त करने की साधारणतः बच्चों को इच्छा रहती है। बच्चों में इस बात की उत्सुकता होती है कि वे अपने से बड़े समझे जायँ, उनको ज्यादा सुविधाएँ मिलें और उनके अनुभवों का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो। विजया बड़ी उत्सुकता से इसकी प्रतीक्षा करती है कि कब वह स्कूल जाने लगे; गोपाल को यह विश्वास होता है कि वह अपने पड़ोस वाले बड़े लड़के की तरह ही साइकिल चला सकता है। छोटे बच्चे कितनी बार अपने 'बड़े होने' के बारे में बातें करते हुए पाए जाते हैं।

लेकिन कभी-कभी बच्चे को बड़ा होने से डर भी लगता है। वह बच्चा बना रहना ही पसन्द करता है। जब यह भय (यद्यपि बहुधा बच्चों को इसका न ज्ञान ही होता है न वह इसे व्यक्त ही करते हैं) बच्चों में पाया जाता है तो यह इस बात का सूचक होता है कि उनके माता-पिता उनको उचित रूप से आज़ादी देने के लिए तैयार नहीं हैं। इसका परिणाम अन्त में यह होता है कि बच्चा सुखी नहीं रहता और वह निष्क्रिय होकर दूसरों का अवलम्ब ढूँढने लगता है।

दिलीप के माता-पिता के उसके स्वास्थ्य के बारे में आवश्यकता से अधिक सावधान रहने पर और उसके ऊपर तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगाने पर जब उसके दोस्त उसका मज़ाक उड़ाते हैं तो वह यह बहाना कर देता है कि एक बार एक डाक्टर ने कहा था कि उसका 'दिल बहुत कमजोर है'। वह ऐसे भावी जीवन से घबराने लगता है जिसमें इसकी सम्भावना हो कि लोग उसका मज़ाक उड़ाएँ या उसकी आलोचना करें। या मीरा जब अपनी माँ को हर समय काम में जुटा हुआ और दुखी देखती है तो वह अनायास ही बड़े होने से डरने लगती है और उसे इसका भी भय पैदा होता है कि कहीं उसका विवाहित जीवन भी उसकी माँ की तरह का ही न हो जाय।

इस प्रकार के भय वस्तुगत चीज़ों के भय की अपेक्षा ज्यादा हानिकारक होते हैं क्योंकि बच्चा इनको पहचान नहीं पाता है। कुत्तों या आग के भय की तरह वे अनुभव के साथ कम नहीं होंगे बल्कि उलटे और बढ़ेंगे।

दब्बूपन, झेंप और चिन्ता करने की प्रवृत्तियों को उनके बारे में चर्चा करके

दूर नहीं किया जा सकता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में जो अपकारी प्रवृत्तियाँ होती हैं उनको दूर करने के लिए ऐसी विरोधी प्रवृत्तियों की जरूरत होती है जो उनका खण्डन कर सकें। सम्भव है कि देवेन्द्र बहुत छोटे कद का और काफी बदसूरत होने पर भी चित्रकारी अच्छी कर लेता हो। उसकी यह योग्यता उसका आत्म-विश्वास बढ़ाने का आधार बन सकती है और इसके द्वारा उसकी ऐसी दूसरी योग्यताओं का पता लगाया जा सकता है जिनके कारण वह अपने दूसरे साथियों के बीच सिर ऊँचा करके चल सके। हेमा इतनी शर्मीली है कि उसे किसी के यहाँ दावत में जाने के विचार से ही डर लगता है, लेकिन यदि उसकी माँ पहले से ही उसकी दो-तीन सहेलियों को घर पर बुलाकर उन सबको मिलकर अपना खाना पकाने दे, बुनाई सीखने दे या कढ़ाई करने दे तो हेमा की झिझक दूर हो जायगी। यदि वे किसी काम में व्यस्त रहें तो उनको बातचीत करने में बीच-बीच में यह उलझन नहीं होगी कि किस विषय पर बातें करें।

यदि हर बच्चे में कुछ निपुणता हो जिसके कारण वह दूसरे बच्चों की अपेक्षा थोड़ी सी भी ज्यादा ख्याति प्राप्त कर सके तो उसकी दूसरी कमजोरियों को दूर करने में इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। परन्तु यह निपुणता किसी बाजीगरी या तमाशे में नहीं बल्कि किसी उपयोगी कला में होनी चाहिए, जैसे बाँसुरी बजाने में, खाना पकाने में, अभिनय करने में, विभिन्न चिड़ियों को पहचानने में, पशु-पालन में, या बागवानी आदि में।

हम किस युग में रहते हैं

झाड़-फूँक करने वाले वैद्य या चिकित्सक इस बात का प्रयत्न करते हैं कि बीमारी को डराकर भगा दे, परन्तु वैज्ञानिक चिकित्सक किसी रोग के बारे में काफी जानकारी न होने पर बहुत निराश होता है और उस रोग का इलाज या उसे रोकने का तरीका खोजता है।

बच्चे भी झाड़-फूँक करने वालों की तरह उन चीजों को डराकर भगा देने की कोशिश करते हैं जो उनकी समझ से बाहर होती हैं और इसके लिए वे किसी ऐसे व्यवहार का सहारा लेते हैं जो उस चीज के 'अभाव को पूरा कर सके।' कुछ बच्चे कठिन परीक्षा से घबराकर बीमारी का बहाना करते हैं। इसी प्रकार जब किसी बच्चे से अपने मित्र की सायकिल टूट जाती है और वह उसके परिणाम से भयभीत हो जाता है तो वह सारा दोष उस बच्चे पर डाल देता है जिसने उसे सायकिल पर से गिराया था। जो लड़की बहुत झिझकती और झेंपती

है वह अपनी इस कमजोरी को छिपाने के लिए बहुत जोर से हँसने या बातें करने लगती है। बच्चों की इन सब बातों से यह पता चलता है कि उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए सही उपाय का पता लगाने में हमें उनकी सहायता करनी चाहिए। झाड-फूँक करने वालों के ढंग से उनको हटाकर उनको उस ढंग के निकट लाना चाहिए जिससे कि वैज्ञानिक समस्या को हल करता है।

यह बहुत आम बात है कि हम केवल उस कठिनाई के संकेत-चिह्न को ही देखते हैं अर्थात् बच्चों की हरकतों की ओर ही हमारा ध्यान रहता है। हम यह भूल जाते हैं कि इन हरकतों के पीछे कोई कारण भी छिपा हुआ है जिसका पता लगाना उस रोग को रोकने या अच्छा करने के लिए बहुत जरूरी है।

कुछ आदतें और परिस्थितियाँ जिनमें पीछा छुड़ाना जरूरी हो जाता है

१. जब हम अपने बच्चों को बढ़ने का मौका नहीं देते

इसका इलाज केवल यह है कि हम बच्चों को अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने दें। बचपन में बच्चों की देख-रेख करने की हमारी इतनी आदत पड़ जाती है कि यह हमारे स्वभाव का एक अंग बन जाता है। हम हरि से हर बार इस प्रकार के प्रश्न करते रहते हैं, 'क्या तुमने अपना पुलोवर पहन लिया है ?' जब कि अच्छा यह होगा कि हम एक बार उसे सरदी लगने दें; उसके बाद वह स्वयं पुलोवर पहनने की याद रखेगा।

यदि माता या पिता के पास अपने बच्चों के अलावा अपनी प्रेम की भावनाओं को व्यक्त करने का कोई माध्यम न हो तो उनको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है इसलिए विधवा माताओं को या तलाक़ दी हुई माताओं को इस बात का बहुत ध्यान रखना पडता है कि वे कहीं अपने बच्चों के साथ बहुत घनिष्ठता से न बँध जायँ। अनायास ही अपने बच्चों के साथ घनिष्ठतापूर्वक बँध जाने का एक उदाहरण यह है कि कुछ माताएँ उनकी किशोरावस्था में भी बच्चों को अपने पास ही सुलाती हैं।

यदि माता-पिता में आपस में झगड़ा हो तब भी बच्चे के हृदय में इसके कारण एक गुत्थी-सी पड जाती है, क्योंकि इसकी बहुत सम्भावना हो जाती है कि उनमें से कोई एक हृदय की चिन्ता को शान्त करने के लिए अपने बच्चे का सहारा ढूँढे या दूसरे के प्रति अपना क्रोध व्यक्त करने के लिए अपना सारा प्यार बच्चे पर लुटा दे। यदि माता-पिता आपस में बहुत खुश रहें तो इससे यह निश्चित हो जाता है कि बच्चे में सुरक्षा की भावना और आत्म-विश्वास पैदा

होगा। वे घर जहाँ बच्चों को जीवन के प्रति एक आशामय रवैया रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, वहाँ का वातावरण ही कुछ और होता है।

कुछ माता-पिता लाड़-प्यार मे अपने बच्चो का जीवन बिलकुल फूलों की सेज बना देते हैं। परन्तु जब यही बच्चा १० बरस का होता है और स्कूल में काम समय पर करके नहीं देता है तो क्या परिणाम होता है ? उसका शिक्षक तब उसके साथ वह नरमी नहीं बरतेगा जो उसका पिता बरतता था और बार-बार उसकी त्रुटियों को जान-बूझकर टाल जाया करता था।

कभी-कभी ऐसा होता है कि चूँकि माता-पिता अपने बच्चों का सब काम स्वयं कर देते हैं इसलिए बच्चों में असाधारण रूप से दूसरों पर अवलम्बित रहने की आदत पड़ जाती है। वह बच्चा जिसे अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए कभी कोई प्रयत्न ही न करना पड़ा हो, यह बात जान ही नहीं सकता कि सफलता में कितना आनन्द होता है।

२. जब हम बच्चों को अपनी ग़लती पर ध्यान न देने के लिए प्रोत्साहित करते हैं

किसी काम को अच्छी तरह न कर सकने पर या किसी ग़लती की आलोचना पर जब हम झूठे बहाने ढूँढ़ने लगते हैं तो इसे 'न्याय-संगत व्यवहार' का नाम दिया जाता है। हम समझते यह हैं कि इन बहानों को ढूँढ़ने मे हम अपने दिमाग का प्रयोग करते हैं जबकि वास्तव में हम अपनी भावनाओं के अधीन ही इन बहानों को ढूँढ़ते हैं। कठिनाइयों को हल करने का यह सही ढंग नहीं है, पर इस ढंग को इतना प्रयोग किया जाता है कि कोई इनकी ओर ध्यान भी नहीं देता। किसी काम को न कर सकने का दोष हम समय पर डाल देते हैं और सच्ची बात को स्वीकार नहीं करते—हम कह देते हैं कि हमको सोकर उठने मे देर हो गई।

अपने अपराध को स्वीकार न करना मनुष्य का स्वभाव ही है। यह प्रवृत्ति केवल बच्चों में ही नहीं पाई जाती है। परन्तु यदि अपना अपराध स्वीकार न करने या दोष किसी दूसरे पर डालने की प्रवृत्ति किसी मनुष्य मे, चाहे वह बच्चा हो या बडा, बहुत प्रमुख हो तो इसका अर्थ यह होता है कि उसको अपने आप पर विश्वास नहीं है। जैसे-जैसे हम बड़े होते जायँ हममें इतनी क्षमता आनी चाहिए कि हम अपनी ग़लतियाँ और अपराधों का उत्तरदायित्व स्वयं अपने कंधों पर ले सकें।

यदि हम किसी बच्चे में यह प्रवृत्ति देखें कि वह अपनी ग़लतियों के लिए ऐसे झूठे बहाने ढूँढता है जिनमें जरा भी सत्य नहीं होता तो हमको यह समझना चाहिए कि या तो हमने उसके साथ बहुत सख्ती की है या हमने उसके साथ बहुत नरमी बरती है। पता लगाने पर इनमें से जो कोई भी बात सत्य निकले, परन्तु अपनी हर बात को सही ठहराने की बच्चे की प्रवृत्ति से हमें यह नतीजा निकलना चाहिए कि हम उसके प्रति अपने व्यवहार को बदल दें।

शायद कभी-कभी हम बच्चों को उनके अपराधों के लिए दोषी प्रमाणित करने की ज़रूरत से ज्यादा कोशिश करते हैं। यदि हम अपने बेटे से कहें, "तुमने अपने सारे पैसे मिठाई में क्यों खर्च किए?" और अगर यह जानते हुए कि ज्यादातर मिठाई उसने स्वयं खाई थी, उलट कर जवाब दे "मैंने अपने दोस्तों को भी मिठाई खिलाई थी," तब वास्तव में दोष हमारा है, क्योंकि हमने स्वयं उसे इस पर बाध्य किया कि वह अपना अपराध स्वीकार न करे, क्योंकि वह जानता है कि हम उसके इस प्रकार पैसे खर्च करने को अच्छा नहीं समझते।

यदि हम अपने बच्चों का बहुत लाड करें तो वे बिलकुल ही लापरवाह हो जायेंगे। कुमुद हर बार अपनी बरसाती खो देती है या वह यह भूल जाती है कि वह अपना गर्म शाल किसके घर छोड़ आई। ऐसी दशा में यदि हम उसे बार-बार नये कपड़े लाकर दे देंगे और उसे अपनी चीजों का ध्यान रखना नहीं सिखाएँगे तो उसको आदत ही ऐसी पड़ जायगी।

बहुधा ऐसा भी होता है कि हम स्वयं अपनी हर गलती को उचित ठहराने की कोशिश करते हैं और बच्चे हमसे यह आदत सीख लेते हैं। इसलिए हमको स्वयं भी सावधान रहना चाहिए।

२. जब वास्तविक जीवन बच्चों को हवाई किला बनाने पर बाध्य करता है

हवाई किले सभी बनाते हैं। जीवन की वास्तविकता इतनी नीरस या इतनी क्रूर होती है कि मनुष्य चौबीस घण्टे उसी में खोया हुआ नहीं रह सकता। परन्तु यदि कोई मनुष्य जीवन से इतना दूर चला जाता है कि उसे अपनी कल्पना के संसार में इस वास्तविक संसार से ज्यादा आनन्द आने लगता है तो उसमें निश्चय ही कोई खराबी है।

स्कूल जाने वाले बच्चों को अपने मित्रों के साथ खेलने-कूदने तथा नई-नई चीजों को देखने, नये-नये काम करने और नई-नई चीजें बनाने से इतनी

फुरसत ही कहाँ मिलती है कि वे हवाई किले बनाने मे समय व्यर्थ करें। परन्तु यदि कोई बच्चा अपने स्कूल के काम को बहुत कठिन समझने लगता है या इतना आसान समझता है कि उसे बहुत जल्दी समाप्त कर लेता है, या जब वह निश्चिन्त रहता है या उकता जाता है तब वह सहज ही हवाई किले बनाने लगता है। अपनी कल्पना के द्वारा वह एक ऐसे संसार की रचना कर लेता है जहाँ उसे बहुत संतोष मिलता है।

इस प्रकार की हवाई किले बनाने की प्रवृत्ति को रोकने का उपाय यह है कि उसके काम को आवश्यकतानुसार कठिन या सरल बना दिया जाय। परन्तु जब किसी तीव्र वेदना से बचने के लिए बच्चा कल्पना के संसार में जाकर शरण लेता है तब उसे इतनी आसानी से ठीक नहीं किया जा सकता।

बच्चे मे हवाई किले बनाने की प्रवृत्ति पैदा होने के कई कारण हो सकते हैं। सम्भव है कि वह अपने साथियों मे लोकप्रिय न हो; सम्भव है उसका घर का जीवन चिन्तामय हो, या वह समस्याओ को हल करने में अपने-आप को असमर्थ अनुभव करता हो। हर बच्चे को अलग-अलग ढंग से ठीक करने का उपाय करना चाहिए, क्योंकि हर बच्चे के जीवन से असन्तुष्ट होने के कारण भी अलग-अलग होते हैं। सुषमा को अपने परिवार के छोटे से गन्दे घर मे अपने मित्रों को लाते हुए संकोच होता है, इसलिए वह एक शानदार महल में रहने के स्वप्न देखती है। हम उसके लिए महल तो नहीं बनवा सकते, परन्तु उसकी इस भावना को दूर करने के लिए हम कुछ-न-कुछ जरूर कर सकते हैं। हम उसको किसी ऐसे क्लब में भरती करा सकते हैं जिसकी मीटिंगें सदस्यो के घर पर नहीं बल्कि स्कूल में होती हों।

४. जब हम बच्चों को वह सम्मान नहीं देते जिसका उनको मनुष्य होने के नाते अधिकार है

दूसरों की अपेक्षा निम्नतर होने की भावना जो हमको कभी-कभी सताती रहती है बहुधा बचपन में ही हमारे अन्दर पैदा होती है। यदि इसका विशेष रूप से ध्यान न रखा जाय तो बचपन से हमारे अन्दर बड़ी आसानी से यह भावना पैदा हो जाती है कि हम बहुत छोटे हैं, हम इतने महत्त्वहीन हैं कि कोई हमारी ओर ध्यान ही नहीं देता। हमको बच्चों के विचारों का सम्मान करना चाहिए, उनका दिल रखने के विचार से उनको केवल सहन कर लेना काफी नहीं है। जब बच्चों की बात पर ध्यान नहीं दिया जाता या उनके साथ ऐसा व्यवहार किया जाता



है कि मानो वे किसी नाटक के ऐसे नगण्य पात्र हैं, जो मंच पर आते-जाते रहते हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या कि वे जीवन से विमुख हो जायँ और दूसरों से मिलना-जुलना छोड़ दें।

लोग बच्चों की बातों का बहुत मजाक उडाते हैं और इससे बच्चो को बहुत तकलीफ होती है। जब वे बहुत अबोध ढंग से कोई बात कहकर अपने भोलेपन और अज्ञान का प्रमाण देते हैं तो बड़े लोग उससे बहुत आनन्द प्राप्त करते हैं और हँस देते हैं। इस बात से बच्चा मन-ही-मन कुढ़ जाता है। यदि बच्चे बहुत ज्यादा बढ़-चढ़कर बातें करेंगे तो उनके स्कूल के साथी उनके घमण्ड को दूर कर देंगे, इसलिए इसकी कोई जरूरत नहीं है कि हम उनके ऊपर अपनी श्रेष्टता की धाक जरूरत से ज्यादा जमा दें।

'असमान' या अप्रिय होने की भावना

दूसरों की अपेक्षा निम्नतर होने की भावना का जन्म कभी-कभी इस कारण

भी होता है कि बच्चे अपने-आप में दूसरे बच्चों की तुलना में वास्तविक या कल्पित अन्तर देखने लगते हैं। यदि बच्चे मे कोई शारीरिक विकार हो तो यह समझना कठिन नहीं कि वह दूसरे बच्चों से मिलने-जुलने से क्यों घबराता है। यह संकोच केवल उस समय दूर हो सकता है जब उसके आत्म-विश्वास को दृढ़ बनाने का काफी प्रयत्न किया जाय। परन्तु कभी-कभी बच्चा केवल अपनी कल्पना मे यह समझने लगता है कि उसकी शक्ल-सूरत मे कोई विकार है। शायद उसने अपने माता-पिता को यह कहते सुना हो कि वह बिलकुल अपने चाचा को 'पड़ा है' और उसे स्वयं उन चाचा से नफरत हो। या सम्भव है कि किसी लड़की की आँख नीली और बाल भूरे हों और वह काले बालों और काली आँखों के पीछे दीवानी हो। यदि बच्चा इस प्रकार के कल्पित कारणों से दूसरों से बिलकुल ही मिलना-जुलना छोड़ देता है तो इस प्रवृत्ति को दूर करने के लिए ऐसे लोगों की जरूरत होती है जो बच्चों की भावनाओं को बहुत अच्छी तरह समझते हैं। यदि माता-पिता बच्चे के गुणों पर गर्व करें—उन गुणों पर जिनका उसे स्वय ज्ञान न हो—तो इससे बहुत लाभ हो सकता है।

अपने साथ के दूसरे बच्चों के मज़ाक उड़ाने पर बच्चे बहुधा बहुत दुखी हो जाते हैं जबकि वे बच्चे केवल ईर्ष्या के कारण ही उनको छेड़ते हैं। इस प्रकार की परिस्थिति बहुधा कपड़ों के सम्बन्ध में उठ खड़ी होती है जब बच्चों को उनके प्रतिरोध के बावजूद दूसरे बच्चों से ज्यादा अच्छे कपड़े पहनाए जाते हैं। यदि बच्चे के माता-पिता स्कूल जाकर दूसरे बच्चों को देखें तो वह समझ सकेंगे कि उनको अपने बच्चे के लिए किस प्रकार की चीजें खरीदनी चाहिएँ। यदि दूसरे बच्चे जीन के नेकर और ट्विल की कमीजें पहनते हैं तो उनको भी अपने बच्चे के लिए लगभग इसी प्रकार के कपड़े बनवाने पड़ेंगे और सम्भव है कि ऐसा करने में उनको अपनी पसन्द को तिलाञ्जलि भी देनी पड़े ताकि उनका बच्चा भी दूसरो के समान ही रहे।

बच्चों मे दूसरो से अलग रहने तथा जीवन से भागने की प्रवृत्ति बहुधा इस कारण भी पैदा होती है कि उनमें यह भावना पैदा हो जाती है कि लोग उनको चाहते नहीं हैं, उनसे प्यार नहीं करते हैं और उनको ठीक तरह समझते नहीं हैं। जो बच्चे बीच के होते हैं उनको बहुधा अपने माता-पिता का उतना ध्यान नहीं मिल पाता जितना सबसे बड़ी या सबसे छोटी सन्तान को मिलता है। माता-पिता को अपनी सबसे बड़ी सन्तान की आवश्यकताओं का ध्यान इसलिए रहता है कि उनको पहली बार इस प्रकार की समस्या का सामना करना पड़ता है। जब तक

दूसरा या तीसरा बच्चा स्कूल जाने योग्य होता है, या पढ़ना शुरू करता है, या अपने दोस्तों की दावतों में जाने लगता है तब तक ये सारी बातें उसके माता-पिता के लिए पुरानी हो चुकी होती हैं; उनको इन बातों में न कोई नयापन दिखाई देता है न कोई उत्साह ही प्राप्त होता है। सबसे छोटे बच्चे का भी अपना एक विशेष स्थान होता है। यदि हमसे यह बात कही जाय तो हमको बहुत बुरा लगता है और हम नाराज हो जाते हैं, पर यदि हम चाहें तो यह सम्भव हो सकता है कि 'बीच के बच्चों' के प्रति भी हमारे ध्यान में कोई कमी न हो।

जब स्कूल की पढ़ाई बच्चे को बहुत कठिन लगती है

स्कूल के अनुभवों के कारण भी बच्चे में अपने प्रति योग्यता के अभाव की एक भावना पैदा हो सकती है। 'किसी प्रश्न का उत्तर न जानने' के कारण बच्चे बहुधा क्षुब्ध हो जाते हैं। बार-बार असफल होने और गलतियाँ करने के बाद बच्चों के आत्म-विश्वास पर प्रभाव पड़े बिना कैसे रह सकता है, जबकि हमारे स्कूलों में अच्छे नम्बर पाने को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है और सबसे अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होने वाले बच्चों की प्रशंसा के पुल बाँध दिए जाते हैं?

बच्चों में अपनी नजर में स्वयं गिर जाने की प्रवृत्ति को रोकने में हम बहुत सहायता कर सकते हैं। वह इस प्रकार कि हम बच्चों की दूसरे बच्चों से तुलना न किया करें—न परिवार के दूसरे बच्चों के साथ न उनके स्कूल के साथियों से। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम हर बच्चे के प्रयत्न को सराहें, इस पर जोर न दें कि उसके साथ के दूसरे लड़कों में उसका कौनसा स्थान है और उसके काम को इस कसौटी पर जाँचें कि उससे कितनी सफलता की आशा करना उचित होगा। इसके लिए यह जरूरी है कि हमको उसके आम मानसिक स्तर का ज्ञान हो। यह बात स्कूल के अधिकारी हर बच्चे के माता-पिता को सहर्ष बताने के लिए तैयार रहते हैं।

हस्त-मैथुन

हस्त-मैथुन का उल्लेख स्पष्टतः योनि-सम्बन्धी शिक्षा के साथ करना अधिक उचित मालूम होता है। बच्चों में अपने-आपको निम्नतर समझने की भावना के साथ इसका उतना सम्बन्ध नहीं मालूम होता। लेकिन यहाँ इसका उल्लेख जान-बूझकर इसलिए किया जा रहा है कि इस बात पर जोर दिया जाय कि बच्चों की इस आदत का सम्बन्ध कितनी बड़ी हद तक भय और अपराध की भावनाओं से हो जाता है और इस प्रकार अपने-आप को निम्नतर समझने की भावना

से भी।

प्रायः सभी बच्चे कभी-न-कभी अपनी जननेन्द्रियों को छूते हैं। बच्चों के लिए अपने शिश्न को या अपनी योनि को छूना उतना ही स्वाभाविक होता है जितना शरीर के किसी दूसरे अंग को छूना। चूँकि शरीर के इन सहज उत्तेजित होने वाले अंगों को छूने से आनन्द प्राप्त होता है, इसीलिए यह समझना कठिन नहीं कि क्यों इतनी बार ये अंग उत्तेजित हो उठते हैं। चूँकि लड़के का शिश्न लड़की की योनि की अपेक्षा बहुत प्रमुख रूप से बाहर को निकला होता है इसलिए इस प्रकार के खेल लड़को मे लड़कियो की अपेक्षा ज्यादा स्वाभाविक रूप से प्रचलित होते हैं और शायद इसीलिए हस्त-मैथुन की आदत भी लड़कों मे ही ज्यादा प्रचलित होती है। जन्म-काल से ही लड़के का ध्यान अपने शिश्न की ओर आकर्षित होता है, क्योंकि उसके उसके शरीर के इस अंग में बार-बार स्तम्भन होता रहता है।

हस्त-मैथुन का शाब्दिक अर्थ यह है कि जननेन्द्रियों को कृत्रिम रूप से छेड़कर योनि-उत्तेजन पैदा करना। परन्तु जिस उम्र के बच्चों का हम यहाँ उल्लेख कर रहे हैं उनके सम्बन्ध में इस शब्द का प्रयोग करने से गलत अर्थ निकाले जा सकते हैं, क्योंकि बच्चों की जिस क्रिया को हम हस्त-मैथुन कह देते हैं वह अधिकांश मात्रा में वह नहीं होती जो इस शब्द का वास्तविक अभिप्राय है। कुछ बच्चे निश्चय ही जान-बूझकर अपने-आपको इस प्रकार उत्तेजित करके आनन्द प्राप्त करते हैं। परन्तु जो चीज माता-पिता को इस क्रिया के सम्बन्ध मे चिन्तित कर देती है उसका महत्त्व बच्चों की उन हरकतों से अधिक और कुछ नहीं होता जिनके द्वारा वे छोटी-मोटी पाबन्दियों तथा बलपूर्वक लादी गई निष्क्रियता का प्रतिरोध करते हैं। यह भी जरूरी है कि खेलते-खेलते संयोगवश जननेन्द्रियो को छू लेने मे और स्नायुओं की कमजोरी के कारण इसकी आदत पड़ जाने मे अन्तर किया जाय।

चाहे बच्चा कभी-कभी ही ऐसा करता हो या आनन्द प्राप्त करने के लिए वह जान-बूझकर बहुधा ऐसा करता हो, पर दण्ड देने से यह आदत कभी दूर नहीं हो सकती। बच्चे को डाँटने से, या किसी प्रकार इस आदत की निन्दा करने से या इस आदत के प्रति अस्वीकृति प्रकट करने से बच्चे में केवल अपराध की एक भावना जाग्रत होती है। बच्चे में यह भावना जाग्रत करना कि वह 'बुरा' है उसके व्यक्तित्व पर हमेशा के लिए बुरा प्रभाव डाल सकता है। यदि बच्चा अपनी भावनाओं के तनाव के कारण या किसी अभाव के कारण ऐसा करता है तो हमें इस संकेत चिह्न को

गहराई में पैठकर इसके कारण को ही दूर कर देना चाहिए। बच्चे के हृदय में जितनी कम चिन्ता और तनाव होगा वह उतनी ही आसानी से इस आदत को छोड़ देगा।

चूँकि इस आदत को दूसरी आदतों की अपेक्षा, जैसे नाखून काटने आदि की अपेक्षा, समाज में बहुत निन्दा की दृष्टि से देखा जाता है, इसलिए माता-पिता के लिए हस्त-मैथुन को बुद्धिमानी से रोकने में कठिनाई होती है। यदि वह यह समझ लें कि सख्ती करने से और दोष देने से बच्चे इसी काम को चोरी-छिपे करने लगेंगे तो शायद वे कभी उनको डाँटने-फटकारने का आधार न लें। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होने लगते हैं और यह समझने लगते हैं कि जिस काम को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है, वे उतनी ही चालाकी से ऐसे बहिष्कृत व्यवहार को छिपाने भी लगते हैं। हम यह तो नहीं चाहते कि बच्चा छिपकर अपने-आपको कृत्रिम उपायों से उत्तेजित करे। परन्तु यदि हम उसमें अपराध की भावना जागृत करेंगे तो वह ठीक यही करने लगेगा।

सम्भव है कि हम इस आदत की इतनी अधिक निन्दा केवल इसलिए करते हैं कि यह धारणा बहुत समय से प्रचलित है कि हस्त-मैथुन से मनुष्य पागल हो जाता है। परन्तु इस विचार में कोई तथ्य नहीं है। जहाँ तक मालूम हो सका है हस्त-मैथुन का मानसिक रोगों से केवल एक सम्बन्ध हो सकता है और वह यह कि सम्भवतः समाज में अस्वीकृत होने के कारण इस कर्म के फलस्वरूप जो अपराध की भावना पैदा होती है उससे मनुष्य की भावनाओं की उथल-पुथल में वृद्धि होती हो।

जो बच्चा सुखी है और यह अनुभव करता है कि लोग उसे चाहते हैं, उससे प्यार करते हैं और जिसे किसी बात का भय नहीं होता उसे किसी पलायन की आवश्यकता नहीं होती।

जब बच्चे की भावनाओं में सुरक्षा का आभास होता है और उसमें उसकी अवस्था के अनुसार समझ-बूझ और ज्ञान होता है, तो उसके साथ गम्भीर समस्या उत्पन्न नहीं हो सकती। जिस बच्चे की अपनी जननेन्द्रियों को छूने की आदत पड़ चुकी हो उसके माता-पिता को चाहिए कि वे बड़े ध्यान से इस बात पर विचार करें कि उनके बच्चे के जीवन की कौनसी परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिनके कारण उसकी भावनाओं में ऐसी गुत्थी पड़ गई हो जो इस आदत का कारण हो। यदि वे बच्चे की इस कठिनाई का कारण समझने में असमर्थ हों तो उनको किसी ऐसे अनुभवी

व्यक्ति की सलाह लेनी चाहिए जो बच्चों की प्रवृत्तियों को और उनको दूर करने के उपायों को भली भाँति जानता है।

अत्यधिक आक्रमणकारी प्रवृत्ति

अभी तक हमने ऐसे बच्चों का उल्लेख किया है जो जीवन की कठिनाइयों से भागते हैं, जो इन कठिनाइयों का सामना करने का केवल बहाना करते हैं। परन्तु कभी-कभी बच्चे अपनी समस्याओं पर बहुत बलपूर्वक प्रहार करते हैं। परन्तु शत्रु की स्थिति जाने बिना ही आँख मूँदकर उस पर प्रहार कर देना तो बुद्धिमानी नहीं है।

बच्चों के स्वभाव में एक आक्रमणकारी प्रवृत्ति होनी चाहिए, परन्तु अच्छे ढंग की आक्रमणकारी प्रवृत्ति। परन्तु एक दूसरे प्रकार का आक्रमण भी होता है—ऐसी हरकतें जिनसे दूसरे झुँझला जाते हैं, जिनसे दूसरों को परेशानी और उलझन होती है और उनको मुसीबत का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी इन हरकतों का केवल कुछ ही लोगों पर प्रभाव पड़ता है (जैसे जब कोई ७ बरस का बच्चा अपने पिता के साथ धृष्टता का व्यवहार करता है), परन्तु कभी-कभी ज्यादा लोगो पर भी इसका प्रभाव पड़ता है (जैसे जब कोई १० बरस का बच्चा स्कूल में चोरी करता है)। इस प्रकार के व्यवहार से बच्चे की कोई भी महत्त्वपूर्ण समस्या हल नहीं होती फिर भी यह प्रवृत्ति एक अच्छी खासी मुसीबत का महत्त्व रखती है। बच्चे के इस प्रकार के व्यवहार से यह पता चलता है कि बच्चा किसी कठिनाई में है और हम उसको दूर करने का कोई उपाय सोचने लगते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि हम किसी गलत उपाय का प्रयोग करते हैं, परन्तु फिर भी हम इससे इतने विचलित तो हो जाते हैं कि समस्या के अस्तित्व को स्वीकार करने लगते हैं।

झूठ बोलना, चोरी करना, दूसरो को धमकाना, चीजो को नष्ट करना आदि स्वस्थ व्यवहार नहीं कहे जा सकते, परन्तु इनसे बच्चो के माता-पिता और शिक्षक यह सोचने पर तो बाध्य होते हैं कि बच्चे में कोई अवगुण है।

झूठ बोलना

यद्यपि झूठ बोलने को सभी बुरा समझते हैं पर कोई भी आदमी पूर्णतः सत्यवादी नहीं होता। झूठ बोलने के साथ हमारे दिमाग में अनेक दूसरे कुकर्मों का विचार आता है क्योंकि इन्हीं कुकर्मों को छिपाने के लिए बहुधा झूठ का प्रयोग किया जाता है। चूँकि हम सच बोलने के साथ ईमानदारी और वफादारी आदि

गुणों को सम्बन्धित करते हैं और इन गुणों को हम प्रोत्साहन देना चाहते हैं इसलिए यदि बच्चे का व्यवहार हमारे इन अस्पष्ट आदर्शों के अनुकूल नहीं होता तो हम उसे दण्ड देते हैं।

यदि हम यह याद रखें कि झूठ बोलकर बच्चा केवल अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करता है तो हम इस बात की कोशिश कर सकते हैं कि उसे झूठ बोलने की इतनी ज्यादा जरूरत ही न पड़े। यदि अरुण दण्ड से बचने के लिए झूठ बोलता है तो क्या हमारे दण्ड देने के ढंग में कोई खराबी नहीं है?

बच्चों तथा उनके माता-पिता के बीच भय का कोई स्थान नहीं होना चाहिए, फिर भी बच्चे बहुधा केवल भय के कारण ही सच बात को छिपाते हैं। बच्चों के इस दोष का कारण बहुत बड़ी हद तक यह होता है कि उनको बहुत कठोर और क्रूर दंड दिया जाता है। अपने दोस्त की सायकिल माँगने पर या कोई ऐसी फिल्म देखने पर जिसे देखने के लिए उसके माता-पिता ने उसे मना किया था, उसके पिताजी उसे 'न जाने क्या दंड देंगे', अरुण के दिल में इस बात का जितना ही अधिक भय होगा उतना ही ज्यादा वह अपने पिताजी से यह बात छिपाने की कोशिश करेगा, चाहे उसे झूठ ही क्यों न बोलना पड़े।

बच्चों को सच बोलना जबरदस्ती नहीं सिखाया जा सकता। इसकी अपेक्षा हमको उनमें यह भावना पैदा कराने का प्रयत्न करना चाहिए कि परिस्थिति चाहे कितनी कठिन क्यों न हो पर सच बोलने का परिणाम झूठ बोलने की अपेक्षा हमेशा अधिक संतोषजनक होता है।

जब हम किसी बात को कबूल करवाने के लिए किसी बच्चे के पीछे पड़ जाते हैं और उससे घुमा-फिराकर तरह-तरह के प्रश्न करते हैं तब इसकी सम्भावना होती है कि बच्चे में यह भावना पैदा हो कि हम उस पर विश्वास नहीं करते। उसकी सुरक्षा की भावना को जितनी हानि इससे पहुँचती है उतनी शायद किसी और चीज से नहीं पहुँचती। यदि हम किसी बच्चे को झूठ बोलते हुए 'पकड़ लें' और इस पर अपने घोर तिरस्कार का प्रदर्शन करें तो बच्चा इसके अलावा कर ही क्या सकता है कि अगली बार झूठ बोलते समय वह पकड़े न जाने के लिए ज्यादा सावधान रहे!

बहुत से माता-पिता इसको अपना कर्तव्य समझते हैं कि वे बच्चे को यह स्वीकार करने पर मजबूर कर दें कि उसने झूठ बोला है। इसके विपरीत यदि वे बच्चे से केवल यह कह दें कि बहुत अफ़सोस की बात है कि वह उनको कुछ बातें

बताना नहीं चाहता तो यह सम्भव है कि फिर कभी वह उसी विषय पर उनसे खुलकर बात कर सके। यदि माता-पिता को इसमें सन्देह हो कि बच्चा सच बोल रहा है कि नहीं तो अच्छा यही है कि वे मान लें कि वह सच बोल रहा है और इस बात की प्रतीक्षा करें कि आगामी घटनाओं से सत्य का पता चल जायगा। सन्देह करने और अभियोग लगाने की अपेक्षा कोमलता, विश्वास तथा सहायता करने के लिए तत्परता के द्वारा भय की उस दीवार को ज्यादा आसानी से तोड़ा जा सकता है जो बच्चे और उसके माता-पिता के बीच बाधक होती है।

"सचाई की आदत डालने का इससे ज्यादा अच्छा, ज्यादा तर्कपूर्ण और विश्वस्त उपाय कोई दूसरा नहीं हो सकता कि बच्चे को ऐसे वातावरण में रखा जाय जहाँ उसके सामने सत्य का कोई उदाहरण हो जिसकी नकल करने की उसमें उत्सुकता पैदा हो।"

यह शब्द डाक्टर डगलस टॉम ने कई वर्ष पहले अमरीका की चिल्ड्रेन्स-ब्यूरो के लिए लिखे थे; पर यह आज भी उतने ही सत्य हैं जितने उस समय थे। यदि हम ईमानदारी के साथ अपने ३ बरस से बड़े बच्चे का आधा किराया दे दिया करें तो उस पर यह प्रभाव पड़ेगा कि १२ बरस का हो जाने पर वह सिनेमा में अपना पूरा टिकट खरीदेगा। इसका अर्थ यह होता है कि 'धोखे से' दूकानदार को कम पैसे देकर हम अपनी चालाकी की डींग न मारें बल्कि कम पैसे देने के विरुद्ध भी हम उतना ही सतर्क रहें जितना हम ज्यादा पैसे देने के विरुद्ध रहते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि यदि हमारी किसी गलती के कारण पुलिसवाला हमको सड़क पर रोके तो हम गलती को स्वीकार कर लें, यह साबित करने का प्रयत्न न करें कि हमारी कोई गलती नहीं थी। इसका अर्थ यह होता है कि चालाकी करने के बजाय या अपनी चालाकी को कानून की दृष्टि से सही प्रमाणित करने के बजाय, हम हर मामले में ईमानदारी बरतें।

जब बच्चे के झूठ का आधार भय की भावना पर न हो बल्कि वह केवल किसी बात को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर झूठी कहानी गढ़ रहा हो तो हमको यह सोचना चाहिए कि कहीं उसके इस व्यवहार के पीछे उसकी दबी हुई इच्छाओं का तो हाथ नहीं है। जब बच्चा ७ या ८ बरस का हो जाय तो उसे वास्तविक और कल्पित चीजों में अन्तर कर सकना चाहिए। मान लीजिए कि ६ वर्षीय सुषमा अपनी अध्यापिका से कहती है कि उसके माता-पिता उसे कहीं सैर कराने को ले जाने वाले हैं, जबकि इसके बारे में कभी कोई बात भी नहीं हुई, और उसकी अध्यापिका उसकी

इस बात में दिलचस्पी लेती है, तो आप कुछ परेशानी में पड़ जायँगे न! जरूर! लेकिन आपको यह सोचना चाहिए कि आखिर सुषमा को इस प्रकार अपना रोब जमाने की जरूरत क्या पड़ी थी न कि आप यह उपाय करने लगें कि वह इस प्रकार के कल्पित किस्से न गढ़ा करे। इसका आखिर क्या कारण हो सकता है? क्या उसे यह धारणा है कि उसका परिवार बहुत ही महत्त्वहीन है? क्या उसका जीवन इतना शुष्क है कि उसे किसी उत्तेजना की जरूरत है और वह इस किस्से को इसलिए प्रयोग करती है कि दूसरों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो? इस किस्से के पीछे कोई-न-कोई कारण तो जरूर होगा। उसका यह 'झूठ' अपने जीवन के किसी अभाव की पूर्ति का एक साहसमय पर निष्फल प्रयत्न है। बुद्धिमानी इसी में है कि हम उसकी इस 'लम्बी-चौड़ी कहानी' को केवल एक 'अच्छी कहानी' मानकर सन्तोष कर लें और यह समझें कि वह अपनी नव-जाग्रत कल्पना का प्रयोग कर रही है।

चोरी करना

चोरी का भी सार-तत्त्व वही होता है जो झूठ बोलने का होता है। हमको चोरी से इतनी नफरत होती है और अपने बच्चे को चोरी करते देखकर हमें इतना आघात पहुँचता है कि हम कोई गलत कदम भी उठा सकते हैं।

चोरी के सम्बन्ध में एक बात जो बहुत विस्मयजनक है वह यह कि बच्चे बहुधा ऐसी चीजें चुरा लेते हैं जिनका उनके लिए कोई प्रयोग नहीं होता। बच्चों में इस प्रकार की प्रवृत्ति इस बात की सूचक होती है कि वे अपने किसी ऐसे आन्तरिक संघर्ष को हल करने का प्रयत्न कर रहे हैं जो उनको हर समय परेशान करता रहता है। माधुरी एक ६ वर्ष की बालिका थी, जिसके पिता का देहान्त हो गया था। लाचार होकर उसकी माँ को काम करने के लिए जाना पड़ा और वह माधुरी को अपनी एक मित्र के पास एक बोर्डिंग हाउस में छोड़ आई। कुछ दिन बाद माधुरी की माँ को यह देखकर बहुत आश्चर्य और क्षोभ हुआ कि माधुरी दूसरों के कमरों से चीजें चुराने लगी थी (परन्तु हमेशा ऐसी चीजें जिसका उसके पास कोई प्रयोग नहीं था)। इस व्यर्थ की चोरी का कारण यह था कि वह चीज जिसके कारण वह सुरक्षित अनुभव करती थी उससे सहसा हमेशा के लिए छिन गई थी और यह चोरी उसी क्षति की प्रतिक्रिया थी।

यदि हम उसे दण्ड दें तो यह उसी प्रकार की बात होगी कि हम किसी डूबते हुए आदमी को और डुबा दें। इस उदाहरण से यह पता चलता है कि

चोरी की आदत छुड़ाने के लिए कोई ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता जो सब बच्चों पर एक समान लागू किया जा सके। हर बच्चे के व्यवहार को उसकी किसी कठिनाई का सूचक समझना चाहिए। और चिकित्सक रोग के सूचक-चिह्नों का इलाज नहीं बल्कि स्वयं रोग का इलाज करता है। सूचक-चिह्नों की सहायता से वह रोग का पता लगाता है।

चोरी बच्चों का एक ऐसा व्यवहार है जिसे समझना सबसे कठिन है। शायद यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि कभी-कभी बच्चे केवल इस कारण चोरी करने लगते हैं कि बड़े लोग इसे बहुत गम्भीर दोष समझते हैं; इसलिए बच्चे इसे अपने प्रतिरोध और अपनी आन्तरिक उद्विग्नता को व्यक्त करने का सबसे अच्छा साधन समझने लगते हैं। वास्तव में यह लक्ष्य वे जान-बूझकर नहीं बनाते बल्कि अनायास ही अन्दर-ही-अन्दर उनमें यह प्रवृत्ति काम करती रहती है।

अमर इस कारण भयभीत और परेशान रहता है कि उसके माता-पिता दोनों उसे नहीं चाहते। उसके माता-पिता तलाक ले चुके हैं और दोनों ने फिर विवाह कर लिया है। कुछ महीने एक के साथ रहने के बाद किसी बहाने से वह दूसरे के पास भेज दिया जाता है। अपनी इस व्यथा के कारण वह चोरी करने लगता है यद्यपि उसे खर्च करने के लिए काफी पैसे मिलते हैं। दण्ड देने का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अनजाने ही उसने अपनी दबी हुई भावनाओं को व्यक्त करने का एक ऐसा साधन ढूँढ लिया है जिसके कारण उसकी माता और उसके पिता दोनों को ही बहुत उलझन होती है। वह यदि बीमार पड़ जाय, या उदास रहने लगे या भाग जाय तो उनको इतनी चिन्ता न हो। परन्तु उसके इस व्यवहार से वह लज्जित होते हैं क्योंकि इसे समाज में बुरी दृष्टि से देखा जाता है। इस परिस्थिति में जब तक वह कारण नहीं दूर किया जायगा जिससे बच्चे को व्यथा पहुँचती है तब तक उसकी चोरी की आदत नहीं छुड़वाई जा सकती।

जब बच्चे पैसे चुराकर अपने दोस्तों पर खर्च करने लगते हैं तो हमको समझना चाहिए कि वे ज्यादा लोकप्रिय बनना चाहते हैं और दूसरों से दोस्ती बढ़ाना चाहते हैं। कभी-कभी चोरी के कारण बच्चों की उन महत्त्वपूर्ण इच्छाओं का पता चलता है जो पूरी नहीं हो पातीं। यदि दस-वर्षीय अखिल अपनी माँ से गेंद माँगता है तो पैसे की कमी के कारण इन्कार करने से पहले माँ को यह पता लगाना चाहिए कि गेंद का उसके जीवन में कितना महत्त्व है।

बच्चे के व्यवहार को कोई विशेष नाम दे देने से आखिर क्या लाभ होता है? यदि हम इसके द्वारा उस व्यवहार के कारणों का पता लगाकर उनको दूर करने का उपाय न करें तो सचमुच कोई भी लाभ नहीं है। यदि सुधा कभी-कभी रूठ जाती है और कमरा बन्द करके फूट-फूटकर रोती है, या विजय लाख कहने पर भी ठीक समय पर घर लौटकर नहीं आता तो यदि हम उनकी इन हरकतों को कोई विशेष नाम दे दें या उनकी व्याख्या कर दें तो यह इस व्यवहार के कारणों का पता लगाने और उनको दूर करने की ओर केवल पहला कदम होता है।

चाहे बच्चा ऐसे काम करता हो जिनसे हमको चिन्ता होती हो या वह ऐसे काम न करता हो जिनका करना हम स्वाभाविक समझते हैं, तो दोनों दशाओं में हमें इस व्यवहार के कारण का पता लगाना चाहिए।

जब चोरी वास्तव में चोरी नहीं होती

यदि ६ बरस का कोई बच्चा अपनी माँ के बटुए में से पैसे निकाल लेता है तो यह चोरी हो भी सकती है और नहीं भी। इसका निर्णय इस पर होता है कि उसे पहले किस प्रकार की शिक्षा दी गई है। संभव है कि वह केवल वही कर रहा हो जो उसने अपनी माँ को करते देखा है। चूँकि बच्चे को इस अवस्था में पैसे के वास्तविक महत्त्व का बहुत कम ज्ञान होता है। वह बस इतना जानता है कि पैसों के बदले में दूसरी चीजें ली जाती हैं, इसलिए वह उनका भी उसी प्रकार प्रयोग करता है जैसे वह कैंची या हथौड़ी का करता है। उसे हथौड़ी या कैंची लेने के लिए किसी से पूछने की जरूरत नहीं होती; इसी प्रकार वह शुरू-शुरू में पैसे भी किसी से पूछकर नहीं लेता।

चूँकि दूसरी उपयोगी वस्तुओं की अपेक्षा पैसों को बिलकुल दूसरी दृष्टि से देखा जाता है, इसलिए हमको शुरू से ही बच्चों को इस बात की शिक्षा देनी चाहिए कि वे इस प्रकार की गलती न करें। यदि हम बच्चों को शुरू से ही हथौड़ी और पैसों का अन्तर न बताएँ कि हथौड़ी तो वे फिर वापस रख देते हैं पर पैसे नहीं रखते, और बाद में कोई समस्या उठ खड़ी हो तो दोष हमारा ही है।

यदि बच्चा कोई चीज खरीदना चाहता है या उसे किसी चीज की जरूरत है तो हम बहुधा उससे कह देते हैं, 'जाओ, जाकर मेरे बटुए में से एक रुपया निकाल लो।' जब बच्चा देखता है कि यह इतनी सीधी-सादी सी बात है तो वह

दुबारा पूछने की भी जरूरत नहीं समझता। माता-पिता भी हमेशा अपने बच्चों के साथ ईमानदारी का बरताव नहीं करते। यदि वे बच्चे के लिए कहीं पैसे जमा करके रखते हैं और जरूरत पड़ने पर, दूध वाले को या अखबार वाले को पैसे देने के लिए, यदि बच्चे से बिना पूछे ही वे उसके पैसों में से पैसे निकाल लेते हैं तो यह उतनी ही बड़ी चोरी है जितनी बच्चे का बिना पूछे अपनी माँ के बटुए में से पैसे निकाल लेना।

यदि हम चाहें तो बच्चों के पैसे चुराने की समस्या कभी पैदा ही न हो, परन्तु जब हम इधर-उधर पैसे छोड़ देते हैं या जब हम इसका कोई हिसाब नहीं रखते कि हमारे बटुए में कितने पैसे हैं तो बच्चे को पैसे चुराने का लालच होता है। और यदि इस प्रकार की छोटी-मोटी चोरियों को देखकर भी हम टाल जाते हैं तो फिर बच्चे की आदत ही इस प्रकार की पड़ जाती है। बच्चा शुरू में तो अपनी अबोधता के कारण ही ऐसा करता है, पर जब वह बड़ा होकर ज्यादा समझने लगता है तब भी यह आदत नहीं छूटती।

आप कहेंगे, 'लेकिन मैं अपने बच्चों पर विश्वास रखना चाहता हूँ।' परन्तु जब तक आपको उनके हाथों पर पूरा भरोसा नहीं होता तब तक आप उनके हाथों में अपने अच्छे-अच्छे चीनी के बर्तन तो नहीं सौंप देते। जिस प्रकार उनके स्नायु अभी इस योग्य नहीं होते कि वे चीनी की प्लेटों को सँभालकर ले जा सकें, उसी प्रकार उनका मस्तिष्क भी इतना प्रौढ़ नहीं होता कि वे पैसे को समझ-बूझकर खर्च कर सकें।

बच्चा अपने माता-पिता के कहने के अनुसार ही चीजों को 'अच्छा' या 'बुरा' समझने लगता है। 'बुरे' कामों को न करने की योग्यता उसमें धीरे-धीरे ही पैदा होती है। इसलिए जब बच्चे में यह शक्ति धीरे-धीरे बढ़ रही हो उस समय हमें उसकी हर प्रकार सहायता करनी चाहिए, न कि हम उसे 'बुरे' काम करने के लिए लोभ दें।

बच्चों को बहुत शुरू से ही खर्च करने के लिए कुछ पैसे देने के पक्ष में एक तर्क यह है कि इस प्रकार उनको यह अन्तर समझ में आने लगता है कि कौन-सी चीज उनकी है और कौनसी नहीं। हम सबने यह देखा होगा कि ३ बरस के बच्चे लाख प्रयत्न करने पर भी यह बात पूरी तरह नहीं समझ पाते कि वे माँ की किताबों को क्यों न छुएँ। यदि हम निरन्तर रूप से ध्यानपूर्वक बच्चे को शिक्षा दें तो ७ या ८ बरस का बच्चा इस बात को अच्छी तरह समझ सकता है कि दूसरों

की चीजें छूने का उसे कोई अधिकार नहीं है—वह चीज कुछ भी हो, चाहे पड़ोसी के बाग के फूल हों, या दूकान में रखे हुए सेब हों, या कहीं रखे हुए पैसे हों।

भाग जाने की आदत

चूँकि स्कूल से या घर से भाग जाना एक सक्रिय व्यवहार है, जिसके द्वारा बच्चा अपनी परेशानी को दूर करने का प्रयत्न करता है, इसलिए हम इसे उसका आक्रमणकारी व्यवहार समझकर चौंक उठते हैं और उसको ठीक करने का उपाय सोचने लगते हैं, यद्यपि यह बच्चे का केवल जीवन की कठिनाइयों से 'भागने' का प्रयत्न होता है। शायद हर बच्चे का घर से या स्कूल से भाग जाने का कारण अलग-अलग होता है। बच्चे इसलिए भाग जाते हैं कि उनको यह विचार होने लगता है कि घर पर लोग उससे प्यार नहीं करते या कोई उसे चाहता नहीं, या स्कूल से उसकी तबियत ऊब जाती है, या पढ़ाई उसे कठिन मालूम होती है, और वह समझने लगता है कि स्कूल एक कैदखाना है। जब उनमें यह धारणा पैदा हो जाती है कि वे उतनी सफलता नहीं प्राप्त कर सके हैं जितनी कि उनसे आशा की जाती थी और वे इस विषय में कुछ और करने में अपने-आपको असमर्थ पाते हैं, तब वे अपने-आप से भागने के लिए घर या स्कूल छोड़कर चले जाते हैं। १९२९ और १९३० के आर्थिक संकट के काल में बहुत से लड़के इसलिए घर छोड़कर भाग गए कि वे अपने गरीब परिवार पर भार बनना नहीं चाहते थे।

यदि इन में से किसी भी कारण का पता चल जाय तो उसको दूर करने का उपाय किया जा सकता है। परन्तु जब बच्चा किसी नये प्रकार के जीवन की खोज में, जिसमें ज्यादा उत्तेजना हो और जहाँ उसे अपने-आपको व्यक्त करने का ज्यादा अवसर मिल सके, घर छोड़कर भाग जाता है तो उसकी समस्या को हल करना ज्यादा कठिन होता है। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है, बच्चे अधिक काल तक अपने परिवार पर निर्भर रहने लगे हैं। पहले की अपेक्षा अब लड़के और लड़कियाँ जीविका कमाना ज्यादा देर में आरम्भ करते हैं और पहले की अपेक्षा अब वे स्कूलों और कालेजों में ज्यादा समय तक पढ़ने लगे हैं। इसके साथ ही अब ऐसे उपाय भी कम हो गए हैं जिनके द्वारा छोटे बच्चे पैसे कमा सकें और अपने-आपको समाज का एक उपयोगी सदस्य समझ सकें। इन सब कारणों से यह जरूरी हो गया है कि हम बच्चे की किशोरावस्था की ओर अधिक ध्यान दें क्योंकि उस अवस्था में पहुँचकर बच्चे के विकास के लिए यह जरूरी होता है कि वह अपने घर

से अलग हो जाय।

रात-भर के लिए पिकनिक पर चले जाना, कई दिन के लिए साइकिल की सैर को कहीं चले जाना, किसी कैम्प के साथ कई दिन के लिए चले जाना, स्काउट संस्था में भाग लेना, तथा घर पर थोड़े-बहुत औजारों से एक छोटा-मोटा कारखाना बनाकर कोई हुनर सीखना—यह सब उपाय ऐसे हैं जिनके द्वारा बच्चे की स्वतन्त्र जीवन की इच्छा को सन्तुष्ट किया जा सकता है। किशोरावस्था की उमगें लड़कियों में लड़कों जैसी तो नहीं होतीं पर होती जरूर हैं। 'बड़ा' समझा जाने को, तथा स्वतन्त्र व्यवहार का अवसर पाने को लड़के और लड़कियाँ दोनों ही महत्त्व देते हैं। यदि हम सहानुभूतिपूर्वक स्कूल जाने वाले बच्चों की बढ़ती हुई जरूरतों को समझने के बजाय उनकी ओर ध्यान न दें तो निश्चय ही आगे चलकर बच्चे की किशोरावस्था मे हमें कठिनाई का सामना करना पडेगा। लड़कों की अपेक्षा बहुत कम लड़कियाँ घर से 'भाग जाती' हैं, परन्तु यदि उनकी जरूरतो को हम पूरी तरह पूरा करने का प्रयत्न न करें तो सम्भव है कि वे मानसिक रूप से और अपनी भावनाओं में हमसे दूर होती चली जायँ।

परिवारों की कुछ विशेष समस्याएँ



१. गोद लिया हुआ बच्चा

यदि बच्चे को बहुत छोटी अवस्था में ही गोद ले लिया जाय तो उसके माता-पिता को उसके लालन-पालन तथा उसकी शिक्षा का पूरा अवसर मिलता है और बच्चे में भी सुरक्षा के अभाव की भावना पैदा नहीं होती, परन्तु यदि बच्चे को बार-बार अपने-आपको विभिन्न परिवारों के अनुकूल बनाना पड़े तो निश्चय ही उसमें इस प्रकार की भावना पैदा होती है। बच्चे को जितनी ही कम उम्र में गोद ले लिया जाता है उतना ही ज्यादा उसके माता-पिता को इस बात का अवसर मिलता है कि वे उसे बढ़ता हुआ देखकर प्रसन्न हो सकें।

परन्तु वे माता-पिता जो किसी शिशु को या बहुत छोटे बच्चे को गोद लेते हैं उनके ऊपर एक विशेष उत्तरदायित्व भी होता है, क्योंकि बच्चे को किसी दूसरे घर की याद नहीं होती। अर्थात्, जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाय उसे इस बात का धीरे-धीरे ज्ञान करा देना चाहिए कि वह गोद लिया हुआ बच्चा है ताकि बाद में किसी दूसरे से यह बात मालूम करके उसे आघात न पहुँचे।

पर उसे बताया ही क्यों जाय? क्योंकि अनुभव हमें बताता है कि उसे न बताना उसके साथ कोई उपकार करना नहीं है बल्कि इसके फलस्वरूप कोई दुखान्त घटना हो सकती है। इस बात के अनेकों उदाहरण हैं कि माता-पिता ने बच्चे से यह बात छिपाई है कि वह उनका बच्चा नहीं है और बाद में जब बच्चे को कहीं बाहर से सहसा और अत्यन्त क्रूर ढंग से इसका ज्ञान हो गया तब उसका व्यवहार उनके दिल पर डंक की तरह चुभने लगा। यह विश्वास करना असम्भव है कि यदि उसके माता-पिता उसके गोद लिए जाने की बात उससे छिपाएँ तो वह ऐसा व्यवहार नहीं करेगा।

इस प्रकार का अनुभव सर्वथा व्यर्थ है। यदि बच्चे को धीरे-धीरे इसका ज्ञान हो जाय कि परिवार में उसका क्या विशेष स्थान है, तो जैसे-जैसे वह अपनी स्थिति का वास्तविक महत्त्व समझता जायगा वह अपने-आपको परिस्थिति के अनुकूल बनाता जायगा। ६ बरस की अवस्था में वह केवल मोटे तौर पर यह

समझ सकता है कि अपनी सन्तान में और गोद लिये हुए बच्चे में क्या अन्तर होता है। यदि उसके माता-पिता बहुत सीधे-सादे ढंग से बिना अपनी भावनाओं का प्रदर्शन किये हुए उसे यह बात समझा दें तो वह आसानी से संतुष्ट हो जायगा।

जो बच्चा यह जानता है कि वह 'पसंद किया हुआ' बच्चा है, जिसे एक खाली स्थान को भरने के लिए चुना गया है, तो उसमें एक सुखद भावना जाग्रत होती है कि उसे लोग विशेष रूप से चाहते है।

जो माता-पिता गोद लेते हैं उनमे भी विश्वास पैदा होने की बहुत जरूरत होती है। उनको कभी-कभी यह अनुभव होने लगता है कि उनके मित्र और पड़ोसी उनके बच्चे को आलोचना की दृष्टि से देखते हैं और उसके बारे में अपने निष्कर्ष के अनुसार राय कायम करते हैं। वास्तव मे गोद लेने वाले माता-पिता स्वयं ही अपने पालन-पोषण के ढंग और उसके फल के प्रति सबसे ज्यादा आलोचनात्मक होते हैं। यह निश्चित न कर सकने के कारण कि वे अपने बच्चे से क्या आशा करें, वे उसे उससे ज्यादा ध्यान से देखने लगते हैं जितना कि वह स्वयं अपनी सन्तान को देखते। यद्यपि अपनी सन्तान की योग्यता और उसके व्यवहार के बारे में भी वह कुछ अधिक निश्चित नहीं कर सकते थे पर यह बात समझना उनके लिए कठिन होता है। गोद लिये हुए बच्चे को पालते समय उसके बारे में चिन्ता करना व्यर्थ ही नहीं बल्कि हानिकारक भी है। हमारा कर्तव्य यह होना चाहिए कि हम उसके चारों तरफ ऐसे वातावरण की रचना करें जो उसके अन्दर के सर्वोत्तम गुणों को विकसित कर सके। गोद लिया हुआ बच्चा भी अपने माता-पिता के कुछ ऐसे गुणों को विकसित करने में सहायक होता है जिनका उनको ज्ञान भी नहीं होता। क्योंकि वह अपने माता-पिता की भावनाओं को अपने वश में कर लेता है, इसलिए उनके रवैये को बदलने मे उसका बहुत बड़ा हाथ होता है। माता-पिता का भी उतना ही विकास होता है जितना गोद लिये हुए बच्चे का होता है।

जब बच्चे को किसी ऐसे परिवार में रख दिया जाता है जिसका वातावरण उसकी आम मानसिक योग्यता से बहुत ऊँचा या बहुत नीचा होता है तो इसका परिणाम बहुत दुखान्त होता है। इस दुर्घटना से बचने के लिए यह बहुत जरूरी है कि बच्चे को गोद लेने से पहले बच्चे तथा गोद लेने वाले परिवार दोनों का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लिया जाय।

इसके साथ ही गोद लेने वाले माता-पिता को दूसरे माता-पिता की ही

तरह अपने व्यवहार का भी ध्यान रखना चाहिए कि वे अपने बच्चों से जरूरत से ज्यादा की आशा न रखें, और न गलत किस्म की आशा रखें। बहुत से लोग जो बच्चे गोद लेते हैं उनको यह भय लगा रहता है कि बच्चा आगे चलकर शायद 'अच्छा न निकले' और इस कारण वह उस पर इतना ज्यादा दबाव डालते हैं और उसके बारे में इतने चिन्तित रहते हैं कि सचमुच समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। गोद लेने वाले माता-पिता को भयरहित, चिन्ताहीन वातावरण का महत्त्व समझना चाहिए और प्रयत्न करके ऐसे वातावरण की रचना करनी चाहिए, क्योंकि इसी के द्वारा सुखी पारिवारिक जीवन की रचना हो सकती है।

२. सौतेले माता-पिता, ससुराल के सम्बन्धी, और दादा-दादी तथा नाना-नानी

सौतेले माता-पिता

सौतेले माता-पिता के सामने ऐसी कौनसी विशेष समस्याएँ होती हैं जो सगे माता-पिता के सामने नहीं होतीं ? सबसे पहले तो यह कि उनको बहुधा बच्चे की उन स्मृतियों का सामना करना पड़ता है जिनके बारे में बच्चा बहुत संवेदनशील होता है। चाहे उसे अपने असली माता या पिता की याद न भी हो पर सम्भव है कि, यदि उनकी मृत्यु हो गई है तो, उनकी इतनी प्रशंसा की गई हो कि वे उसे कोई ऐतिहासिक महान् व्यक्ति मालूम होने लगें या, माता-पिता अलग रहने लगे हैं तो, उनकी इतनी बुराई की गई हो कि उसको उनसे घृणा होने लगे।

चूँकि माँ का बच्चे से ज्यादा घनिष्ठ सम्बन्ध होता है इसलिए शायद सौतेले बाप की अपेक्षा सौतेली माँ को अपने व्यवहार को उचित बनाने की ज्यादा जरूरत होती है। इसके अतिरिक्त वह उस व्यक्ति के स्थान पर होती है जो बच्चे के पहले और सबसे घनिष्ठ प्रेम का पात्र होता है। वह सौतेली माँ बहुत भाग्यशाली होती है जिसे बहुत छोटे-छोटे बच्चों का भार सँभालना पड़ता है। ऐसी दशा में न तो बच्चों को अपनी माँ के साथ एक दीर्घकालीन लगाव स्थापित करने का अवसर मिला होता है और न वे कई भिन्न लोगों की देख-रेख में रहे होते हैं जैसा कि अधिक उम्र वाले बच्चो के साथ बहुधा होता है।

नये घर में आने पर सौतेली माँ को जिस बात की सबसे पहले जरूरत होती है वह है अपने बच्चों से प्यार करने के लिए तैयार रहना। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह फौरन उनके प्रति अपने प्रेम का प्रदर्शन करने लगे या आशा करने लगे कि वे उसे माँ कहकर पुकारें, क्योंकि प्रेम बहुत धीरे-धीरे पैदा होता है। यदि

सौतेली माँ सचमुच उनकी देख-रेख करना चाहती है तो उसे उनको स्वीकार करने के लिए पहले अपने मन को दृढ़ बना लेना पड़ेगा। यदि वह समझती है कि बच्चे बहुत 'बिगड़े हुए' या 'शरीर' हैं या वह उनमें बहुत सी अरुचिकर बातें देखती है तो उसे बडी कठिनाई होगी। परन्तु यदि वह इस प्रकार सोचती है कि वे दुर्भाग्य का शिकार हैं और वे उससे आशा करते हैं कि वह उनके जीवन को सुखी बना सकती है तो उनका अरुचिकर व्यवहार उसे इतना बुरा न मालूम होगा।

जब बच्चों की अपनी माँ को यह समझने की जरूरत होती है कि बच्चे कैसे हैं, और उनमे एक-दूसरे मे क्या अन्तर है तब एक ऐसे आदमी के लिए तो, जिसे बीती हुई बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता, यह और भी जरूरी हो जाता है। यदि जयन्त बहुत चुलबुला और शरीर है और नलिनी अपने कमरे की सफाई की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देती और दोनों बच्चे काम से जी चुराते हैं, तो उनका यह व्यवहार किसी भी आदमी को चक्कर में डाल देगा। परन्तु नई माँ के लिए तो यह और भी चक्कर में डाल देने वाली बात होगी, क्योंकि उसे इस बात का कोई भी ज्ञान नहीं होगा कि वह उनका सहयोग कैसे प्राप्त करे या उनमे काम करने की रुचि कैसे जाग्रत करे। इसका अर्थ यह होता है कि वह बहुत धीरे-धीरे उनको सही रास्ते पर लगाने का प्रयत्न करें। यदि वह जल्दी करेगी और यह आशा रखेगी कि बच्चे भी उसके साथ उतनी ही जल्दी प्रेम करने लगेंगे जितनी जल्दी उनके पिता करने लगे थे तो यह उसकी भूल होगी। वास्तव में उसके प्रति उनके पिता का प्रेम राह में बाधक भी हो सकता है। शुरू-शुरू में सभवतः वे उससे नाराज रहेंगे, क्योकि उसके कारण उनको अपने पिता का भी उतना प्यार नहीं मिल पाता जितना पहले मिलता था।

ऐसी कठिन परिस्थिति को दूर करने के लिए कुछ दिन तक प्रतीक्षा करके बच्चों का ध्यान से अध्ययन करना जरूरी है। इसका अर्थ यह होता है कि उसे बहुत सी ऐसी बातों को सहन करना सीखना होगा जो साधारणतः उसे कष्ट पहुँचाती हैं।

एक सौतेली माँ की १२-वर्षीय बेटी को अपने बाल बहुत बुरे लगते थे। उसने बड़ी चालाकी से फौरन उसके बालों को घुँघराला करवाकर लडकी के दिल में यह भावना जाग्रत कर दी कि उसे उसकी इच्छाओं का बड़ा ध्यान रहता है। इसी प्रकार दूसरी सौतेली माँ ने अपने बेटे की इस बात का समर्थन करके उसका मन मोह लिया कि वह अब इतना बड़ा हो गया है कि उसे सायकिल ले दी जाय। माँ

ने पहले से ही उसके पिता से इस विषय में बात कर ली थी)।

वच्चे अपनी मा के गुणों में जिस चीज़ को बहुत 'महत्त्वपूर्ण' समझते हैं वह है उसकी खाना पकाने मे निपुणता। इसलिए यदि थोड़ा सा प्रयत्न करके इस बात का पता लगा लिया जाय कि बच्चों को खाने की कौनसी चीजें पसन्द हैं तो सौतेली माँ भी बच्चो का सम्मान आसानी मे प्राप्त कर सकती है। स्कूल के काम मे बच्चे की सहायता करना, चोट लग जाने पर उसके साथ सहानुभूति दिखलाना, उसकी खुशी मे साथ देना बच्चे से परिचय बढ़ाने के कुछ सरल उपाय हैं।

बच्चों की खराबियों की ओर बहुत ज्यादा ध्यान न देना तो ऐसी बात है जो स्वयं उनकी माताओं को भी करनी चाहिए। परन्तु सौतेली माताएँ इससे बहुत लाभ उठा सकती हैं कि यदि उनके बच्चे में कोई खराबी है तो वे ऐसा जताएँ कि उनको उस खराबी का कोई ज्ञान ही नहीं है।

नये माता-पिता को बच्चों की आदतें बदलने की भी ज़रूरत पड़ती है। बच्चों की खाने-पीने की आदतें संभव है खराब हों या उनका रहन-सहन का ढंग भी अस्त-व्यस्त हो। नई माँ के लिए यह स्वाभाविक है कि वह परिवार के रहन-सहन के ढंग को अपने विचारों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करे। परन्तु एक दिन मे सब कुछ बदल देने की आशा रखना मूर्खता होगी। यदि हम अधीरता से काम लें और यह न समझें कि पुरानी आदतों के बजाए नया ढंग सिखाने मे सुगम-से-सुगम परिस्थितियों में भी काफी समय लगता है, तो हम अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकते। यदि किशन को बरसों से दूध न पीने की आदत पड़ी हुई है, या वह अपने कपड़े उतारकर ठीक जगह पर नहीं रखता, तो संभव है उसकी यह आदतें ठीक करने के लिए हमें बहुत घुमा-फिराकर कोई लम्बा रास्ता अपनाना पडे। (संभव है कि हमें उसे किसी ऐसे व्यक्ति का उदाहरण देना पड़े, जिसे वह बहुत प्यार करता हो, कि वह भी दूध पीता है और इसीलिए वह इतना स्वस्थ है।)

सगे माता-पिता की तरह यदि सौतेले माता-पिता भी आपस में बच्चे की शिक्षा आदि के बारे में सहमत हों तो कोई विशेष अड़चन पैदा न होगी। यह तो आशा नहीं की जा सकती कि हर मामले में वे एक-दूसरे से सहमत होंगे, परन्तु यदि माता और पिता दोनों का दृष्टिकोण समान है और वह दोनों यह समझते हैं कि उनको बहुधा दूसरे के विचारों के साथ समझौता भी करना होगा, तो वे समस्याओं को आसानी से हल कर सकेंगे।

ससुराल के सम्बन्धी

हम इस बात को मानकर क्यों चलते हैं कि ससुराल के सम्बन्धियों से किसी की निभना असम्भव-सा है ? हम सबने ऐसे उदाहरण देखे होंगे जिनमें ऐसे लोग, जिनका सम्बन्ध केवल विवाह के द्वारा स्थापित हुआ है, एक दूसरे को अच्छी तरह समझते हैं और उनकी बहुत अच्छी तरह निभती भी है; परन्तु हमको केवल वही उदाहरण याद रहते हैं जिनमे आपस में लड़ाई-झगड़ा रहता है, जैसे हमको उन लोगों का उदाहरण ज्यादा याद रहता है जो एक-दूसरे को तलाक़ दे देते हैं पर उन असंख्य लोगों का उदाहरण नही याद रहता जो सुखी विवाहित जीवन व्यतीत करते हैं।

हम बहुधा यह भूल जाते हैं कि सासो के सम्बन्ध मे जो बहुत से मजाक प्रचलित हैं उनका भी एक आधार है जिसका हमारे व्यवहार से बहुत गहरा संबंध है। कभी-कभी संघर्षों के मूल कारण का पता लगाना बहुत लाभदायक होता है। बच्चे की प्रेम की भावना का उल्लेख करते समय यह बताया गया था कि बच्चा सबसे पहले अपनी माँ से प्रेम करता है। अपनी माता (और पिता) के प्रति गहरा और दृढ़ लगाव होने का इस बात से बहुत गहरा सम्बन्ध होता है कि आगे चलकर बच्चा अपने विवाहित जीवन को सुखी बना सके, पर यदि यह लगाव जरूरत से ज्यादा गहरा है तो इसका परिणाम उलटा हो सकता है। वह लड़का जो अपनी माँ को एक आदर्श स्त्री समझता है और अपनी पत्नी में भी वही गुण ढूँढता है जो उसे अपनी माँ में अच्छे लगते थे, तो सम्भव है, कि वह अपनी पत्नी की भावनाओं को ठेस पहुँचाए। वह अपनी पत्नी की तुलना अपनी माँ से करने लगता है और अपनी माँ के आदेशो का आँख बन्द करके पालन करता है। इसी प्रकार जब लड़की अपने पिता को बहुत चाहती है और अपने पति में उन्हीं गुणों को ढूँढती है तो उसकी ओर से वही समस्या खड़ी हो जाती है।

इसका परिणाम पति-पत्नी दोनों के लिए ही बहुत कष्टदायक होता है। अपने माता या पिता के गुणो के महत्त्व को जितनी अच्छी तरह हम समझेंगे उतनी ही आसानी से हम उनका अक्षरशः अनुसरण करने से मुक्त हो सकेंगे और इस बात को समझ सकेंगे कि हमको बहुत पहले ही इस योग्य बन जाना चाहिए था कि हम आँख-मूँदकर उनमें जकड़कर न रह जायें।

यदि हम अपने माता-पिता के प्रति बचपन मे पैदा होने वाली प्रेम की भावना को तथा उन पर अवलम्बित रहने की प्रवृत्ति को केवल एक बचपन की बात

समझकर उसे त्याग सकें तो हमारा पारिवारिक जीवन ही अधिक सुखमय और चिन्तारहित नहीं होगा बल्कि इसकी भी सम्भावना कम हो जायगी कि हमारे बच्चे बड़े होकर शादी करने के बाद उन्हीं पुराने परम्परागत झगड़ों में न फँस जायँ।

दादा-दादी, नाना-नानी आदि

बच्चा बहुधा अपने दादा-दादी और नाना-नानी आदि से बहुत प्रेरणा प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त उनके साथ सम्बन्ध अन्य लोगों के सम्बन्ध की अपेक्षा बच्चों को सबसे ज्यादा प्रिय होता है।

किसी परिवार में कई पीढ़ी के लोगों का रहना उसी हद तक सफल हो सकता है जितना उन सब लोगों की भावनाओं में संतुलन हो। यदि परिवार का कोई एक व्यक्ति भी अस्थिर प्रकृति का है और सबसे ज्यादा अधिकार चाहता है तो वह, चाहे पुरुष हो या स्त्री, दूसरों का जीवन इतना दुखमय बना सकता है कि दूसरे लोग परेशान आकर उसकी इच्छाओं को पूरा करने में ही कुशल समझें। जैसा कि हर तानाशाह का नियम होता है, इस प्रकार के लोगों से भी जितना दबते जाओ उतना ही वे अपनी माँगों को बढ़ाते जाते हैं।

जब दो पीढ़ियों के विचारों में टकराव होता है तो बहुधा बच्चे उसमें पिस जाते हैं। यदि बच्चे की नानी बच्चे की माँ के पालन-पोषण के ढंग की आलोचना करती है और उसमें हस्तक्षेप करती है तो माँ झुँझलाकर नानी से कुछ कहने के बजाय उल्टे बच्चे पर ही अपना क्रोध उतारती है।

जब इन मतभेदों को समझौते के साथ दूर नहीं किया जा सकता तब माता-पिता को यह फैसला करना पड़ता है कि बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य पर इसका कहीं इतना बुरा प्रभाव तो नहीं पड़ रहा कि वे अपने वृद्ध माता-पिता की भावनाओं को ठेस पहुँचाने का संकट मोल लेकर भी उनको हस्तक्षेप करने से रोकें। जब बच्चे मानसिक रूप से इतने प्रौढ़ हो जायँ कि वे इनमें से कुछ समस्याओं को समझने लगें तो उनके माता-पिता उन पर विश्वास करके उनको समझा सकते हैं। (कौन बच्चा इन समस्याओं को किस हद तक समझता है यह बच्चे-बच्चे पर निर्भर होता है।) बच्चे को प्रायः अपने दादा-दादी और नाना-नानी से बहुत लगाव होता है। यद्यपि उनकी अपनी कुछ विशेष धारणाएँ होती हैं, फिर भी बच्चा उनसे शिष्टता, आत्म-संयम और सद्व्यवहार के बारे में बहुत कुछ सीख सकता है। यदि घर का हर आदमी बच्चों का अपने ढंग से पालन-पोषण करने

का प्रयत्न करे तो इससे बच्चों को हानि होती है। विशेष रूप से छोटे बच्चों को इस खतरे से बचाना जरूरी है।

यदि कोई व्यक्ति बहुत वृद्ध होने के कारण अपने विचारों को नहीं बदल सकता और इस कारण भी दुखी रहता है कि वह किसी के काम नहीं आ सकता तो सबके हित में अच्छा यही होगा कि उसके रहने का कहीं अलग प्रबन्ध कर दिया जाय। बहुधा ऐसा होता है कि आदमी जब बूढ़ा होकर धीरे-धीरे सठियाने लगता है तब वह ऐसी समस्याएँ खड़ी कर देता है जो बच्चों के लिए भी और बड़ों के लिए भी बड़ी हानिकारक होती हैं।

परन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि यदि बच्चों को कभी-कभी अपने नाना-नानी और दादा-दादी के साथ रहने का अवसर मिले तो उनकी असीम और बेलाग मुहब्बत बच्चों में विश्वास और सम्मान की भावना पैदा करने के लिए एक आधार-शिला का काम देती है। आजकल हमारे पूर्वज बच्चों के लालन-पालन से सम्बन्ध रखने वाले नये ज्ञान से इतना परिचित हो चुके हैं के वे बहुधा उन योजनाओं मे अपनी सहायता और स्वीकृति देते हैं जिनका आजकल के माता-पिता अपने बच्चों के पालन-पोषण मे प्रयोग करते हैं।

३. जिन बच्चों के माता-पिता ने तलाक ले लिया है

चाहे माता-पिता अपने-आपको कितना ही इस बात पर राजी क्यों न कर लें कि तलाक से बच्चों को कोई हानि नहीं होगी, वे वास्तव में केवल सच्चाई से बचने का प्रयत्न करते हैं। मानसिक स्वास्थ्य के विशेषज्ञों का अनुभव यही बताता है कि तलाक हमेशा बच्चों के लिए हानिकारक होता है। हानि कम हो या ज्यादा पर हानि होती जरूर है। इससे माता-पिता को भी कष्ट होता है। उनको इस बात का दुख होना निश्चित है कि अपने बच्चों के साथ सुखी जीवन बिताने की योजना उन्होंने बनाई थी उसे वे पूरा नहीं कर सके।

जो माता-पिता बहुत सोच-विचार के बाद इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि उनका सम्बन्ध-विच्छेद कर लेना साथ रहने का प्रयत्न करने के परिणामों की अपेक्षा कम हानिकारक होगा वे अवश्य ही ऐसे उपाय ढूँढ लेंगे जिनसे बच्चों को ज्यादा हानि न पहुँचने पाए। वे उपाय क्या है जिनसे वे अपने बच्चों को सुरक्षित रख सकते है?

माता या पिता, जिसके भी कब्जे में बच्चा हो, वह इस बात का प्रबन्ध कर सकता है कि बच्चे के जीवन में अधिकतम स्थायित्व हो। यद्यपि यह कहना

उचित न होगा कि बच्चे के जीवन की किसी अवस्था में सुरक्षा अधिक होती है और किसी में कम परन्तु अपेक्षतः कम उम्र के बच्चे को अधिक संरक्षण की जरूरत होती है, क्योंकि वह सहसा उत्पन्न होने वाले उथल-पुथल कर देने वाले परिवर्तनों का कारण पूरी तरह नहीं समझ सकता। जो बच्चा अपनी शंकाओं तथा भावनाओं को व्यक्त कर सकता है और उसको जो कुछ बताया जाता है उसे कुछ हद तक समझ भी सकता है उसकी अपेक्षा कम उम्र वाला बच्चा अपने चिर-परिचित घर में मिलने वाली शरीर की सुरक्षा पर, चिर-परिचित व्यक्तियों पर और चिर-परिचित स्वरों पर ज्यादा अवलम्बित रहता है।

बच्चे को माता और पिता दो व्यक्तियों की जरूरत होती है। माता और पिता दोनों ही बच्चे के लालन-पालन में विशेष योग देते हैं और जिस घर में माता-पिता दोनों ही हों उससे बढ़कर सुखकर स्थान बच्चे के लिए कोई दूसरा नहीं हो सकता। परन्तु जब माता-पिता सम्बन्ध-विच्छेद का निश्चय कर लें तब यह समझना चाहिए कि वे दोनों अलग-अलग अपने बच्चों को जो कुछ दे सकते थे वह ज्यादा अच्छी तरह से उनमें से केवल एक ही दे सकता है। साथ रहकर उनमें जो खींचा-तानी चलती रहेगी वह विच्छिन्न परिवार की अपेक्षा ज्यादा हानिकारक हो सकती है।

सम्बन्ध-विच्छेद के बाद बच्चे बहुधा माँ को ही दिये जाते हैं, इसका कारण अधिकांश रूप से यह है कि माँ को ही हमेशा से घर का रचयिता समझा गया है। हमारी संस्कृति की बदलती हुई परिस्थितियों को कानून में बहुत धीरे-धीरे स्वीकार किया जाता है। इसका एक उदाहरण यह है कि दिन-प्रतिदिन ऐसी माताओं की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है जो घर के बाहर, या तो काम पर या खेल-कूद में, उतना ही समय व्यतीत करती हैं जितना बच्चों के पिता करते हैं। ऐसे उदाहरणों में माता बच्चे के लालन-पालन की ओर जितना ध्यान देती है वह सम्भव है मात्रा और गुण दोनों में ही उससे अधिक न हो जो पिता देता है। पिता और बच्चे के सम्बन्ध का महत्त्व जैसे-जैसे अधिक समझा जा रहा है वैसे-वैसे यह प्रश्न भी उठने लगा है कि क्या माँ वास्तव में बच्चे के लिए पिता से अधिक महत्त्व रखती है।

चूँकि यह हमारा स्वभाव ही होता है कि हम अपने बारे में उन्हीं बातों पर आसानी से विश्वास करते हैं जिन पर हम विश्वास करना चाहते हैं, उन माता-पिता को जो तलाक ले लेते हैं चाहिए कि वे दूसरे के प्रति अपने रवैये

के बारे में बहुत सावधान रहें। एक स्त्री, सम्भव है, यह समझती हो कि अपने पहले पति के खिलाफ उसकी जो भावनाएँ हैं उनको वह अपने बच्चे के दिल में नहीं बिठा रही है; फिर भी किसी-न-किसी ढंग से घुमा-फिराकर वह अपने बच्चों के दिमाग में अपने पहले पति के प्रति घृणा पैदा कर सकती है। "नहीं, इस साल तुम्हारे लिए नया कोट नहीं बनवाया जा सकता। तुम्हारे बाप ने इस बार मुझे इतने पैसे ही नहीं भेजे हैं कि मैं तुम्हारे लिए अच्छे कपड़े बनवा सकूँ।" इस प्रकार की उकसाने वाली बातों से सारा दोष बच्चे के बाप के सिर मढ़ दिया जाता है, चाहे वह बिलकुल ही निर्दोष क्यों न हो।

वह मनुष्य जो अपनी पत्नी से बहुत जला-भुना बैठा हो अनायास से ही अपने बच्चों के दिमाग में यह बात डाल सकता है—यदि वे उसकी निगरानी में हों—कि वह उनकी माता के विचारों की और उसके व्यवहार की रत्ती-बराबर परवाह नहीं करता। या वह सचमुच बदले की भावना से प्रेरित होकर उनको ऐसे व्यवहार के लिए प्रोत्साहित करे जिसके बारे में वह जानता हो कि वह उनकी माँ की इच्छाओं के प्रतिकूल होगा। माता या पिता, या दोनों ही, अपनी निराशा के कारण बच्चों में भी निराशावादिता तथा उदासीनता की भावनाएँ जाग्रत कर सकते हैं और बिना जाने ही लड़कों में लड़कियों के प्रति तथा लड़कियों में लड़कों के प्रति अविश्वास पैदा कर सकते हैं।

तलाक लेने से पुरुष और स्त्री को कितना ही संतोष क्यों न मिले, परन्तु यह अनुभव, कि वह योजना जिसे कितनी आशाओं से बनाया गया था विफल प्रमाणित हुई, इतना कष्टदायी होता है कि माता-पिता अपने बच्चों में ही शान्ति खोजते हैं। बच्चों पर अपने हृदय की शान्ति के लिए जरूरत से ज्यादा अवलम्बित रहना न बच्चों के लिए ही अच्छा होता है न बड़ों के लिए।

परिवारों में सम्बन्ध-विच्छेद क्यों होता है

तलाक का अर्थ ही यह होता है कि पति-पत्नी में से कोई एक, या सम्भवतः दोनों ही, अपने व्यक्तित्व को एक-दूसरे के अनुकूल नहीं बना सके, जो सफल विवाहित जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। नौजवान लड़कों और लड़कियों को यह बात और अच्छी तरह समझने की जरूरत है कि विवाहित जीवन को सफल बनाने के लिए किन बातों का होना जरूरी है, जैसे दोनों की रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ, मैत्रियाँ तथा सम्बन्ध समान हों तथा भावनाओं में इतना संतुलन हो कि उनका आपस का पूरा सम्बन्ध रुचिकर हो सके।

मनुष्य के व्यक्तित्व में कौनसे ऐसे गुण होते हैं जिनका सम्बन्ध विवाहित जीवन को सुखी बनाने से होता है, यदि माता-पिता को इसका ज्ञान हो तो वे अपने बच्चों को भी ऐसे वातावरण में रखेंगे जिसके प्रभाव से उनमें ये गुण पैदा हों।

जिन लोगों का विवाहित जीवन सुखमय होता है उनके पिछले जीवन की कुछ बातें ऐसी होती हैं जो बहुत प्रमुख रूप से बराबर हमारे सामने आती हैं। उनका अपने माता-पिता से कोई झगड़ा नहीं था, बल्कि माता और पिता दोनों में ही गहरा लगाव था; बचपन से ही उन पर ऐसा अनुशासन था जो कठोर न होते हुए भी दृढ़ था, कभी-कभी उनको छोटा-मोटा दण्ड भी दिया जाता था; और माता-पिता उनसे यौन-सम्बन्धी विषयों पर खुलकर बात कर सकते थे। जब किसी बच्चे के जीवन में यह सब बातें मौजूद हों जिनके कारण बचपन सुखमय बन जाता है तो इसकी सम्भावना बहुत बढ़ जाती है कि आगे चलकर वह अपने विवाहित जीवन को भी सफल बना सकेगा।

अभी तक विवाहित जीवन के अध्ययन के सम्बन्ध में जो अनुभव किये गए हैं वे केवल प्रारम्भिक अवस्था में हैं और उनका महत्त्व केवल इतना है कि उनसे उत्प्रेरित होकर दूसरे लोग सुखी विवाहित जीवन के रहस्य पर जितनी भी जानकारी प्रदान कर सकें उतना ही अच्छा है। परन्तु पारिवारिक जीवन इतनी घनिष्ठ और निजी समस्या है कि उसके रहस्य को पूरी तरह समझने के लिए बहुत ही गहरी खोज-बीन की जरूरत होगी।

४. वे बच्चे जिनमें कुछ विशेष कमजोरियाँ होती हैं

जो बच्चे मानसिक रूप से कमजोर होते हैं

मानसिक विकास के अभाव का सम्बन्ध विकास की गति मन्द होने के साथ होता है। कभी-कभी तो यह गति इतनी मन्द होती है कि बच्चा जब ६ बरस का होता है उस समय भी माता-पिता यह समझते हैं कि उसे स्कूल भेजने से कोई लाभ नहीं।

परन्तु बहुत से बच्चे ऐसे भी होते हैं कि मानसिक रूप से उनमें इतना विकार तो नहीं होता परन्तु फिर भी अधिकांश बच्चों की अपेक्षा बहुत धीरे चीजों को सीख पाते हैं। इस प्रकार के बच्चों की ओर भी, जो प्रायः मन्द-बुद्धि होते हैं, विशेष ध्यान देने और उनको विशेष प्रकार से समझने की जरूरत होती है। यदि ज्यादा नहीं तो कम-से-कम इतना ध्यान तो आवश्यक होता है जितना अधिक कमजोर बुद्धि वाले बच्चों पर दिया जाता है। यदि उनकी ओर उचित ध्यान दिया

जाय और उनको उचित शिक्षा दी जाय तो वे समाज के सुखी और उपयोगी सदस्य बन सकते हैं। यदि उनको कई वर्ष तक लगातार स्कूल मे फेल होने दिया जाय और वे अपने दूसरे सहपाठियों से बहुत पिछड़ जायें तो फिर उनका सुधारना प्रायः असंभव हो जाता है और वे अपने माता-पिता पर तथा समाज पर एक बोझ बनकर रह जाते हैं।

माता-पिता को यह जानकर हमेशा बहुत आघात पहुँचता है कि उनका बच्चा औसत बच्चों से कम तेज है। उनको यह ज्ञान बहुधा इतना अचानक होता है कि वे इसको सहज ही स्वीकार नहीं कर सकते। माता-पिता को इस प्रकार के निर्णय को इतनी आसानी से मान भी नहीं लेना चाहिए जब तक मनोविज्ञान का कोई ऐसा विशेषज्ञ बच्चे को अच्छी तरह जाँचकर न कह दे जिसे बच्चे की योग्यता परखने का अच्छी तरह अनुभव हो। परन्तु इस परीक्षण और अध्ययन के बाद फैसला दिये जाने पर भी स्वीकार न करना बच्चे के साथ अत्याचार करना होगा। इसका परिणाम यह होगा कि उसे और अधिक समय तक उन आशाओं को पूरा करने का प्रयत्न करना होगा जो उसकी क्षमता के बाहर हैं और इस प्रकार बचपन में अच्छी शिक्षा से वह वंचित रह जायगा।

माता-पिता को जितनी जल्दी यह मालूम हो जाय कि उनके बच्चे का मानसिक विकास किस हद तक मन्द है उतनी ही अच्छी तरह वे उसकी इस कमजोरी को दूर करने की योजना बना सकते हैं। उसके साथ यह अनुभव करना खतरनाक होगा कि उसे उन बच्चों के साथ पहली कक्षा मे भरती करता दिया जाय जिनकी मानसिक आयु ६ वर्ष की हो जबकि उसकी मानसिक आयु केवल ४ वर्ष की ही हो, क्योंकि इस प्रकार वह निरुत्साह हो जायगा, वह हतबुद्धि हो जायगा और लोग उस पर हँसेंगे। ऐसे बच्चे को केवल ऐसे शिक्षक के संरक्षण में दिया जा सकता है जो बच्चों की प्रवृत्तियों को अच्छी तरह समझता हो, क्योंकि ऐसा शिक्षक दूसरे बच्चों की नासमझी की बातों से उसकी रक्षा कर सकेगा—जैसे यदि दूसरे लड़के उसे शायद 'गूँगा' कहकर चिढ़ाएँ—और उसे ऐसा काम दे सकेगा जिसे वह सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सके।

यदि ऐसे बच्चे को एक बरस देर में स्कूल भरती कराया जाय तो कोई हानि नहीं है क्योंकि उस दशा मे वह अपने घर पर प्राप्त की हुई शिक्षा का अच्छी तरह प्रमाण दे सकेगा। यदि उसकी माता ने उसे सब आवश्यक बातें सिखा दी हैं, जैसे अपने हाथ से कपड़े पहन लेना और अपनी देखभाल स्वयं कर लेना आदि,

और उसे इस बात का अवसर दिया है कि वह घर के हजारों छोटे-मोटे कामों में 'सहायता करके' आनन्द और सन्तोष प्राप्त कर सके तो वह स्कूल में भी सहायता देने तथा सहयोग करने के लिए तैयार रहेगा।

जब साधारण बच्चों की मेहनत से प्राप्त की हुई सफलताओं के लिए उनकी प्रशंसा करना इतना आवश्यक है तब अपेक्षतः सुस्त बच्चा यदि थोड़ी सी भी प्रगति करे तो उसकी पीठ ठोंकना तो और भी जरूरी है। कुछ काम इतने छोटे मालूम होते हैं कि उनकी ओर ध्यान भी नहीं दिया जाता, पर उनको करने के लिए बच्चे को सचमुच बहुत प्रयत्न करना पड़ता है : खाना परोसना, दालें बीनकर साफ करना, कहीं गिरकर चोट लग जाने पर उसे हँसते-हँसते सहन कर लेना, यह सब बातें ऐसी हैं कि इन पर बच्चों की बहुत प्रेमपूर्वक तारीफ करनी चाहिए।

चूँकि ऐसे बच्चे की बुद्धि बहुत सीमित होती है इसलिए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि उसकी भावनाओं के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाय। (यह इसलिए और भी महत्त्व रखता है क्योंकि बहुत से लोगों की यह धारणा होती है कि जिन बच्चों की बुद्धि क्षीण होती है उनकी भावनाएँ भी बहुत कमजोर होती हैं।) चूँकि वह अच्छी तरह यह नहीं परख पाता है कि किन चीजों से डरना चाहिए और किन बातों पर नाराज होना चाहिए, उसकी की भावनाओं के फलस्वरूप उसकी जो आदतें पड़ती हैं वे उस पर साधारण बच्चों की अपेक्षा अधिक प्रभाव डालती हैं, और इन आदतों के विकास में माता-पिता का भी काफी हाथ होता है।

यदि किसी बच्चे की बुद्धि इतनी अधिक क्षीण है कि वह संसार की समस्याओं का सामना नहीं कर सकता, तो माता-पिता के सामने यह प्रश्न उठता है कि वे उसे किसी ऐसे स्कूल में भरती करा दें जहाँ उसे उचित संरक्षण मिल सके और उसकी ठीक से देखभाल की जा सके। वे बहुधा यह भूल जाते हैं कि बच्चे को घर पर रखकर वे उसके सुख और आराम में नहीं बल्कि स्वयं अपने सुख और आराम में वृद्धि कर रहे हैं। क्या अधिकांश उदाहरणों में यह ज्यादा अच्छा नहीं होगा कि ऐसे बच्चे को उन बच्चों के बीच रखा जाय जिनकी रुचियाँ और योग्यता उसकी रुचियों और योग्यता के समान हों। सम्भव है कि उसके घर पर रहने से उसके भाई-बहनों के जीवन में कोई बाधा न पड़ती हो। परन्तु क्या यह उसके साथ न्याय होगा कि उसे ऐसे वातावरण में रखा जाय जहाँ उसके हृदय को पीड़ा हो तथा उसके दिमाग पर जोर पड़े, क्योंकि वह अपने भाई-बहनों को ऐसे

काम करते हुए देखेगा जो वह स्वयं कभी नहीं कर सकता ?

बच्चे जिनमें शारीरिक विकार होते हैं

ऐसे रोग जो चोरों की तरह बच्चों से उनके अधिकार छीन लेते हैं और उनको साधारण बच्चों की तरह क्रियाशील नहीं रहने देते, अब तक काफी विस्तृत रूप में फैले हुए हैं। बच्चों की क्रियाशीलता को रोक देने में उनके व्यक्तित्व पर उतना ही बुरा प्रभाव पड़ सकता है जितना रोगों का उनके शरीर पर पड़ता है। हमको अपने-आपको ऐसे बच्चों की स्थिति में रखकर उनकी दशा पर विचार करना चाहिए।

शारीरिक विकार बच्चे के विकास को रोक भी सकते हैं और नहीं भी। यह इस पर निर्भर होता है कि हम इन विकारों के प्रति क्या रवैया धारण करते हैं। यदि किसी बच्चे के कान बहुत बड़े हैं तो उसे उनके कारण उतना ही दुख हो सकता है जितना किसी लँगड़े बच्चे को अपने लँगड़े होने के कारण होता है। सम्भव है कि बड़े कान वाले बच्चे को लोगों ने चिढ़ाया हो और उसे यह धारणा हो गई हो कि सब लोग उसके बड़े कानों को देखते हैं जबकि उसी के समान दूसरे बच्चे के विकार की ओर कम ध्यान देकर उसकी सुन्दरता के गुणों पर ज्यादा जोर दिया गया हो। कुछ माता-पिता अपने बच्चे के चश्मा पहनने को भी उसके लिए बहुत हास्यजनक बात बना देते हैं और कुछ माता-पिता लँगड़ेपन को भी महत्त्व-हीन बना देते हैं। "हर युग में लँगड़े बादशाह, अपाहिज सेनापति और अंधे राजमंत्री हुए हैं; इतिहास में हमेशा उनको गौरव प्रदान किया गया है क्योंकि उन्होंने अपने शारीरिक विकार पर विजय प्राप्त की। निर्भीक होकर उन्होंने महान् जर्मन कवि गेटे के शब्दों को अपना सिद्धान्त बनाया : 'मनुष्य की आत्मा उसके शरीर को अपने अनुकूल बना लेती है।' "[1]

बच्चे की आत्मा को इस प्रकार ढालने में माता-पिता के स्वभाव का बहुत बड़ा हाथ होता है। यदि किसी बच्चे को गठिया रोग आता है और उसके मन में यह बात बिठा दी जाय कि वह हमेशा के लिए दूसरे बच्चों से 'भिन्न' हो गया है, हफ्तों बिस्तर पर पड़े रहने के बाद काफी समय तक अपेक्षतः निष्क्रिय बने रहने के बाद यदि वह यह आशा करने लगे कि हर दम उसके माता-पिता उसकी द-

---

१ एमिल लुडविग की पुस्तक "Roosevelt : A study in Fortune and Power." न्यूयार्क, वाइकिंग; १६३८, पृष्ठ १६३, १६४ गार्डन सिटी पब्लिशिंग कम्पनी, १६४१

बात का ध्यान रखेंगे और उसे अपने सीने से लगाए रखेंगे तो माता-पिता के इस व्यवहार का परिणाम उतना ही हानिकारक हो सकता है जितना स्वयं उस रोग का।

यह प्रश्न बहुत ही उचित है कि इस बच्चे को संरक्षण प्रदान करने के साथ ही यह कैसे संभव हो सकता है कि उसका दृष्टिकोण सीमित न होने पाए। बच्चे में यह विकार चाहे सुषुम्न-प्रदाह (Polio) के कारण हो, दिमाग को लकवा मार जाने के कारण हो, या किसी अन्य रोग, कुरूपता, अथवा विकृत अंग के कारण हो, परन्तु समस्या मूल रूप से वही होती है।

उदाहरणतः, यदि बच्चे को मृगी (epilepsy) का रोग है या उसके दिमाग को लकवा मार गया है तो केवल बच्चे के माता-पिता को ही इस बात का ध्यान नहीं रखना चाहिए कि उसके प्रति रचनात्मक और आशापूर्ण व्यवहार रखें, बल्कि उसके पड़ोसियों, मित्रों, शिक्षकों और रिश्तेदारों आदि को भी इसका ध्यान रखना चाहिए। सब लोगों को यह याद रखना चाहिए कि ये बच्चे भी बिलकुल दूसरे बच्चों के समान ही हैं, केवल उनमें यह विकार पैदा हो गया है। ऐसे बच्चों की दूसरे बच्चों से समानता पर ज्यादा जोर देने से, न कि उनकी असमानता पर, उनमें इस विकार के प्रति एक रचनात्मक रवैया पैदा होता है।

विशेष रुचियाँ और शौक



बच्चे क्या पढ़ते हैं और क्यों

"......यदि आप बच्चों से सम्बन्ध रखने वाली विश्व साहित्य की महान् रचनाओं को देखें तो आपको पता चलेगा कि जर्मन, अंग्रेज, अमरीकन, रूसी, डेनमार्क निवासी, स्वीडेन-वासी, इटालियन, तथा फ्रांसीसी, सभी अत्यन्त मैत्रीपूर्ण जातियाँ हैं।......आपको इनमे से एक भी देश ऐसा नहीं मिलेगा जो संसार की चारों दिशाओं मे प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की प्रशंसा न करता हो, कभी-कभी तो अपने देश की सर्वोत्तम पुस्तकों से भी ज्यादा। बच्चों की दुनिया ही ऐसी है जहाँ दूसरों की भावनाओं का सम्मान किया जाता है।......"

"बच्चों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सुखप्रद पुस्तकें हँसते-हँसते समस्त राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर जाती हैं।"[1]

हमने पुस्तकों को संसार की विभिन्न जातियो के बीच मित्रता बढ़ाने के साधन की दृष्टि से पढ़ा हो या न पढ़ा हो परन्तु हम सभी यह चाहते हैं कि पुस्तकें हमारे बच्चों को उनके खाली समय मे मनोरंजन प्रदान करने का साधन बनें और उनको लाभ पहुँचाएँ।

हम अधिकांश माता-पिता प्रायः दो प्रकार के होते हैं : एक तो वे जो हर दम यह रोना रोया करते है, "मेरा बच्चा तो एक क्षण के लिए भी पुस्तक को आँखो से हटाता ही नहीं।" और दूसरे वे जो अपने बच्चों के न पढ़ने के कारण चिन्तित रहते हैं।

यहां पर हम उन बच्चों के बारे मे बहस कर रहे हैं जो इन दोनों प्रकार के बच्चों के बीच के प्रकार के होते हैं। इस प्रकार के बच्चे आगे चलकर पढ़ने वाले हो भी सकते है और नहीं भी, यह बहुत कुछ इस पर भी निर्भर होता है कि हम उनको किस प्रकार की शिक्षा देते हैं। पढ़ने वाले से अर्थ हैं, वे बच्चे जो अखबारों मे छपने वाले हास्य-चित्रों, पत्रिकाओं के चित्रों के शीर्षकों और विभिन्न समाचार पत्रों में छपने वाली संक्षिप्त परन्तु क्रमहीन और तर्करहित जानकारी के अतिरिक्त भी

---

१ पाल हेज़र्ड की पुस्तक : पुस्तकें, बच्चे और मनुष्य। बोस्टन, हार्न बुक्स, १९४४, पृष्ठ १४७.

बहुत कुछ पढ़ते हो। जैसा कि किसी ने लिखा है कि लोग 'समझते हैं कि फिल्मों के साथ जो समाचार-चित्र दिखाए जाते हैं उनसे उनको समाचार का ज्ञान होता है। वे समझते हैं कि उनका दिमाग़ काम कर रहा है जबकि वास्तव में उनके दिमाग़ केवल असम्बन्धित चित्रों से, तथा संक्षिप्त लेखों के कचरे से भरे होते हैं।'

८ या १० बरस की अवस्था से पहले बच्चे यह नहीं सोचते कि वे क्या पढ़ें और क्या न पढ़ें। उस समय तक वे वही चीजें पढ़ते हैं जो उनके माता-पिता और शिक्षक उनको देते हैं। इस अवस्था को पहुँचकर वे सरल पुस्तकें पूरी तरह पढ़ने लगते हैं और उनमें अपने स्कूल की तथा अपने मोहल्ले की लाइब्रेरी का प्रयोग करने की क्षमता आ जाती है—कम-से-कम वे भाग्यवान बच्चे जिनके स्कूल और मोहल्ले में लाइब्रेरियाँ होती हैं। ६ वर्ष की अवस्था के लगभग पुस्तकों के सम्बन्ध में भी लड़कों और लड़कियों की रुचियाँ भिन्न होने लगती हैं, बिलकुल उसी प्रकार जैसे उनकी दूसरी रुचियाँ अलग-अलग मार्गों पर चलने लगती हैं।

लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ ज्यादा पुस्तकें पढ़ती हैं। यह शायद केवल इस बात का प्रमाण है कि बच्चों को सक्रिय खेलों में ज्यादा दिलचस्पी होती है। परन्तु लड़के लड़कियों से ज्यादा पत्रिकाएँ पढ़ते हैं। जासूसी कहानियों की पत्रिकाओं के अतिरिक्त वे विज्ञान तथा यन्त्र-शास्त्र सम्बन्धी पत्रिकाएँ भी पढ़ते हैं। इस बात से माता-पिता को यह सबक लेना चाहिए कि यदि वे अपने बच्चों में किन्हीं निश्चित रचनात्मक कामों में अपना मन लगाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहते हैं तो वे उनको इस प्रकार की पत्रिकाएँ लाकर दें।

लड़के और लड़कियाँ किसी विशेष 'पुस्तक माला' को सबसे ज्यादा पसन्द करने लगते हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि वे पुस्तकें सचमुच ही उतनी अच्छी होती हैं जितना वे उनको पसन्द करते हैं। इसका अर्थ केवल यह होता है कि वे सस्ती होती हैं, उनको पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती और उनको प्राप्त करना आसान होता है, क्योंकि वे बहुत से दूसरे बच्चों के पास होती हैं। बच्चे उनको उसी कारण पसन्द करते हैं जिस कारण वे हास्य-चित्रों में क्रमवत् कही गई कहानियों को पसन्द करते हैं, जिनमें वही पात्र बार-बार आते रहते हैं और इस कारण भी कि उनकी साहित्यिक शैली कैसी भी हो, पर कहानी हमेशा रोचक होती है। चूँकि स्कूल-शिक्षा के प्रारम्भिक वर्षों में हमारा उद्देश्य यह होता है कि बच्चे को पढ़ने में मनोरंजन हो इसलिए ये पुस्तक मालाएँ भी काफी लाभदायक

होती हैं, यद्यपि यह लाभ बहुत सीमित और अल्पकालीन होता है । बच्चों को इस प्रकार की किताबें—जो वास्तव मे शक्कर में लिपटी हुई कड़वी दवा की गोलियों के समान होती हैं—पढ़ने से रोकने से अच्छा यह है कि उनको ऐसी पुस्तकें भी मिलें जिनके साहित्यिक मूल्य के बारे मे किसी को भी सदेह नहीं है। ऐसा करने से उनको जो पाठ्य-भोजन मिलेगा उसमे शैली और रोचकता के अतिरिक्त उपयोगी तथ्य भी होगा । यदि बच्चों की पहुँच अच्छे प्रकार की चुनी हुई पुस्तकों तक हो जाय तो वे आसानी से पढ़ना सीख लेने के बाद ऐसी पुस्तकों को पढ़ने में ज्यादा समय व्यर्थ न करेंगे जिनका कोई वास्तविक महत्त्व नहीं होता ।

हास्य चित्रों की पुस्तकों का क्या महत्त्व है?

९, १० और ११ बरस के बच्चे अपने खाली समय का बहुत बड़ा भाग हास्य-चित्रों द्वारा वर्णन की जाने वाली कहानियों को पढ़ने में बिताते हैं, या तो पुस्तकों में या समाचार-पत्रों मे । बहुत से स्थानों मे जहाँ इस प्रकार की पुस्तकें काफी प्रचलित हैं वहाँ तो लड़के और लड़कियाँ इनको उतना ही महत्त्व देते हैं जितना अपने भोजन को।

इन पुस्तकों की असीम लोकप्रियता का रहस्य क्या है और इनका बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

बच्चे जिस प्रकार के जीवन की इच्छा रखते हैं उसकी अपेक्षा उनका जीवन बहुत सीमित होता है। अपने परिवार के तथा अपने पास-पड़ोस के नियम-बद्ध दैनिक जीवन मे उनको जो कुछ प्राप्त होता है, वे उनसे भी ज्यादा प्रकार के और ज्यादा साहसमय अनुभवों के इच्छुक होते हैं । हास्य-चित्रों की कहानियों मे उनको यह सब कुछ मिल जाता है । इन कहानियों मे अत्यन्त विचित्र घटनाएँ होती रहती हैं। बच्चे इन कहानियो के साहसी और बहादुर नायक के रूप मे अपने-आप को देखने लगते हैं और अपने वास्तविक जीवन के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं। जिस प्रकार बड़े लोग 'पलायन' के लिए जासूसी और रहस्यमय उपन्यास पढ़ते हैं उसी प्रकार बच्चे भी अपने जीवन की अरोचकता से भागकर हास्य-चित्रो की रोमांचकारी कहानियो मे शरण लेते हैं।

यदि हम बच्चों को जीवन की कठिनाइयों का सामना करने से बचाते हैं, यदि हम उनको कठिन काम करना सीखने के प्रयत्नों से न रोकें, और यदि हम उनसे उचित ढंग के उत्साहमय और साहसमय कामों को करने का प्रोत्साहन दें, तो वे इन कल्पित संकटमय परिस्थितियों और साहस की कहानियों में ज्यादा

लेना कम कर देंगे।

हास्य-चित्रों की कहानियों में कुछ अच्छी बातें भी होती हैं। बच्चा जब इनको पढ़ता है तो वह कई नये शब्दों से, कभी-कभी सैंकड़ों नये शब्दों से, सम्पर्क मे आता है। पता लगाया गया है कि इन हास्य-चित्रों में जो शब्द प्रयोग किये जाते हैं वे शुद्ध शब्द होते हैं, अपभ्रंश बोलचाल के शब्द नहीं। पाँचवीं या छठी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे इन कहानियों को आसानी से समझ सकते हैं। सम्भव है कि इन कहानियों को पढ़कर अपेक्षतः छोटे बच्चे अपनी पढ़ने की क्षमता भी बढ़ाते हों, परन्तु इसके साथ ही इन कहानियों को पढ़कर वे अनेक नये शब्द सीखते हैं क्योंकि इस प्रकार की कहानियाँ उनकी कल्पना-शक्ति को बढाती हैं और उनमें शब्दों तथा विचारों की मन्त्रमुग्ध करने की शक्ति के प्रति एक रुचि पैदा करती हैं।

इन चित्र-कथाओं की पुस्तकों मे जो भोंडे चित्र बने होते हैं उनसे बच्चों में विकसित होती हुई सौन्दर्य को परखने की क्षमता को हानि होती है, इस बात को तो शायद थोड़े ही लोग महत्त्व देते हों, पर इन पुस्तकों मे हिंसा, पाप और अपराध का जो चित्रण होता है उसका बच्चों पर क्या प्रभाव पडता है इसे बहुत लोग महत्त्व देते हैं। मनोविज्ञान के कई सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञों ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि बहुत से बच्चों के व्यवहार में इन्हीं चित्र-कथाओं से सीखी हुई बातों का प्रतिबिम्ब मिलता है।

प्रतिदिन क्रूरता तथा अश्लीलता के इस चित्रण को देखने से बच्चों की भावनाएँ कठोर तो बनती ही हैं, पर इसके साथ-ही-साथ जब इन चित्रों में किसी विशेष जाति या किसी राष्ट्र के विरुद्ध निरन्तर व्यंग्यात्मक आक्रमण किये जाते हैं, या जब इनमें किन्हीं विशेष लोगों को केवल इसलिए तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है कि वे 'नीच' काम करते हैं, तब बच्चों की भावनाओं पर धीरे-धीरे गुप्त ढंग से इसका बहुत गहरा प्रभाव पडता है। जब हास्य-चित्रों में परिवार के जीवन को बहुत भद्दे और पिटे हुए ढंग से चित्रित किया जाता है—सास-बहू के झगड़े, घर मे आपस में मारपीट आदि—तो बच्चों पर इसका बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

यदि इन चित्र-कथाओं की पुस्तकों मे सुधार की आवश्यकता है, तो इसके बारे में माता-पिता को सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। यदि माता-पिता मिल-कर प्रभाव डालें, तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं और माता-पिता के संयुक्त प्रयत्नों

से बहुधा इस प्रकार की पुस्तकों में कुछ अच्छे परिवर्तन हुए भी है। परन्तु माता-पिता का प्रयत्न यह होना चाहिए कि वे बच्चों का ध्यान ऐसी दूसरी चीजों की ओर आकृष्ट करें ताकि बच्चे दूसरों के अनुभव से सीखने पर अवलम्बित रहना कम कर दें। जिन बच्चों को साहसमय कामो मे भाग लेने की अपनी इच्छा को पूरा करने का अवसर मिलता है, जो अपना समय ऐसे कामों मे व्यतीत करते है कि उनको अपनी सफलता से संतोष प्राप्त हो, उनके पास इन हास्य-चित्रों की कहानियों के लिए बहुत ही थोडा समय खाली बचेगा। १२ बरस की अवस्था को पहुँचने तक इन बच्चों की रुचियाँ इतनी विस्तृत हो चुकी होंगी कि वीरों की साहसमय कथाओं के लिए तथा 'किसी कला को सीखने' तथा 'किसी चीज को बनाने' का ढंग सिखाने वाली पुस्तकों के लिए वे बहुत उत्सुक रहने लगेंगे।

हास्य-चित्रों मे वर्णन की हुई कहानियों की अनगिनत पुस्तकें हर वर्ष बिकती हैं जिससे यह पता चलता है कि इन पुस्तकों से बच्चों को कुछ संतुष्टि तो मिलती ही है और साथ ही बच्चो में जो एक आक्रमणकारी प्रवृत्ति छिपी रहती है उसे भी सान्त्वना मिलती है। यह तो कोई भी निश्चित रूप से नहीं बता सकता कि हमारे समाज मे ऐसी कौनसी बात है जिसके कारण मनोरंजन के इस ढंग का अवलम्बन लेना पड़ता है। एक कारण तो यह हो सकता है कि माता-पिता या तो अपने काम मे इतने व्यस्त रहते है, या वे बचपन के संसार से इतना दूर होते है कि वे बच्चों की विफलता को रोकने की ओर ध्यान नहीं देते।

किसी भी काम को करना महत्त्वपूर्ण है

पढ़ने का महत्त्व तो कम नहीं परन्तु यह हमेशा द्वितीय श्रेणी का अनुभव होता है। यह वास्तविक महत्त्व की चीज के अभाव की पूर्ति मात्र होती है या ज्यादा से-ज्यादा उस वास्तविक अनुभव की ओर प्रारम्भिक कदम होता है। अधिकतर लोग दूसरों की यात्राओं का वर्णन पढ़ने की अपेक्षा स्वयं यात्रा करना अधिक पसन्द करते है। इसी आधार पर यह बात भी कही जा सकती है कि जो बच्चे पढ़ते नहीं है वे ज्यादा अच्छे रहते हैं बशर्ते वे वास्तविक अनुभव प्राप्त कर रहे हों—चीजें बनाना सीख रहे हों, जानवरों से खेल रहे हों, प्रकृति के रहस्यों का पता लगा रहे हों, नई-नई जगहों की सैर करके स्वयं नई-नई चीजों से परिचित हो रहे हों,—केवल पुस्तकों में पढ़कर ही विभिन्न अनुभवों को न प्राप्त कर रहे हों।

इसमे सदेह नहीं कि एक समय ऐसा आता है जब बच्चे को [illegible] रंजन के लिए और वास्तविक अनुभव से लाभ उठाने के लिए पढ़ना [illegible]

जाता है। विज्ञान के सरल-से-सरल प्रयोगों के लिए भी पढ़ना ज़रूरी हो जाता है; जो लड़के और लड़कियाँ कहीं लम्बी सैर पर कई दिन के लिए जाते हैं वे यह पढ़ना चाहते हैं कि दूसरे लोगों ने इन्हीं परिस्थितियों में अपनी समस्याओं को किस प्रकार हल किया था।

प्रायः हम सभी लोगों को यह जानने की उत्सुकता होती है कि संसार में जो महान् व्यक्ति हुए हैं उन्होंने 'महानता का मार्ग कैसे ढूँढा' और प्रायः सभी महान् व्यक्तियों की जीवनी में एक ही बात बार-बार पढ़कर हम बहुत प्रभावित होते हैं कि वे अपने बचपन में 'जो कुछ भी हाथ लगता था पढ़ डालते थे।' परन्तु पुस्तकों को पढ़ने की इस तीव्र भूख को किसी प्रकार भी उनकी 'महानता' का कारण नहीं कहा जा सकता। परन्तु इससे एक बात की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है कि यदि हम बच्चों को शुरू से ही अच्छी-अच्छी पढ़ने की चीजें उपलब्ध न करें तो उनके पढ़ने के दिनों का बहुत सा बहुमूल्य समय व्यर्थ नष्ट होता है। आज-कल जबकि बहुत सी अच्छी-से-अच्छी किताबें सस्ते मूल्य में मिल जाती हैं, और जबकि सरकार की ओर से देश के कोने-कोने में लाइब्रेरियाँ खुल रही हैं तब कोई कारण नहीं है कि हम अपने बच्चों को पुस्तकों के अगाध भण्डारों से परिचित न करा सकें।

इसके साथ ही हमको यह भी नहीं भूलना चाहिए कि बच्चों की पढ़ाई को विशेष दिशा में संचालित करने का भी बहुत महत्त्व है। इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि लड़के और लड़कियाँ किस प्रकार की चीजें पढ़ती हैं, इस प्रकार का संचा-लन लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के लिए ज्यादा आवश्यक होता है।

९ या १० वर्ष की अवस्था में जब लड़कियाँ घर और स्कूल के जीवन से सम्बन्धित कहानियों में, और लड़के साहसपूर्ण वीर-गाथाओं में दिलचस्पी लेने लगते हैं, उसी समय से यदि उनकी पढ़ाई का उचित संचालन न किया जाय तो इसकी सम्भावना है कि उनकी रुचियों का क्षेत्र इतना सीमित हो जाय कि उनका मानसिक विकास घुटकर रह जाय। वे बच्चे जिन्होंने बचपन से केवल एक ही प्रकार की पुस्तकें पढ़ी हैं सम्भव है कि वे बड़े होकर भी अपनी पढ़ाई को सतही 'सफलताओं' के वर्णन, जासूसी उपन्यासों तथा 'सर्वप्रिय' प्रेम-कथाओं तक ही सीमित रखें।

माता-पिता बहुत लम्बी-चौड़ी आदर्श योजनाएँ बनाए बिना भी इस दशा को बदलने के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। बच्चों को किताबें सुनाकर, परिवार के

लोगो में आपस मे बहसें करके, उनको दिलचस्प मेहमानो की बातचीत को सुनने का अवसर देकर, तथा फिल्मो की अपेक्षा किताबों पर ज्यादा पैसा खर्च करके बहुत से माता-पिता अपने बच्चों की, लडकों की भी और लडकियो की भी, रुचियो को इस प्रकार विकसित करते हैं कि यही बच्चे आगे चलकर प्रभावशाली बन जाते है और अपने जमाने में सारे वातावरण को 'हिला देते हैं।'

रुचियाँ और विशेष शौक

लड़कों और लड़कियों दोनों को तरह-तरह की चीजें जमा करने का शौक होता है। कभी-कभी तो यह चीजें इतनी बेकार होती है कि हँसी आती है, जैसे दियासलाई के लेबल ट्राम और बस के टिकट, ताश के पत्ते, या सड़कों पर चिपकाए जाने वाले पोस्टर। इसका उद्देश्य शायद केवल यह होता है कि इसी प्रकार की चीजें जमा करने वाले दूसरे बच्चों के सामने डींग मारने का मौका मिल सके; और शायद इसका सबसे अधिक महत्त्व इसी बात में है कि बच्चा इस प्रकार दूसरो की प्रशंसा और सम्मान प्राप्त करता है।

परन्तु कभी-कभी चीजें जमा करने की प्रवृत्ति शिक्षाप्रद अनुभव बन सकती है, जैसे बच्चे विभिन्न देशों के डाक के टिकट जमा करने लगते हैं या किसी खूबसूरत तितली से आकर्षित होकर वे दूसरे कीड़ों के नाम जानने के लिए भी उत्सुक रहने लगते है और इस प्रकार बचपन से ही प्रकृति-विज्ञान के प्रति उनकी रुचि बढ़ने लगती है। यदि हम बच्चे की रुचियो के विकास के उपाय खोजने के प्रति उदासीन रहे तो हम उसके सम्पर्क मे आने का अवसर खो देंगे और शायद उसको असीम सुख प्रदान करने वाली एक सफलता से हमेशा के लिए वंचित कर देंगे।

१० वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते बहुत से बच्चो की छोटे-मोटे औजारों के प्रयोग मे दिलचस्पी बहुत बढ जाती है। स्पष्ट है कि यदि उनको इस अवस्था तक इन औजारो को छूने का भी कभी अवसर नहीं मिला है तो वे कभी उतने होशियार नहीं हो सकते जितने कि वे बच्चे होते है जिनको ४ या ५ वर्ष की अवस्था से ही इस प्रकार के औजारो को प्रयोग करने की आदत है। फोटो खींचना, नाटक खेलना, किसी बाजे पर गाना, बिजली के यंत्रों मे दिलचस्पी होना, यह सब और इसी प्रकार की कोई और चीजें बच्चे को बहुत पसन्द होंगी—विशेष रूप से प्रतिभाशाली बच्चो को।

बहुधा माता-पिता यह सोचते हैं कि बच्चों के कुछ शौक ऐसे होते हैं, जो

फोटो खींचना या संगीत सीखना आदि, जिन पर बहुत पैसा खर्च होता है इसलिए इन कामों में उनको प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। परन्तु वास्तव में, बच्चे को जिस चीज का भी शौक होता है उसके द्वारा वह बहुत कुछ सीखता है और इसमें वह अपनी पूरी शक्ति से प्रयत्न करता है। जिस लड़के को कोई बाजा बजाने का शौक है वह संभव है अपनी इसी निपुणता के द्वारा हाई स्कूल या कॉलेज की परीक्षाएँ पास कर ले। यदि किसी लड़की को चिड़ियों का अध्ययन करने में रुचि है तो उसके साथी किसी लम्बी सैर पर जाते समय उसे अपने साथ ले जाने के लिए बहुत उत्सुक रहेंगे। यदि कोई लड़की अपनी रुचि के कारण टाइप करना सीख लेती है तो वह अपने दूसरे साथियों का काम करके कुछ पैसे भी कमा सकती है।

परन्तु किसी ऐसे काम में पैसा लगाना जिसके बारे में पहले से कोई अनुभव न हो निश्चय ही मूर्खता होगा, क्योंकि इसके सम्बन्ध में यह नहीं मालूम हो सकता कि बच्चे को उस चीज में किस हद तक रुचि है या उस काम को सम्पन्न करने की उसमें कितनी योग्यता है। कुछ परिवार अपनी बेटी को नृत्य सिखाने में सैकड़ों रुपए खर्च कर देते हैं, पर बाद में उनको पता चलता है कि उनकी बेटी कभी भी अच्छी नर्तकी नहीं बन सकती। परन्तु यदि बच्चे को किसी चीज की निश्चित रूप से लगन है और वह दृढ़ता से उस पर जमा रहता है तो वह उसे सीखने के आवश्यक सामान को प्राप्त करने के लिए दूसरी चीजों का बलिदान करने के लिए भी तैयार रहेगा।

बच्चों की रुचियों का बहुत बड़ा महत्त्व इस बात में है कि इनके द्वारा बच्चों को एक साधन मिलता है जिसके द्वारा वे दूसरों का सम्मान प्राप्त कर सकें और अपनी निपुणता पर गर्व कर सकें। यदि बच्चा अपनी स्कूल की पढ़ाई में केवल औसत दर्जे का विद्यार्थी है तो इस बात की विशेष जरूरत है कि उसे उस काम में प्रोत्साहित किया जाय जो वह अच्छी तरह कर सकता है। उन बच्चों के लिए जिनमें कोई ऐसी निपुणता नहीं होती जिसके कारण वे अपने-आपको 'महत्वपूर्ण' समझ सकें, माता-पिता और शिक्षक दोनों को प्रयत्न करके ऐसे मार्ग ढूँढने चाहिएँ जिनमें बच्चे अपनी योग्यता का परिचय दे सकें। तरह-तरह की गुडियों का संग्रह करना, नक्शे खींचने में बहुत निपुण हो जाना या किसी एक विषय के सम्बन्ध में अत्यधिक जानकारी प्राप्त कर लेना आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनको प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि बच्चे का मानसिक स्वास्थ्य बन सके।

रेडियो सुनना

कोई भी चीज जिसमें बच्चा काफी समय व्यतीत करता है—जैसे रेडियो सुनना—उसका बच्चे पर काफी गहरा प्रभाव पड़ता है। चाहे वह एक घण्टे रेडियो सुनता हो या तीन घण्टे, जैसा कि बहुत से बच्चे करते हैं, वह प्रतिक्षण ऐसे नये-नये विचारों, रीति-रिवाजो, शब्दों और घटनाओ से परिचित होता रहता है जो उसे विस्मय में डाल देते है। जो-कुछ वह सुनता है, उसमे से कुछ अश तो केवल समय की बरबादी होती है या कभी-कभी हानिकारक भी हो सकता है, परन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार वह निरन्तर अपने शब्द-ज्ञान को और संसार की विभिन्न चीजो के बारे में अपनी आम जानकारी को बढाता रहता है।

विदेशों मे रेडियो सुनकर बच्चो पर विज्ञापनो के लम्बे-चौडे वादो का क्या प्रभाव पडता है, यह बात विशेष रूप से अध्ययन करने के योग्य है। जब बच्चे एक के बाद दूसरी चीज के बारे मे लम्बी-चौडी प्रशंसा सुनते हैं तो वे उनको अविश्वास की भावना से देखने लगते हैं। यह प्रवृत्ति अधिक प्रखर बुद्धि वाले बच्चों मे ज्यादा पाई जाती है। जो बच्चे कम विचारशील होते है, वे कई चीजो के बारे मे गलत जानकारी प्राप्त कर लेते हैं और विज्ञापित चीजों के पक्ष मे एक राय कायम कर लेते हैं, या उनमे यह आदत पड़ जाती है कि वे सहज ही लम्बे-चौड़े वादों पर विश्वास करने लगते हैं।

रेडियो पर जो अनेक वादविवाद और बहसे होती हैं, यद्यपि इनको सुनने वाले बच्चो की संख्या अधिक नहीं होती, उनसे बच्चों की समझ मे एक बात तो आ जाती है कि हर समस्या को कई दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। यह बात कि लड़कियों की अपेक्षा लड़के राजनीतिक बहसों को ज्यादा सुनते हैं, इस बात का प्रमाण है कि लडकों मे समस्याओं के बारे मे तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति लड़कियों की अपेक्षा अधिक होती है।

रेडियो सुनने की एक जो सबसे बड़ी खराबी है वह यह कि यह शौक बच्चों को खुले मैदान में सक्रिय खेलों से वंचित रखता है। माता-पिता को इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। यदि बच्चों को इस बात का काफी अवसर मिलता है कि उनकी रचनात्मक भावनाओं को तथा साहसमय कामो की इच्छा को, सन्तोष मिल सके तो वे उन रोमाचकारी साधनों का आधार नहीं ढूँढेंगे जो कृत्रिम रूप से बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि बच्चो का कोई समूह अपने मकान के आँगन मे कोई चीज बनाने में व्यस्त है तो वह ५ मे से ४

दिन तो अवश्य ही रेडियो के लोकप्रिय-से-लोकप्रिय कार्यक्रम के बारे में भी सब-कुछ भूल जायँगे।

उन बड़े शहरों में, जहाँ बच्चों की स्वच्छन्द क्रियाएँ बहुत सीमित हो जाती हैं, माता-पिता भी अपने बच्चों को सक्रिय कामों के लिए उससे ज्यादा अवसर प्रदान कर सकते हैं जितना कि वे बहुधा करते हैं। यदि कई माता-पिता मिलकर इसका प्रयत्न करें, तो वे शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की सहायता से अपने बच्चों के लिए खेलने की जगह तथा खेल के सामान का प्रबन्ध कर सकते हैं।

रेडियो का एक लाभ यह है कि यह परिवार के लोगों को एक स्थान पर एकत्रित कर देता है। परन्तु कई बार इसी कारण झगड़ा भी होता है, क्योंकि किसी को कोई कार्यक्रम पसन्द होता है और किसी को कोई दूसरा। परन्तु यह एक ऐसा अवसर होता है जब हम जनवादी ढंग से जीवन व्यतीत करना सीख सकते हैं। बारी-बारी सबकी पसन्द के कार्यक्रम सुनकर, समझौता करके, सुनने वालों की उम्र और उनकी रुचियों को ध्यान में रखते हुए, सबकी जरूरतों को यथानुसार पूरा करने का उपाय ढूँढकर, इस समस्या को हल किया जा सकता है; क्योंकि रेडियो तो बहुधा घरों में एक ही होता है।

बहुत से परिवारों में एक समस्या बहुत जटिल होती है, और वह है पढ़ते समय रेडियो सुनना। संगीत तो काम के लिए एक आनन्ददायक पृष्ठभूमि का काम कर सकता है, पर वादविवाद से या बातचीत से ध्यान बँटता है। बहुधा यह देखा गया है, कि पूर्णतः शान्ति और एकान्त का वातावरण काम के लिए श्रेष्ठतम वातावरण नहीं होता। कभी-कभी जब हमको किसी विघ्न को दूर रखने का प्रयत्न करना पड़ता है, तब हम अपने काम में ज्यादा ध्यान लगाते हैं। जब तक हम निश्चित रूप से इसका पता न लगा लें कि इससे सचमुच ही बच्चे के काम में बाधा पड़ती है, तब तक हमको यह निर्णय नहीं करना चाहिए कि उसके पढ़ते समय रेडियो खुला न रहे। रेडियो के उत्तेजनाजनक नाटकों से कुछ बच्चों की भावनाओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उनको बुरे-बुरे स्वप्न दिखाई देते हैं और वे सोते-सोते भयभीत होकर उठ बैठते हैं। इस प्रकार की समस्या के सम्बन्ध में सबसे पहले इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि बच्चा रेडियो पर कौनसा कार्यक्रम सुनता है। छोटे बच्चों को अनुचित कार्यक्रम सुनने से रोकने का अच्छा उपाय यह है कि उनको कोई कहानी पढ़कर सुनाई जाय या किसी मनोरंजक खेल की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया जाय। ऐसी अनेक मनोरंजक कहानियाँ और खेल होते

हैं जिनमे विभिन्न अवस्थाओं के बच्चे दिलचस्पी ले सकते है, और माता-पिता भी उनमे भाग ले सकते हैं। खेल मे माता-पिता का भाग लेना बच्चों के लिए बहुत अधिक मनोरंजन का कारण होता है। स्कूल जाने वाले बच्चो मे 'मध्यम अवस्था' के बच्चों की यह एक बहुत बड़ी शिकायत रहती है, 'कितना अच्छा होता यदि हमारे माता-पिता हमारे साथ और अधिक खेल खेलते।'

इसमे संदेह नहीं कि अधिकाश माता-पिता को खाना खाने से पहले बच्चों के साथ खेलने की फुरसत नहीं होती और रेडियो पर बच्चों के अधिकांश कार्यक्रमो का यही समय होता है। परन्तु थोड़ा सा प्रयत्न करने से कोई-न-कोई उपाय निकाला जा सकता है। बहुत से बच्चे ऐसे है जो रेडियो के मनोरजक-से-मनोरंजक कार्यक्रम को भी त्याग देंगे यदि उनके माता-पिता उनको यह आश्वासन दें कि रात को खाने के बाद वे उनके साथ खेलेंगे।

बच्चे और पैसा



शायद इससे तो हम सभी सहमत होंगे कि बच्चों को पैसे को उचित ढंग से खर्च करना सिखाना जरूरी है। परन्तु उनको यह सिखाने का सबसे अच्छा ढंग क्या है, इसमें मतभेद हैं। लोग पैसे को बुद्धिमानी से खर्च करना कैसे सीखते हैं, इसके बारे में हमको बहुत कम ज्ञान है। जो लोग पैसे को बुद्धिमानी से खर्च करना सीखते हैं वे बहुधा अपने अनुभव से ही ऐसा करते हैं।

कहा जाता है, "अनुभव से मनुष्य बहुत कुछ सीखता है।" परन्तु क्या हम अनुभव को इस बात का अवसर देते हैं कि वह बचपन से ही हमको सिखाना आरम्भ कर दे? हम बच्चों की 'शिक्षा' को बहुत महत्त्व देते हैं, परन्तु क्या स्कूल में उनको इस बात की काफी शिक्षा मिलती है कि वे पैसे को किस प्रकार खर्च करें? परन्तु बड़े होकर तो उनको पैसे का प्रयोग करना ही पड़ेगा—खर्च करने में, बचाने में, कमाने में, किसी को देने में, किसी से लेने में। यह उसी प्रकार की बात होगी कि हम बचपन में किसी को क़लम या पेंसिल छूने भी न दें, और फिर उसके बड़े होने पर हम सहसा यह आशा करने लगें कि वह अच्छी तरह लिखने लगेगा।

माता-पिता बच्चों को पैसे के सम्बन्ध में किस प्रकार का अनुभव दे सकते हैं?

१. बच्चे को पैसे देने की कोई योजना बनाकर उसका पालन करना इससे कहीं अच्छा है कि उसे अनियोजित ढंग से पैसे दिये जायँ कि वह जिस तरह चाहे खर्च करे। बच्चे की जरूरतों के बढ़ने के साथ-साथ उसके जेब-खर्च को भी बढ़ाते जाना इसका एक उपाय है। ६ या ७ बरस के बच्चे को बहुत थोड़े पैसों की जरूरत होती है, परन्तु जैसे-जैसे बच्चे की स्वतन्त्र रूप से निर्णय करने की योग्यता बढ़ती जाय वैसे हम उसका जेब-खर्च भी बढ़ा सकते हैं। १५ या १६ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते बच्चे इस योग्य हो जाते हैं कि वे अपने अधिकांश कपड़े भी स्वयं खरीद सकें। यह बताने की जरूरत नहीं कि ऐसा करने से बच्चा वास्तविकता से सम्पर्क में रहता है और वह समझ-बूझकर योजना बनाने की जरूरत को समझने लगता है।

बहुधा यह होता है कि माता-पिता बच्चे को जेब-खर्च के लिए पैसे देते हैं, और फिर उसे इस पर बाध्य करते हैं कि वह उनके आदेश के अनुसार ही पैसे

खर्च करें। वास्तव में इस प्रकार के आदेशों से माता-पिता अपने उद्देश्य को ही हानि पहुँचाते हैं। यदि बच्चे से यह कहा जाय कि उसे हर रुपये में से २ पैसे बचाकर रखना चाहिएँ या उसे महीने में १ रुपये से ज्यादा की लेमनड्राप न खाना चाहिए, तो उसे अपने निर्णय को प्रयोग करने का अवसर ही नहीं मिलेगा। यदि हम उसके हर खर्च को खुद निश्चित करें तो फिर तो वह हमारा ही पैसा होगा, और उसे बच्चे का जेब खर्च कहना अनुचित होगा।

इस सम्बन्ध में उठ खड़े होने वाले प्रश्नों पर बच्चे को राय देना बिलकुल ही भिन्न बात है। हम उसे यह बता सकते हैं कि यदि वह थोड़े से पैसे बचाकर रखेगा तो वह *आवश्यकता पड़ने पर* अपनी जरूरत की कोई चीज खरीद सकता है। हम उसे यह भी याद दिला सकते हैं कि उसे अपने मित्र की वर्षगाँठ के अवसर पर उपहार देने के लिए भी पैसे बचाकर रखना जरूरी है। हमारे बच्चे आजकल दूसरे प्रान्तों या देशों के बच्चों की दशा से इतने परिचित होते हैं कि उनकी इच्छा होती है कि वे अपने पैसों में से उनकी कुछ सहायता कर सकें। जब उनको अपने कुछ खर्च काटकर यह पैसे देने पड़ेंगे तो वे इसका वास्तविक महत्त्व समझेंगे, नहीं तो वे केवल अपने पिता से पैसे माँगकर दे देंगे और उनको कोई बलिदान नहीं करना पड़ेगा।

"परन्तु बच्चे हमेशा नासमझी से पैसे खर्च करते हैं"

हाँ, वे नासमझी से पैसे खर्च करते हैं! शुरू में वे बेकार खिलौनों में पैसे बरबाद करते हैं, या बहुत सी चाकलेट खा जाते हैं और महीना [illegible] होने से पहले ही उनका 'दीवाला' निकल जाता है। बच्चे अनुभव और गलतियों से सीखते हैं, और गलतियाँ भी उनके लिए उतनी ही सहायक होती हैं जितनी कि उनकी सफलताएँ। यदि रेखा बिना सोचे-समझे अपने सारे पैसे खर्च कर देती है और उस फिल्म के बारे में बिलकुल भूल जाती है जिसे वह [illegible] चाहती है, तो वह अपनी गलती से कुछ सबक लेगी। या तो उसे [illegible] देखने का विचार छोड़ देना पड़ेगा, या जब वह अगले महीने [illegible] अपनी माँ को वापस करेगी तो उसे कठिनाई होगी।

बहुत से माता-पिता समझते हैं कि ऐसी दशा में उधार देना [illegible] इस बात का निर्णय माता-पिता पर ही छोड़ देना चाहिए। [illegible] के बच्चों को उधार के बारे में भी कुछ शिक्षा देने में [illegible] इस समय जो अनुभव होगा उससे उनको आगे [illegible]

होगी कि मकान खरीदते समय वह और उसका पति यदि कोई चीज गिरवी रखते हैं तो उसका क्या परिणाम होगा।

अपनी उद्दण्डता का परिणाम यदि बच्चों को स्वयं भुगतने दिया जाय तो वे इससे बहुत कुछ सीख सकते हैं। यदि अजय अपने पिता के लाख मना करने पर भी घर के पास गेंद खेलता है और फलस्वरूप खिड़की का शीशा टूट जाता है तो इसके उत्तरदायित्व का भार स्वयं उसको उठाना चाहिए। सम्भव है कि उसके पिता को इस बात मे थोड़ा सा दुख भी हो कि अजय अपने पैसों मे से खिड़की की मरम्मत कराता है। परन्तु यह जरूरी है।

२. बच्चे का जेब-खर्च बन्द करके उसे कभी दण्ड नहीं देना चाहिए। ऐसा करने से उसको यह विचार होता है कि अच्छे व्यवहार के बदले में ही उसे पैसे दिये जाते हैं। ऐसा करना बहुत बड़ी भूल होगी।

पैसे का अनुशासन के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। जब स्वाभाविक रूप से पैसों का अनुशासन से सम्बन्ध हो तो बात और है, जैसे अजय से अपने पैसों से खिड़की की मरम्मत कराने के लिए कहना। परन्तु इस उदाहरण में वह घटना अनुशासन करती है न कि माता-पिता।

जब कोई बच्चा बड़ी मूर्खता से पैसे खर्च करता है तो हमारी बड़ी इच्छा होती है कि हम उसके जेब-खर्च को कम कर दें, ताकि उसकी फजूलखर्ची कम हो जाय। ऐसा करने से हम केवल उसे, उस अनुभव से वंचित कर देते हैं, जो वह केवल अपनी गलतियों से सबक सीखकर ही प्राप्त कर सकता है। सम्भव है कि हमको यह प्रतीत हो कि वह अपनी गलतियों से कुछ नहीं सीख रहा है; परन्तु दूसरी शिक्षाओं की तरह इस शिक्षा में भी बच्चा धीरे-धीरे ही सीखता है, और बहुत जल्दी सफलता की आशा करने से हमको निराशा ही होगी।

३. बच्चे के जेब-खर्च को नियत करते समय उसकी बढ़ती हुई जरूरतों को हमेशा ध्यान मे रखना चाहिए। शुरू मे कुछ थोड़ी सी कमी या ज्यादती हो सकती है, पर अनुभव से उचित रकम का पता लगाया जा सकता है और जैसे-जैसे बच्चा ज्यादा जिम्मेदारियाँ लेने लगे हमको उसका जेब-खर्च भी बढ़ाते जाना चाहिए। ८ या ६ बरस का बच्चा इस योग्य होता है कि वह इस बात का ध्यान रख सके कि उसे बाल कटवाने की जरूरत कब पड़ेगी (परन्तु हमें उसको याद दिलाना पड़ेगा कि वह उसके लिए पैसे बचाकर रखे)। ११ बरस का बच्चा बस का किराया देने तथा स्कूल में दोपहर के समय अपने खाने का प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी ले सकता

है। महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं है कि बच्चे को किन-किन कामों पर अपने जेब-खर्च में से पैसे खर्च करने पड़ते हैं, बल्कि यह कि जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाय वह अधिक चीजों के बारे में स्वयं निर्णय कर सके और दूरदर्शिता से काम ले सके।

हमारे बच्चों के दोस्तों में कुछ को उससे ज्यादा जेब-खर्च मिलता होगा, कुछ को कम। इस परिस्थिति का सामना तो उनको जीवन-भर करना होगा, इस-लिए यदि उनको आरम्भ से ही इस बात की शिक्षा दी जाय कि वे अपने पैसों का उचिततम प्रयोग कर सकें तो यह उनके हित में होगा। कुछ माता-पिता हमेशा इस बात का दुखड़ा रोते रहते हैं कि वे अपने दोस्तों के लिए 'उतना नहीं कर पाते' जितना उनके दोस्त उनके लिए करते हैं। सच्ची दोस्ती का आधार यह नहीं होता कि कितने उपहार आपस में लिये या दिये जायँ, या कितनी बार अपने मित्रों को दावत खिलाई जाय आदि। बच्चों को यह बात सिखानी चाहिए कि अपने दोस्तों पर वे क्या खर्च करते हैं इसका उतना महत्त्व नहीं है जितना इस बात का कि उनमें कितनी सचाई और सहानुभूति है तथा वे अपने सुख-दुख किस हद तक बाँट सकते हैं।

४. पैसों के बारे में शिक्षा पाने के साथ ही बच्चे को इससे भी परिचित होना चाहिए कि उसके परिवार की आर्थिक परिस्थिति कैसी है। जिन परिवारों में इस बात पर बहस नहीं की जाती है कि उसकी आय कहाँ से आती है और उसे किस प्रकार व्यय करना चाहिए, वह केवल पुराने जमाने के परिवारों का उदाहरण-मात्र है, जिनमें पिता ही आय-व्यय का निर्णायक होता था। आजकल वह घर-खर्च का हिसाब रखने का भार अपनी पत्नी पर डाल देता है। पति की अपेक्षा पत्नी के पास बाजार से चीजें आदि खरीदने का अधिक समय रहता है, या कम से कम उसे इस काम में रुचि ज्यादा होती है, चाहे वह खाने की चीजें हों या [illegible]।

यदि आप विज्ञापनों को देखें तो आप पायेंगे कि उनमें बहुत से विज्ञापन औरतों को सम्बोधित करके लिखे जाते हैं। यह इस बात का सूचक है कि परिवार की जरूरत की चीजों में से अधिकतर औरतें ही खरीदकर लाती हैं। परन्तु कई परि-वारों के अनुभव के आधार पर यह बात कही जा सकती है कि माता-पिता अपनी बेटियों की अपेक्षा बेटों को पैसे खर्च करने के सम्बन्ध में अधिक उपयोगी शिक्षा देते हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार लड़कों को परिवार की आय के बारे में [illegible] बताई जाती है और उनके सामने परिवार की आर्थिक समस्याओं पर चर्चा भी ज्यादा की जाती है।

लडकियों को भी पैसे खर्च करना, बचाना, उधार देना तथा उधार लेना सिखाने के अनेक उपाय हो सकते हैं। यदि विचारपूर्वक उनको यह सिखाने का प्रयत्न किया जाय तो उनको उन समस्याओं का अभ्यास हो जायगा जो विवाह के बाद उनके सामने आयँगी। यदि आप विचार कीजिए तो आपको पता चलेगा कि हजारों विवाह केवल इस कारण दुखमय हो जाते हैं कि पति-पत्नी में पैसों के बारे में झगडा रहता है—जिस झगड़े का मुख्य कारण यह होता है कि पति-पत्नी अपनी आय को खर्च करने का ढंग नहीं जानते।

१० या १२ बरस की लडकियों को ऐसा भोजन बनाने की योजना सिखाई जा सकती है जो पौष्टिक भी हो और साथ ही कम खर्च में तैयार हो सके। यदि उनको पैसे देकर यह कह दिया जाय कि इसमें आज के खाने का प्रबन्ध कर दो तो उनको इसमें बहुत आनन्द आयगा, बशर्ते परिवार के लोग उनकी पसन्द की हुई चीजों की प्रशंसा करें। माँ के साथ चीजें खरीदने जाना, विभिन्न वस्तुओं की तुलना करके उनमें से अच्छी चीज पसन्द करना, तथा घर के परदे, मेजपोश तथा अन्य कपड़ों में अपनी राय देने का अधिकार होना आदि अनुभव लडकियों के लिए बहुत मूल्यवान और लाभदायक होते हैं। दूकानों के सूचीपत्रों का अध्ययन करने तथा अखबारों के विज्ञापनों से लडकियाँ विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों में तथा उनके गुणों में अन्तर करना सीख सकती हैं।

पता लगाया गया है कि यदि पति-पत्नी हर बात में बराबरी का व्यवहार रखें तो इसका परिणाम बहुत अच्छा होता है। यदि ऐसा है तो माता-पिता और बच्चों के बीच समानता का व्यवहार बच्चों को वही सन्तोष प्रदान कर सकता है। यदि पिता अपने बच्चों को बता दे कि उसे साल-भर में कितने टैक्स, कितना किराया और कितनी बीमा-किस्तें देनी पड़ती हैं और मोटर खरीदने के लिए कितना पैसा बचाना पड़ता है, और मोटर तो परिवार के सभी लोगों के लिए उपयोगी होगी, तो बच्चे बड़ी सहानुभूति के साथ इस बात को समझने के लिए तैयार रहेंगे। ऐसी दशा में परिवार की आय में से उनको जितना भी भाग दिया जायगा उसे वे सन्तोषपूर्वक स्वीकार करेंगे, क्योंकि उनको यह मालूम होगा कि परिवार की आय कहाँ से आती है और कहाँ जाती है।

यदि बच्चों को परिवार का जिम्मेदार सदस्य समझा जाय तो उनमें परिवार के प्रति एकता और अपनेपन की भावना जाग्रत होती है, क्योंकि इस दशा में हर वह चीज जिसका उनके माता-पिता पर असर पड़ता है, उनको भी प्रभावित करती है।

यदि हम अपने कमाये हुए पैसे को सारे परिवार की सम्पत्ति समझें, [illegible]
न समझें कि हम परिवार को दान दे रहे हैं, तो परिवार के सभी लोगों की भाव-
नाएँ स्वस्थ रहेंगी। पैसे का महत्त्व हमारे जीवन में इसीलिए [illegible] है कि पैसे
के बिना कोई भी काम करना प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। पुराने जमाने में
परिवार के छोटे लोग भी परिवार की जीविका में योग देते थे। लड़के भेड़ें चराते
थे और इन्हीं भेड़ों के ऊन से लड़कियाँ कम्बल बुनती थीं। माँ भी अपने पति
का हाथ बँटाती थी जब वह उसके काते हुए ऊन से कपड़ा बुनती थी या [illegible]
में बेचने योग्य कोई छोटी-मोटी चीजें घर पर तैयार करती थी। धीरे-धीरे हम
केवल पैसा पैदा करने पर ध्यान देने लगे और इसी पैसे से हम वे चीजें खरीदने
लगे जिनमें से बहुत सी पहले स्वयं घर ही में तैयार हो जाती थीं। इसलिए अब
हमारे लिए यह आवश्यक हो गया है कि हम इस बात का कोई और उपाय खोज
निकालें कि सारे परिवार के लोगों को यह अनुभव हो कि वे परिवार के जीवन में
अब भी सक्रिय योग दे रहे हैं।

५. पैसों के अनुभव का एक महत्त्वपूर्ण अंग यह भी है कि पैसे को खर्च
करने की योजना बनाई जाय और पैसे बचाए जाएँ। उन चीजों के लिए पैसे बचाना
जो सुदूर भविष्य में होने वाली हैं छोटे बच्चों के लिए कोई महत्त्व नहीं रखता।
उनका लक्ष्य कहीं निकट होना चाहिए जहाँ वे शीघ्र ही पहुँच सकें। अपनी माँ के
लिए कोई उपहार खरीदने के लिए तीन हफ्ते तक पैसे बचाना [illegible]
बच्चे के लिए उतना ही कठिन काम है जितना किशोरावस्था के बच्चों के लिए [illegible]
स्कूल में कालेज के खर्चों के लिए पैसे बचाना होता है। [illegible]
कारण कि बच्चे बहुत दूर की बात नहीं सोच सकते [illegible] माता पिता [illegible]
हो जाते हैं और अपने बच्चों को पैसे बचाने की शिक्षा देना छोड़ देते हैं। [illegible]
बड़े हो जाने पर ही बच्चे बहुत दूर के लक्ष्य [illegible]।

पैसे कमाने से बच्चे का उत्साह बहुत बढ़ता है

६. पैसे कमाकर कुछ सीखना बच्चे के अनुभव का बहुत [illegible]
है। हमारे समाज में बच्चों में बहुत छोटी उम्र से ही [illegible]
जागृत होती है जिसके बदले में उनको पैसे मिलें। [illegible]
लिए पुरस्कार देना छूत की बीमारी के समान होता है और [illegible]
उतनी ही आसानी से लग जाता है जैसे खसरा।

बच्चों की इस अति आवश्यक जरूरत को पूरा करना [illegible]

बात का भी ध्यान रखना कि वे कहीं पैसे के पीछे दीवाने न हो जायँ बड़ा कठिन काम है। कुछ माता-पिता बच्चों को घर के काम के बदले पैसे देने से डरते हैं। वे घर के काम को पैसों के बदले करवाने से घृणा करते हैं और यह उचित भी है, क्योंकि वे समझते हैं कि सहकारी ढंग से रहने का अर्थ यही है कि सब लोग घर के काम में हाथ बटाएँ।

यदि परिवार सचमुच सुसंगठित है और परिवार के हर व्यक्ति को जिम्मेदारी, प्रेम और सुरक्षा का उचित भाग मिलता है तो सबमें एक दूसरे की सहायता करने की एक ऐसी भावना होगी कि इस प्रकार की संभावना (काम के बदले पैसे देना) रह ही नहीं जायगी। किसी बच्चे को इसलिए एक पैसा दे देना कि वह खुशी से कोई काम कर दे और प्रतिदिन के कामों से ज्यादा कुछ करने पर उसे पैसे देना दो बिलकुल भिन्न बातें हैं।

हर घर में कुछ 'फालतू' काम निकलते ही रहते हैं, ऐसे काम जो प्रतिदिन नहीं होते या साल में कभी-कभी ही करने के होते हैं, और इन कामों में बच्चों को कुछ पैसे कमाने का अवसर मिल जाता है। मान लीजिए किसी ८ या ६ बरस के बच्चे के सुपुर्द यह काम है कि वह बाजार से दूध लाया करे और अपने खिलौने ठीक जगह पर उठाकर रखा करे, परन्तु सहसा उसे पैसों की जरूरत पड़ती है। वह अपने-आपसे प्रश्न करता है, "क्या मैं कुछ पैसे कमा नहीं सकता?" शायद उसकी माँ समय की कमी के कारण बरतनों को साफ़ नहीं करती रही है। यदि बच्चे को पैसे देकर यह काम करवा लिया जाय तो क्या हर्ज है, या कोई ऐसा दूसरा काम जो हम शायद अपने-आप कभी भी न कर पाएँ?

ऐसी उम्र में जब कि बच्चों के लिए घर के बाहर पैसे कमाने का शायद ही कोई साधन होता है, यदि बच्चे अपने प्रयत्नों के बदले कोई चीज पाएँ जिसे वह दूसरों को दिखा सकें तो उनका उत्साह बहुत बढ़ता है। कुछ और बड़े होने के बाद लड़के और लड़कियाँ पड़ोसी के लड़कों की देख-रेख करके या अखबार बेचकर या देहातों में किसी की गायों या मुर्गियों की निगरानी करके कुछ और पैसे कमा सकते हैं। परन्तु जब से बच्चों को पैसों की जरूरत पड़ने लगती है उसी समय से वे पैसे कमाने के लिए इच्छुक भी रहने लगते हैं। समझदार माता-पिता इस बात के अनेक उपाय ढूँढकर निकाल सकते हैं कि थोड़े-बहुत पैसे कमाकर बच्चों का उत्साह भी बढ़ा रहे, परन्तु साथ ही यह भी न हो कि उनको यदि किसी काम के लिए पैसे न दिये जायँ तो वे सहयोग ही न करें।

बच्चा कितनी जल्दी पैसे कमाना आरम्भ कर देता है—एक जगह से दूसरी जगह संवाद ले जाकर या और छोटे-मोटे काम करके—यह बहुत कुछ इस पर निर्भर होता है कि वह किस प्रकार के लोगों के बीच रहता है। १२ बरस के बच्चों में न तो इतनी शक्ति होती है और न इतनी समझ कि वे घर-घर जाकर अखबार बाँट आएँ, परन्तु कभी-कभी उनको इस काम को करने की इजाजत दे दी जाती है।

हर माता-पिता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बच्चो से काम लेने के सम्बन्ध में जो कानून बनाये गए हैं उनके हर शब्द का तथा उद्देश्य का पूरी तरह पालन किया जाय। इन नियमों का पालन करने से बच्चे उन परिस्थितियों से सुरक्षित रहते हैं जिनको अच्छी तरह पूरा करने की उनमें योग्यता नहीं होती और साथ ही उनके पास स्कूल जाने, खेलने और घर का काम-काज करने के लिए काफी समय बाकी बच जायगा।

विशेष समस्याएं

अनियमित आय के कारण, जो मौसमी काम के कारण या किन्हीं अन्य कारणों से कम-ज्यादा होती रहती है, कभी-कभी बच्चों को जेब-खर्च देना असम्भव-सा हो जाता है।

कुछ परिवार, जिनकी आय अनियमित होती है, कहते हैं कि उनके लिए यह सम्भव नहीं होता कि वे कुछ पैसे बचाकर रख लें, जिसमें से हर हफ्ते या हर महीने अपने बच्चों को उनकी उम्र के अनुसार कुछ दे दिया करें। शायद ही कोई बच्चा इतना मूर्ख होता हो कि वह अपने माता पिता से ऐसी चीजों की आशा करे जो उनकी सामर्थ्य के बाहर हैं। यदि बच्चे का जेब-खर्च कभी-कभी कम होता रहे तो यह आने वाले जीवन के लिए अच्छी शिक्षा होगी, जब चीजों की कीमतें बढ़ जाने के कारण या तनख्वाह कम हो जाने के कारण कम खर्च करने की जरूरत पड़ती है।

बच्चों को कभी-कभी कम जेब-खर्च देकर हम उनमें पैसा बचाने की प्रवृत्ति जाग्रत कर सकते हैं। परन्तु चूँकि इस उपाय का प्रयोग इस उद्देश्य से बहुत कम किया जाता है, इससे पता लगता है कि कितने ही बड़े लोगों को भी पैसे को उचित ढंग से प्रयोग करने की शिक्षा नहीं दी गई है।

औसत वार्षिक आय के सिद्धान्त को यदि परिवार में भी लागू किया जाय तो बहुत से परिवारों को अपने बच्चों को पैसे के प्रयोग की उचित शिक्षा देने में

ज्यादा सुविधा होगी। अनिश्चितता की भावना तथा पैसे की कमी का भय कभी-कभी बच्चों मे सुरक्षा के अभाव की भावना पैदा कर देता है और फलस्वरूप बच्चे या तो पैसे चुराने लगते हैं या वे जरूरत से ज्यादा कंजूस हो जाते हैं, या फिर उनमे इससे भी दुखदायी एक प्रवृत्ति पैदा हो जाती है कि 'जितने दिन पैसा है खर्च कर लो।'

२. कभी-कभी पैसे पर जरूरत से ज्यादा जोर भी दिया जा सकता है। यदि परिवार की आय को बराबर-बराबर बॉटने की हर समय चर्चा हो तो बच्चों के मन में भी यह चिन्ता लगी रहेगी कि उनको उनका 'उचित भाग' मिल रहा है कि नहीं। माता-पिता का रवैया इस सम्बन्ध में जितना यथार्थवादी होगा और वे इस विषय को जितना कम महत्त्व देंगे उतनी ही कम हद तक बच्चा अपने बारे में चिन्तित रहेगा।

३. बहुत छोटी अवस्था मे ही विभिन्न बच्चों का पैसा के प्रति रवैया भिन्न होता है। किसी बच्चे के दिमाग में अपने पैसे को खर्च करने के बारे में तरह-तरह की योजनाएँ होती हैं और वह उसी दशा में पैसे बचाता है जब उसे किसी ऐसी चीज को प्राप्त करने की इच्छा हो जिसके लिए वह बहुत लालायित रहता है। इसके विपरीत ऐसे बच्चे भी होते हैं जिनकी बहुत कम इच्छाएँ होती हैं और वे बड़े गर्व से पैसा बचा-बचाकर रखते हैं ताकि अपने संचित धन की डींग मार सकें। सम्भव है कि सुधा इतनी कंजूस हो कि वह अपने भाई को जन्म-दिवस का उपहार देने के लिए भी पैसे खर्च करने से आनाकानी करे और उसका भाई इतना उदार हो कि वह जितनी भी मिठाई खरीदता हो दूसरों को खिला देता हो और उसके लिए कुछ भी न बचता हो।

जो बच्चा दूसरों के साथ चीजें बॉटकर खाने से या दूसरों को चीजें देने से हिचकता है, वह अपने व्यवहार से यह प्रमाणित करता है कि दूसरों के साथ उसका सम्बन्ध अच्छा नहीं है। धीरे-धीरे उसे अपने बचपन की प्रवृत्ति से बाहर निकलना चाहिए जिसके अधीन वह केवल अपने ही बारे मे सोचता है और अपने-आप को तथा अपने हितों को सर्वप्रथम समझता है। स्कूल जाने वाली उम्र का जो बच्चा दूसरों की जरूरतों को नहीं समझता है वह शायद लाड़-प्यार में बहुत खराब कर दिया गया है।

बच्चे के 'स्वार्थी' होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि वह अपने को सुरक्षित नहीं अनुभव करता। वह एक-एक कौड़ी को दॉत से पकड़कर रखता है क्योंकि

उसे कुछ-कुछ यह धारणा होती है कि पैसा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने-आप को सुरक्षित रख सकता है। जिस व्यक्ति के जितने कम दोस्त होंगे, वह चाहे बडा हो या बच्चा, उतना ही ज्यादा वह आराम पाने के लिए अपनी सम्पत्ति का आधार लेगा। पैसा सुरक्षा का ऐसा महत्त्वपूर्ण प्रतीक बन गया है कि बच्चे को भी पैसा पास होने से बड़ा सन्तोष रहता है। ऐसी दशा मे बच्चे में यह भावना जागृत करने का कोई उपाय ढूँढना चाहिए कि उसे डरने की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि उसके माता-पिता उसकी जरूरतों को समझते हैं और उसके लिए उनके प्रेम का आधार काफी है।

इससे विपरीत व्यवहार भी, अर्थात् बहुत फजूलखर्ची करना भी, सुरक्षा के अभाव की भावना का सूचक है। क्योंकि इस प्रकार बच्चा दूसरों की प्रशंसा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, यद्यपि देखने मे यह केवल उसकी उदारता मालूम होती है। ऐसी परिस्थिति मे कभी-कभी हम इस सोच-विचार मे पड जाते है कि छोटे बच्चों को घर पर कितना लाड-प्यार मिलता है।

यौन-सम्बन्धी समस्याओं के प्रति स्वस्थ विचारों का विकास



स्कूल जाने वाले बच्चों को जब यौन-सम्बन्धी शिक्षा देने की समस्या पर सोच-विचार करने का प्रश्न आता है तो बहुधा माता-पिता का यह रवैया होता है, "इस बला को क्यों छेड़ते हो, दबी है दबी रहने दो।" या हम यह कहकर अपने-आप को धोखा देते हैं कि, "अभी जल्दी क्या है फिर कभी बता देंगे।" एक ऐसी वस्तु को, जिसके बारे में हम यह स्वीकार करना नहीं चाहते कि वह इसी समय आवश्यक है, हम निरन्तर टालते रहते हैं।

योजना आवश्यक है

परन्तु अब धीरे-धीरे ऐसे विचारशील माता-पिताओं की संख्या दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है जो पूरे प्रयत्न के साथ बच्चों को यौन-सम्बन्धी व्यवहार, भावनाओं तथा समझ-बूझ के बारे में शिक्षा देने के उत्तरदायित्व को बच्चे की नियोजित शिक्षा का ही एक अंग बना लेते हैं। वे इस बात को समझते हैं कि बच्चों के जीवन के ताने-बाने में यदि यह एक तार कच्चा रह गया तो उनके भावी जीवन का आधार ही कमजोर रह जायगा। जब बच्चा स्कूल जाने योग्य आयु का होता है उस समय उसे अपने शरीर के बारे में जानने की तथा यह जानने की कि बच्चे कैसे पैदा होते हैं, बड़ी उत्सुकता होती है। बच्चे की इस उत्सुकता का यदि सन्तोषजनक उत्तर न दिया गया तो यह प्रश्न भी वर्जित तथा निषिद्ध विषयों की सूची में दबकर रह जाता है।

अच्छा तो यही है कि उनको सन्तोषजनक उत्तर दे दिया जाय। परन्तु हर हालत में स्कूल जाने वाले बच्चे की दिलचस्पियों का क्षेत्र इतना विस्तृत होता जाता है कि हम बहुत शान्तिपूर्वक, बहुत ही स्वाभाविक ढंग से उसकी वर्तमान उत्सुकता को सन्तुष्ट कर सकते हैं और उसे किशोरावस्था के बड़े-बड़े परिवर्तनों को आसानी से समझने के लिए तैयार कर सकते हैं। यदि हम स्वयं ही इसके विषय में निश्चित रूप से नहीं जानते और हमारी भावनाओं में एक तनाव है तो हमें सबसे पहले स्वयं अपने-आप को भय और शंका से मुक्त करना चाहिए।

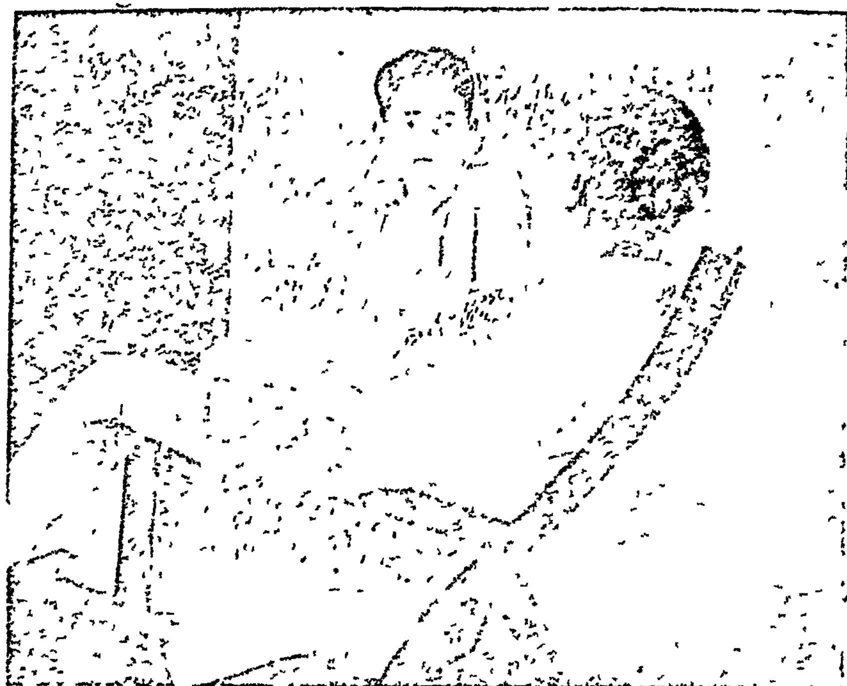
यह करना सम्भव है, और यह बात सीखने के लिए माता-पिता के पास

एक दृढ़तम प्रेरणा मौजूद होती है—अपने बच्चों की भलाई। यदि कोई उद्देश्य या लक्ष्य हो तो किसी काम को सीखना आसान हो जाता है, वह चाहे सिलाई हो, या टाइप करना हो या तैरना हो। फौज में अनपढ़ लोग महीने या दो महीने में लिखना-पढ़ना सीख लेते हैं क्योंकि घर खत लिखने की इच्छा उनको उत्प्रेरित करती है। इसी प्रकार की शक्तिशाली प्रेरणा के अधीन हम भी यौन-सम्बन्धी विषयों के प्रति नये तथा अधिक उदार विचारों को ग्रहण करना सीख सकते हैं, और वह प्रेरणा होती है अपने बच्चों के साथ ज्यादा खुलकर बात कर सकने की इच्छा।

इस विषय पर अच्छी और सरल किताबों की कोई कमी नहीं है, जिनसे हम केवल आवश्यक बातें ही नहीं जान सकते हैं बल्कि हमारे दिमागों पर पड़ा हुआ परदा भी हट सकता है और हम स्वयं अपने बचपन पर पुनः दृष्टि डालकर उसे समझ सकते हैं। इन पुस्तकों से हमको यह समझने में सहायता मिलती है कि यौन-सम्बन्धी विषयों के प्रति हमारी अच्छी, बुरी या न अच्छी न बुरी जो भावनाएँ हैं वे क्यों हैं? पढ़ने और अध्ययन करने से तो सहायता मिलती ही है पर दूसरों से बहस करने से हमको इस बात में बहुत ज्यादा सहायता मिलती है कि हम इस सम्बन्ध में उठने वाली शंकाओं को दूर करें और भय से मुक्त हो जायँ।

क्या हम अपने बच्चों को भली-भाँति जानते हैं

बचपन की इस अवस्था में, ऊपर से देखने में तो यह मालूम होता है है कि बच्चा यौन-सम्बन्धी समस्याओं के प्रति बिलकुल ही बेखबर है, पर हमको यह जानना जरूरी है कि उसके अन्दर क्या भावनाएँ काम कर रही हैं। सम्भव है कि हम उसमें यौन-सम्बन्धी विषयों के प्रति कोई दिलचस्पी न देखें और न उसके व्यवहार में ही कोई यौन-सम्बन्धी प्रवृत्ति पाई जाती हो, बस केवल इतना ही अन्तर देखने में आए कि लड़के और लड़कियाँ इस अवस्था में एक-दूसरे से दूर खिचते चले जाते हैं और पहले की अपेक्षा एक-दूसरे से कम मिलते हैं। यदि कोई बच्चा इस विषय में बहुत ही कम दिलचस्पी दिखाता है तो इसका कारण यह हो सकता है कि बच्चा इस बात को बड़ी जल्दी समझ गया है कि कुछ काम ऐसे हैं जिन पर खुलकर पूरी आजादी से न तो बहस की जाती है और न उनको सबके सामने किया ही जाता है। उदाहरणतः, जब बच्चा शुरू से ही देखता है कि हर जगह लड़कों और लड़कियों के पेशाबखाने और पाखाने अलग-अलग बने होते



हैं, तो वह यह बात सहज ही समझ जाता है कि मल-मूत्र त्याग ऐसा काम तो है ही जो सबके सामने नहीं किया जाता, बल्कि यह भी कि लड़के लड़कियों के सामने और लड़कियाँ लड़कों के सामने इस काम को नहीं कर सकतीं। जब बच्चे स्कूल जाने लगते हैं, प्रायः उसी समय में उनके माँ-बाप लड़कों और लड़कियों को अलग-अलग कमरों में कपड़े बदलने के लिए कहते हैं और इसके अतिरिक्त अब उनको पहले की तरह साथ नहाने भी नहीं दिया जाता। ये बातें तथा इसी प्रकार के दर्जनों और व्यवहार, जो इतने साधारण होते हैं कि उनकी ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता, घर पर और उनके विशेष सांस्कृतिक समूह में बच्चों की शिक्षा का ऐसा अंग बन जाते हैं कि उनमें यौन-ज्ञान उसी प्रकार जाग्रत होता है जैसे उनको धूप और वर्षा का ज्ञान होता है। बच्चे का यह ज्ञान उतना ही स्वस्थ और स्वाभाविक हो सकता है जितना जाड़े की धूप का आनन्द होता है, या फिर यह ज्ञान अरुचिकर रूप भी धारण कर सकता है। परन्तु हम बच्चों में इस भावना को प्रोत्साहित करना नहीं चाहते कि वे यौन-सम्बन्धी विषयों को 'निराशा और उदासीनता' की दृष्टि से देखने लगें।

केवल जानकारी ही काफी नहीं है

हमको इस भ्रम मे नहीं रहना चाहिए कि बच्चे को केवल जानकारी की ही आवश्यकता होती है। वास्तव मे, शायद यह हमारे उत्तरदायित्व का कम महत्त्व-पूर्ण अंग है। यद्यपि ठीक-ठीक और निश्चित जानकारी का बहुत महत्त्व है परन्तु इससे भी ज्यादा महत्त्व इस बात का है कि इस जानकारी को प्राप्त करने के बाद बच्चे में क्या भावनाएँ जाग्रत होती हैं और वह इस जानकारी का क्या अर्थ लगाता है, क्योंकि इसी पर यह निर्भर होगा कि वह इस जानकारी का किस प्रकार उपयोग करेगा। स्कूल में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न विषयों में बच्चों को बहुत सी यौन-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है। यह हमारा काम है कि इस समस्त विषय के बारे मे उनका रवैया स्वस्थ रहे।

अनजाने ही हम अपनी भावनाओं को समय-समय पर अपने बच्चों मे प्रविष्ट करते रहते हैं। यदि हमको बचपन मे गणित से भय लगता था और हम उससे घृणा करते थे, तो अपनी बेटी सुषमा को गणित के प्रश्न हल करने में कठि-नाई अनुभव करते देखकर हमारा वह रवैया नहीं होगा जो उस दशा में होता यदि बचपन मे हमको गणित के प्रश्न हल करने मे आनन्द आता होता। इसी प्रकार यदि यौन-सम्बन्धी समस्याओं के प्रति हममे भय और घृणा की भावना है तो यही भावनाएँ हमारे बच्चों के जीवन मे भी प्रवेश कर जायँगी। इसलिए यह हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि यौन-सम्बन्धी समस्याओं को अपने जीवन की एक स्वस्थ और रचनात्मक शक्ति बनाएँ।

यदि बच्चे की माता तथा उसके पिता के आपस के सम्बन्ध सच्ची सहानु-भूति और एक-दूसरे की आवश्यकताओं की पूरी जानकारी पर आधारित होंगे—यौन-सम्बन्धी तथा अन्य आवश्यकताओं के विषय में—तो अवश्य रूप से बच्चे पर इसका जो प्रभाव पड़ेगा वही उस आधार का काम करेगा जिस पर बच्चे के यौन-सम्बन्धी ज्ञान का निर्माण होगा। माता-पिता का एक-दूसरे के प्रति स्पष्ट और सच्चा व्यवहार रखना, अपने व्यवहार मे अस्वाभाविकता का समावेश न होने देना, एक-दूसरे के प्रति प्रेम-भाव रखना उस मूल स्रोत का काम करता है जिससे बच्चे में भावनाएँ जन्म लेती हैं और इन्हीं के आधार पर वह विभिन्न चीजों के प्रति अपना रवैया बनाता है।

यदि हम चाहते हैं कि गलत जानकारी के कारण हमारा बच्चा चिन्ता और उलझन में न पड़ जाय—जिस चिन्ता और उलझन का शायद हमने [illegible]

में सामना करना पड़ा था, तो हमें उसे कुछ ऐसी मूल बातों का ज्ञान अवश्य करा देना चाहिए, जिनका जानना उसके लिए नितान्त आवश्यक है।

उसे यह जानना चाहिए कि उसका शरीर किस प्रकार काम करता है, उसे अपने स्नायुओं, फेफड़ों तथा हृदय की आश्चर्यजनक कार्य-विधि का ज्ञान होना चाहिए तथा उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि जो खाना वह खाता है वह कहाँ जाता है। यदि उसको यह बताया जायगा कि उसके शरीर का पालन-पोषण किस प्रकार होता है तो वह मल-मूत्र आदि को शरीर की क्रिया का एक अनिवार्य भाग समझेगा, और उनसे घृणा करने के बजाय वह समझेगा कि जो भोजन वह खाता है और जो पानी वह पीता है ये उसी के अवशेष मात्र हैं, जिनका शरीर की रचना में कोई प्रयोग नहीं हो सकता। उसे अपने शरीर के विभिन्न अंगों के नाम, उनके काम तथा उनके काम करने के ढग के बारे में थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होना चाहिए—मस्तिष्क की जटिल यंत्र-विधि से लेकर पाचन व्यवस्था, जननेन्द्रियों तथा अस्थि-पिंजर तक हर भाग का ज्ञान उसे होना चाहिए। उसे यह जानने की जरूरत है कि उसके शरीर में अनेक गिल्टियाँ छिपी होती हैं। ये गिल्टियाँ अश्रु की नालियों की तरह बाहर से दिखाई तो नहीं देतीं पर शरीर के अन्दर-ही-अन्दर यथासमय पर विभिन्न प्रकार के द्रव पदार्थ संचारित करती रहती हैं जिनके कारण हमारी सूरत-शक्ल में ही नहीं बल्कि हमारी भावनाओं में भी परिवर्तन होता है।

उसे यह जानना चाहिए कि यौन-सम्बन्धी व्यवहार के बारे में जो नियम बनाये गए हैं या जो धारणाएँ प्रचलित हैं उनका क्या कारण है। आने वाली हर पीढ़ी के संरक्षण और उसकी भलाई के लिए विवाह और पारिवारिक जीवन क्यों आवश्यक है? हमारा रहन-सहन का जो ढंग है उसमें यह बात किस प्रकार और क्यों आई कि किशोरावस्था में पुरुष और स्त्री में यौन-सम्बन्धी प्रौढ़ता आते ही सम्भोग आरम्भ कर देने को अनुचित समझा जाता है? हमें अपने बच्चों को समझाना चाहिए कि जब होने वाले बच्चे के माता-पिता दोनों ही जीवन में भली भाँति स्थापित हो जायँ तभी उनको विवाह करना चाहिए और बच्चे पैदा करना चाहिए। इस प्रकार बच्चों की सुरक्षा और उनका उचित पालन-पोषण निश्चित हो जाता है। यदि बच्चा इन सब बातों को अच्छी तरह समझ जायगा तो वह उन पाबन्दियों को भी सहज ही स्वीकार कर लेगा जो समाज की ओर से उस पर लगाई जाती हैं। यदि माता-पिता का आपस का सम्बन्ध दृढ़ और संघर्षहीन हो तो बच्चे पर अपने-आप ही इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है और वह विवाह के सम्बन्ध को

सम्मान की दृष्टि से देखने लगता है।

किशोरावस्था से युवावस्था मे प्रवेश करते समय उसमे जो यौन-सम्बन्धी तीव्र इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं उसका कारण उसे समझाना चाहिए, उसे यह समझाना चाहिए कि यह तीव्र इच्छा स्वतः न तो अच्छी है और न बुरी, यह केवल एक ऐसी आवश्यकता है जिसके आधार पर मनुष्य-जाति के पुनर्जन्म का क्रम चलता रहता है। लडको और लड़कियो को यह बताने की जरूरत है कि प्राचीन काल मे पुरुष और स्त्री का यौन-सम्बन्धी व्यवहार केवल एक शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति-मात्र था परन्तु अब सफल विवाह के रूप मे हमारी उच्चतम भावनाएँ और हमारे श्रेष्ठतम गुण इसी व्यवहार से सम्बन्धित हैं। उनके लिए यह भी जानना जरूरी है कि यह परिवर्तन परिवार के विकास के कारण ही सम्भव हुआ और पति-पत्नी में एक-दूसरे के लिए जो लगाव होता है वही इसका आधार है, यद्यपि इस लगाव का जन्म भी कदाचित यौन-सम्बन्धी इच्छाओ के जाग्रत होने के कारण ही हुआ हो। पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम, उनके एक-दूसरे की रुचियो मे भाग लेने तथा एक-दूसरे के अनुभवों से हाथ बँटाने के कारण ही यह सब-कुछ सम्भव हो सका है।

विशेष रूप से उस समय, जब वे युवावस्था के निकट पहुँच रहे हों, या वे बालिग होने वाले हो, लडकों और लड़कियो को स्पष्ट रूप से, बिलकुल सीधे-सादे शब्दों मे यह समझाने की जरूरत होती है कि उनके शरीर मे क्या-क्या परिवर्तन होंगे और इन शारीरिक परिवर्तनो के साथ-साथ उनकी भावनाओं में क्या परिवर्तन होगा। हजारों बच्चे हर साल इसी कारण मुसीबत मे फँस जाते हैं कि उनको इस सम्बन्ध मे किसी प्रकार की भी सहायता नहीं दी जाती : ऐसी लड़कियाँ [illegible] होती हैं जिनको मासिक धर्म के बारे मे कुछ भी ज्ञान नहीं होता और यह परिवर्तन उनमे अचानक आ जाने के कारण वे घबरा जाती हैं, या उनको अपनी बदलती हुई भावनाओ के बारे मे कुछ भी ज्ञान नहीं होता और वे नहीं समझ पातीं कि उनकी दिलचस्पियाँ क्यों बदलने लगीं, इसी प्रकार ऐसे असंख्य लड़के भी होते हैं जो अपनी आवाज के परिवर्तन का कारण नहीं समझ पाते या जो छिप-छिपकर दाढ़ी बनाना आरम्भ कर देते हैं या रात्रि के समय वीर्य-स्खलन होने पर चिन्तित हो उठते हैं।

जवान होने की गति भिन्न होती है

लड़कियों को इन सब बातो के बारे मे लड़कों से भी पहले [illegible]

चाहिए क्योंकि वे लड़कों से जल्दी जवान होने लगती हैं। इसी कारणवे और भी ज्यादा विस्मित हो जाती हैं: वे अपने-आपको भिन्न समझने लगती हैं क्योंकि वे अपनी उम्र के लड़कों से ज्यादा बड़ी मालूम होती हैं, परन्तु इसके साथ ही उनके माता-पिता उनकी सुरक्षा का अधिक ध्यान रखते हैं। यदि उनको पहले से मासिक धर्म के बारे में नहीं बताया जायगा तो पहली बार इस क्रिया को देखकर वे घबरा जायँगी और भयभीत हो जायँगी। उनको पहले से ही बता देना चाहिए कि प्रति मास अंडाशय में से जो अंडा निकलता है उसके पोषण के लिए गर्भाशय अपने अस्तर में जो खून, मज्जा तथा अन्य पदार्थ जमा करके रखता है वही हर महीने मासिक धर्म के द्वारा बाहर निकल जाता है। उनको यह बताना चाहिए कि जब लड़की की अवस्था गर्भ धारण करने योग्य हो जाती है और यह अंडा शुक्रकण (Spermcell) की अनुपस्थिति के कारण गर्भ के रूप में परिणत नहीं होता, तो वह उस खून के साथ शरीर के बाहर निकल जाता है जो आवश्यकता पड़ने पर अंडे के पोषण के लिए गर्भाशय में जमा रहता है। जब मासिक धर्म के बारे में यह सीधी-सादी और आसानी से समझ में आने वाली बात लड़कियों को बता दी जायगी तो वे उसे शरीर की एक स्वाभाविक और साधारण क्रिया ही समझेंगी।

लड़कियों को यह भी बताने की जरूरत होती है कि लड़कों में युवावस्था के साथ क्या परिवर्तन आते हैं—उसी प्रकार लड़कों को भी यह बताने की जरूरत है कि लडकियाँ किस प्रकार जवान होती हैं। यदि लड़कियों को यह बात मालूम हो जाय कि वे लड़कों की अपेक्षा ज्यादा जल्दी जवान होती हैं तो उनको यह समझने में आसानी होगी कि वे अपनी उम्र के लड़कों की अपेक्षा अपने से बड़े लड़कों के प्रति क्यों आकृष्ट होती हैं। उनको यह बताना लाभदायक होगा कि पुरुष और स्त्री के सामाजिक सम्बन्ध में उनका क्या पात्र है, तथा यह कि यौन-सम्बन्धी व्यवहार में लड़कियों की अपेक्षा लड़के ज्यादा प्रहारात्मक प्रवृत्ति के होते हैं और यह भी कि लड़कों का व्यवहार बहुत कुछ इस पर निर्भर होता है कि स्वयं लड़कियों का व्यवहार कैसा होता है।

जब बच्चे की उम्र इतनी हो जाती है कि वह स्कूल जाने लगे तब यह समझा जाने लगता है कि सहायता के लिए माता की अपेक्षा अपने पिता का सहारा लेना ही उसके लिए ज्यादा उचित है। पिता को अपने बच्चों के साथ इतनी मित्रता रखनी चाहिए कि किसी भी अवस्था में बच्चे उनसे झिझकें नहीं

और उन्हें कोई बात छिपाने की ज़रूरत न पड़े। परन्तु कुछ लोग अपने बच्चों को योनि सम्बन्धी जानकारी प्रदान करने के उत्तरदायित्व से बचना चाहते हैं। परन्तु जब तक किसी पिता को यह विश्वास न हो कि वह अपने बच्चे के प्रश्नों का उत्तर सरल और स्वाभाविक ढंग से दे सकता है तब तक उसे इसका प्रयत्न न करना चाहिए।

हमारा जो रहन-सहन का ढंग है उसमें साधारणतः माँ अपने बच्चों के ज्यादा निकट होती है क्योंकि वह रात-दिन उनके सम्पर्क में रहती है। इसीलिए शायद वही अपने बच्चे के सारे प्रश्नों का उत्तर देती रहती है और उसी के पास बच्चा अपनी ज़रा-ज़रा सी समस्याएँ लेकर जाता रहता है—घुटने में चोट लग जाती है तो वह अपनी माँ के पास जाता है, कोई मर जाता है तो वह माँ से जाकर पूछता है कि आदमी मर क्यों जाता है।

परन्तु चूँकि वह स्वयं कभी लड़का नहीं रही है इसलिए वह लड़के की भावनाओं में उस प्रकार प्रवेश नहीं कर सकती जैसे उसका पिता कर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि बच्चा अपनी माता पर पूरी तरह अवलम्बित रहता है तो पिता और पुत्र के सम्पर्क का तथा उनके एक-दूसरे को समझने का एक बहुत बड़ा अवसर हाथ से जाता रहता है। लड़कों को अपने पिता के साथ इस प्रकार के सम्पर्क को बढ़ाने की ज़रूरत होती है, कम करने की नहीं। आदर्श बात तो यह होगी कि माता-पिता में आपस में तथा उनमें और उनके बच्चों में इतनी घनिष्ठता हो कि वे दोनों ही मिलकर इस उत्तरदायित्व को भी उसी प्रकार पूरा करें जैसे वह अपने दूसरे उत्तरदायित्वों को करते हैं। उचित अवसर पर बच्चों से इस विषय पर वार्तालाप करना उतना ही स्वाभाविक होगा जितना उनको यह समझाना कि कोयला कहाँ से आता है या बादलों से पानी क्यों बरसता है।

जब बच्चे में युवावस्था से सम्बन्ध रखने वाले शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होना आरम्भ हो जाते हैं उस समय माता की अपेक्षा बच्चे का पिता ही इससे सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं का उचित ढंग से उत्तर दे सकता है।

इस अवस्था में बच्चे में—लड़कों में भी और लड़कियों में भी—जो बात सबसे अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है वह होती है उनकी यौन-विषयक चेतना। इसका पता हमें सबसे पहले इस कारण होता है कि बच्चे इस अवस्था में ज़्यादा शर्मीले हो जाते हैं। वे इस बात के लिए हठ करने लगते हैं कि उनकी अपनी कोई जगह हो जहाँ कोई उनके कामों में हस्तक्षेप न करे। इस अवस्था में बच्चे

यह नहीं चाहते कि उनकी माँ आकर उनको नहलाए। यौन-सम्बन्धी सारी समस्या भावनाओं का रूप धारण करने लगती है। लड़के के लिए उसकी माँ अब केवल माँ ही नहीं रह जाती, वह एक स्त्री भी होती है। उनमें दिन-प्रतिदिन यह चेतना आती जाती है कि माँ बेटे के प्रेम का जो पहले रूप था उसे अब बदलना होगा क्योंकि अब वह जवान पुरुष होता जा रहा है।

यहाँ पर एक ऐसी समस्या के बारे में बहस करना क्या अनावश्यक है जो बच्चे की किशोरावस्था तक हमारे सामने नहीं आयगी? यद्यपि हम यहाँ १२ बरस के तथा उससे कम आयु के बच्चों का उल्लेख कर रहे हैं परन्तु फिर भी हमारे लिए इस समय भी उस बात का बहुत महत्त्व है जो कुछ दिनों के बाद हमारे सामने आने वाली है। हम अपने मार्ग में कोई रोड़ा नहीं अटकाना चाहते। यदि हम बच्चों को पहले से ही काफी तैयार कर दें तो हम इस कठिनाई से बच सकते हैं, नहीं तो कुछ दिनों बाद वह अवस्था आ जायगी जब यौन-सम्बन्धी समस्याएँ बहुत निजी समस्याएँ बन जाती हैं और उनका बच्चे की भावनाओं के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध हो जाता है। यदि किशोरावस्था को पहुँचने से पहले ही बच्चे में इस विषय में समझ-बूझ और विश्वास पैदा हो जाय तो बच्चा युवावस्था के आगमन की प्रतीक्षा करता है और उसे आकस्मिक परिवर्तनों से कोई घबराहट नहीं होती।

स्कूल किस प्रकार सहायता कर सकते हैं

इसमें तो सन्देह नहीं कि बच्चों को यौन-सम्बन्धी शिक्षा देने का उत्तरदायित्व मुख्यतः उनके माता-पिता पर होता है। परन्तु कुछ माता-पिता ऐसे होते हैं जो इस बात को स्वीकार करने से घबराते हैं कि उनके बच्चे कभी बड़े भी होंगे; वे किशोरावस्था की समस्याओं की भनक पाते ही बचकर दूर हो जाते हैं। परन्तु यदि हम चाहते हैं कि बच्चे अपनी किशोरावस्था का उतना आनन्द उठा सकें जितना उनको उठाना चाहिए, तो उनको किसी-न-किसी प्रकार सहायता देनी होगी।

यदि माता-पिता समझते हैं कि वे इस काम को उचित ढंग से पूरा नहीं कर सकते, तो वे यह चाहते हैं कि स्कूल उनके इस उत्तरदायित्व का कुछ भार अपने कन्धों पर ले ले (क्योंकि माता-पिता के अतिरिक्त स्कूल ही एक ऐसी संस्था है जो सब बच्चों तक पहुँच सकती है) और सबसे अच्छे ढंग से इस समस्या को हल कर दे। किसी डॉक्टर से यह कहने से कि वह लड़कों और लड़कियों से इस

विषय में 'बात करे' या किसी और आदमी को विशेष रूप से इस काम के लिए बुलाने से उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। इस प्रकार बच्चों को किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता से इस विषय से 'परिचित कराने' में हमारा उद्देश्य कितना ही उच्च क्यों न हो पर इससे कोई भी लाभ नहीं हो सकता। इससे होता यह है कि यह विषय दैनिक जीवन की पृष्ठभूमि से अलग होकर बहुत प्रमुख रूप से बच्चे के सामने आ जाता है और बच्चा उसको आवश्यकता से अधिक महत्त्व देने लगता है।

किसी बच्चे को इस प्रकार का व्यवहार थोड़ा सा मनोरंजक भी प्रतीत हो सकता है, परन्तु इसी व्यवहार के कारण दूसरे बच्चे की उत्सुकता को और प्रोत्साहन मिल सकता है। एक ही बार बात करके बच्चे को वह सारी आवश्यक जानकारी प्रदान कर देना असम्भव-सा है क्योंकि स्कूल की एक ही कक्षा के विद्यार्थियों की पृष्ठ-भूमि भिन्न होती है तथा उनकी प्रौढ़ता की मात्रा भी भिन्न ही होती है।

यदि माता-पिता समझते हैं कि यौन सम्बन्धी शिक्षा स्कूल की ही शिक्षा का एक अंग होना चाहिए तो उनको यह मालूम करना चाहिए कि इस शिक्षा को प्रदान करने का सबसे अच्छा उपाय क्या है। स्कूल के विषयों में एक विषय और बढ़ा देने से तो समस्या हल नहीं हो पायगी। परन्तु यदि शिक्षक बुद्धिमान हो और स्वयं उनका जीवन संतुलित हो तो उनके सहयोग से स्कूल की शिक्षा का कार्यक्रम ऐसा विस्तृत बनाया जा सकता है कि स्कूल में पढ़ाए जाने वाले हर विषय के द्वारा—गणित से लेकर चित्रकला तक—बच्चों को यह बात विस्तारपूर्वक समझाई जा सके कि यौन-सम्बन्धी व्यवहार का उनके जीवन में क्या सम्बन्ध है।

क्या यह बात बहुत असम्भव मालूम होती है कि गणित की सहायता से यौन-सम्बन्धी समस्याओं को समझाया जा सकता है? यदि शिक्षक अच्छा हो तो वह इस बात को बड़े स्पष्ट रूप से समझा सकता है कि संख्याएँ और रुपये-पैसे परिवार के जीवन का एक अभिन्न अंग हैं और यह कि परिवार के विभिन्न व्यक्तियों की इच्छाओं में जो अन्तर होता है, जिसका आधार कभी-कभी उनके यौन-भेद पर भी होता है, वह परिवार के खर्चे की योजना बनाते समय झगड़े का कारण बन जाता है और परिवार के कुछ व्यक्तियों को यह गलत धारणा हो जाती है कि उनको उचित भाग नहीं मिला।

भाषा की शिक्षा देते समय कहानियों तथा उपन्यासों के पात्रों पर चर्चा करके यही बात बच्चों को समझाई जा सकती है। सामाजिक शिक्षण में भी सहायता ली जा सकती है; इस विषय को पढ़ाते समय बच्चों को यह बताया जा सकता है कि

विवाह के सम्बन्ध में तथा बच्चों के सम्बन्ध में जो कानून बनाये गए हैं उनका कारण क्या है। जीवन-विज्ञान की सहायता से उनको उनके शरीर की रचना का ज्ञान कराया जा सकता है।

यदि माता-पिता तथा स्कूल के शिक्षक दोनों इस योग्य बन जायँ कि स्वस्थ मस्तिष्क और स्वस्थ भावनाओं के लक्ष्य तक पहुँचने में वे बच्चों की सहायता कर सकें तो बड़े होने पर बच्चों के जीवन में दुखान्त घटनाओं की बहुत कमी हो जायगी, और इस लक्ष्य तक पहुँचने का यही साधन है कि बच्चों का रवैया यौन-सम्बन्धी व्यवहार के प्रति स्वस्थ हो।

बचपन की मध्यावस्था में बच्चे का विकास



बहुत बचपन की अवस्था तथा किशोरावस्था के बीच की जो अवस्था होती है उसे बचपन की मध्यावस्था कहते हैं। यह एक ऐसी अवस्था होती है जब बच्चे का शारीरिक विकास धीरे-धीरे नियमित रूप से चलता रहता है। इस विकास की गति न तो उतनी तेज होती है जितनी कि इससे पहले थी, और न उतनी ही जितनी आगे चलकर होगी। बच्चों के जीवन मे यह एक ऐसी अवस्था होती है जब माता-पिता निश्चिन्तता की साँस ले सकते हैं, क्योंकि यह अवस्था अपेक्षतः सुरक्षित तथा स्वास्थ्यमय जीवन की अवस्था होती है। जिस जमाने में बचपन की बीमारियो का सबसे ज्यादा खतरा होता है वह बीत चुका होता है। इस अवस्था मे भी बच्चे को कभी जुकाम हो जाता है, कभी हाथ या पाँव टूट जाता है, या कभी कोई [illegible] बीमारी लग जाती है जिसके कारण माता-पिता को परेशानी तो होती है, पर [illegible] उनको उसकी बीमारी में दिन-दिन-भर रात-रात-भर चिन्ता के कारण [illegible] नहीं पड़ता जैसा कि उनको कुछ दिन पहले इन्हीं बच्चो के लिए [illegible] पड़ता था [illegible] वे बहुत छोटे थे। इस अवस्था के बच्चे दूसरी उम्र के बच्चों की अपेक्षा दुर्घटनाओं के भी कम शिकार होते हैं। इस अवस्था के जितने बच्चे दुर्घटनाओं के [illegible] होते हैं उससे दुगनी संख्या में ५ बरस से कम उम्र के बच्चे तथा १५ [illegible] बरस तक के युवक दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं। बचपन तथा [illegible] तीव्र विकास की अवस्था के बीच जो यह 'साँस लेने का मौका' होता है उसमें माता-पिता को कुछ सुस्ताने का अवकाश मिल जाता है क्योंकि कुछ दिनों के बाद [illegible] बच्चा किशोरावस्था मे प्रवेश करेगा तब उनको नई चिन्ताओं का [illegible] होगा।

बच्चे की यह अवस्था ऐसी होती है जब वह [illegible] तत्पर रहता है। उसके मस्तिष्क की वृद्धि होती रहती है। [illegible] नये-नये विचारों को सहज ही ग्रहण कर सकता है। उसका शरीर [illegible] जाता है। उसे अपनी पेशियो पर काबू हो जाता है जिससे [illegible] ऐसे कामो मे निपुण हो सकता है जिनमे शरीर की कुशलता की [illegible]

है जैसे तैरना, गाय दुहना, बाजा बजाना या क्रिकेट खेलना आदि।

उनके विकास के सम्बन्ध में इस अवस्था में कौनसी नई बात होती रहती है और उसके कारण हमको बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में क्या परिवर्तन करना चाहिए? पहली बात तो यह कि बच्चे के शरीर की रचना की विशेषताएँ, जो बहुत बचपन में गदबदेपन के कारण स्पष्ट नहीं होतीं, अब स्पष्ट होने लगती हैं। शरीर-रचना के सम्बन्ध में परिवार की जो विशेषताएँ होती हैं वे प्रकट होने लगती हैं, जैसे शरीर का चौड़ा होना, या कद का छोटा होना, या दुबला होना और फलस्वरूप हड्डियों का लम्बा होना आदि।

लम्बाई और वजन

बच्चों के विकास का अनुमान करते समय हमको विभिन्न प्रकार के बच्चों के अन्तर को ध्यान में रखना चाहिए। शरीर-रचना-सम्बन्धी तथा पारिवारिक पृष्ठ-भूमि का हर व्यक्ति पर इतना प्रभाव पड़ता है कि यदि किसी बच्चे के बारे में यह जानना हो कि उसका विकास उचित रूप से हो रहा है कि नहीं, तो किसी दूसरे बच्चे के साथ उसकी तुलना करने से कोई लाभ नहीं हो सकता। इसके बजाय हमें उसकी तुलना स्वयं उसके जीवन के पूर्व काल के साथ ही करनी चाहिए या ऐसे बच्चों के साथ जिनके शरीर की रचना मूलरूप से उनके समान ही हो। कुछ बच्चे दुबले-पतले होते हैं तथा कुछ बच्चों का शरीर चौड़ी बनावट का होता है; कुछ बच्चों की हड्डियाँ छोटी होती हैं और कुछ की बड़ी। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो हमेशा 'अपनी आयु से बड़े' मालूम होते हैं और कुछ हमेशा छोटे, यद्यपि उनकी आयु तथा उनके शरीर के रूप का यह अन्तर किसी प्रकार भी हानिकारक नहीं होता। जो बच्चे बचपन में लम्बे होते हैं, वे हमेशा अपनी आयु के अनुसार ज्यादा लम्बे मालूम होते हैं, उनके जीवन में केवल कुछ साल ऐसे आते हैं जब यह बात सत्य नहीं होती।

बच्चे की लम्बाई की तरह उसके वजन में नियमित रूप से विकास नहीं होता, क्योंकि वजन पर कई और चीजों का भी प्रभाव पड़ता रहता है, जैसे बीमारी, पौष्टिक भोजन का अभाव तथा ऐसी भावनाएँ जिनका बच्चे के सुव्यवस्थित विकास पर बहुत असर पड़ता है। क्योंकि ये चीजें ऐसी हैं जिन पर बच्चे के माता-पिता का वश चल सकता है, इसलिए उनको बच्चे की लम्बाई की अपेक्षा उसके वजन का अधिक ध्यान रखना चाहिए। जिस समय बच्चा बढ़ता होता है उस समय वह जो कुछ खाता है उसका बहुत बड़ा अंश सबसे पहले उसमें शक्ति का निर्माण

करने के लिए प्रयोग हो जाता है और उसके बाद उसकी लम्बाई तथा उसकी हड्डियों को बढ़ाने में प्रयोग होता है । बच्चे का मांस कितनी हद तक बढ़ता है, यह इस पर निर्भर होता है कि उसका भोजन तथा अन्य परिस्थितियाँ, जैसे [illegible] तथा सन्तोष आदि, उचित ढंग की हैं या नहीं, क्योंकि बच्चे के विकास पर इन परिस्थितियों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है । बच्चे का वजन किस प्रकार बढ़ रहा है, यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है । सम्भव है कि कोई बच्चा देखने में बहुत दुबला-पतला हो, पर उसका शरीर बहुत गठा हुआ बना हो और इसके विपरीत दूसरा बच्चा देखने में तो मोटा हो पर उसका शरीर इतना हृष्ट-पुष्ट न हो । इस अवस्था में साधारणतया बच्चों का वजन प्रतिवर्ष लगभग ५ पौंड बढ़ता है ।

जन्म से लेकर ६ या १० वर्ष की अवस्था तक लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा छोटी भी होती हैं और हल्की भी । परन्तु १० वर्ष की अवस्था से १४ या १५ वर्ष की अवस्था तक यह अनुपात उलट जाता है, क्योंकि किशोरावस्था से फौरन पहले लड़कियों की लम्बाई तथा उनका वजन लड़कों की अपेक्षा बड़ी तेज़ी से बढ़ता है । इस अवस्था के बाद लड़के फिर आगे निकल जाते हैं और इसके बाद वे हमेशा आगे रहते हैं ।

हर अवस्था में लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ होती हैं । उनके दाँत जल्दी निकलते हैं, उनकी इन्द्रियाँ ज्यादा तेज़ी से प्रौढ़ होती हैं और शरीर की गिल्टियों से होने वाला द्रव्य-संचार भी, जिसके कारण बच्चा किशोरावस्था को प्राप्त होता है, लड़कियों में पहले आरम्भ होता है । १२ वर्ष की अवस्था में लड़कियाँ शरीर के साधारण विकास के मामले में लड़कों से २ वर्ष आगे होती हैं । विकास के इस अन्तर का उनके सामाजिक व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह पहले बताया जा चुका है ।

शरीर के विभिन्न अंगों का अनुपात

शरीर के सभी अंगों का समान गति से तथा निश्चित रूप से विकास नहीं होता । हर अंग के विकास का ढंग अलग होता है । बहुत छोटी अवस्था में भी कुछ अंग दूसरे अंगों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं । ६ वर्ष की अवस्था [illegible] का सिर जितना बड़ा होता है लगभग उतना ही हमेशा रहता है । [illegible] में सिर की लम्बाई सारे शरीर की लम्बाई के छठे भाग के बराबर होती [illegible] युवावस्था में सिर शरीर की लम्बाई के आठवें भाग के बराबर होता है । [illegible] अनुपात में होने वाले इस अन्तर का मुख्य कारण यह [illegible]

में ज्यादा तेजी से बढ़ती हैं । हाथों और टाँगों के अनुपात से धड़ ज्यादा लम्बा होता है, और विशेष रूप से टाँगों को तो बहुत तेजी से बढ़ना पड़ता है क्योंकि बचपन में वे अपेक्षतः बहुत छोटी होती हैं ।

नाड़ी-मण्डल, जिसका सबसे बड़ा भाग मस्तिष्क होता है, शुरू-शुरू में बड़ी तेजी से बढ़ता है और ६ वर्ष की अवस्था के लगभग इसका विकास निश्चित रूप से धीमा पड़ जाता है और उस काल के अन्त तक, जिसका हम यहाँ अध्ययन कर रहे हैं, इसके विकास का कार्य पूर्ण रूप से सम्पन्न हो चुका होता है। जननेन्द्रियों के विकास की गति इसके बिलकुल विपरीत होती है । ६ वर्ष से १२ वर्ष की अवस्था तक इनका विकास बहुत थोड़ा होता है, परन्तु किशोरावस्था में ये बड़ी तेजी से बढ़ती हैं । इस अवस्था में शरीर का केवल एक अंग ऐसा होता है जो बहुत प्रमुख रूप से विकसित होता है और किशोरावस्था में पहुँचकर यह अंग क्षीण होने लगता है, और वह अंग है लसीका रस सम्बन्धी गिल्टियाँ (lymph glands) । इसी कारण बचपन की मध्यावस्था में बच्चों की हलक की गिल्टियाँ (Tonsils) और नाक की गिल्टियाँ (Adenoids) बढ़ जाती हैं।

पेशियाँ, हड्डियाँ और दाँत

स्कूल जाने वाले बच्चों की पेशियाँ बड़ी तेजी से बढ़ती रहती हैं । इसका प्रमाण इस बात में मिलता है कि इस अवस्था के बच्चों में ऐसे खेलों और ऐसे कामों के प्रति रुचि अधिक पाई जाती है जिनमें शारीरिक बल के प्रदर्शन की तथा बहुत ज्यादा दम की जरूरत होती है । जब बच्चा १२ वर्ष का होता है, उस समय उसके शरीर के कुल वजन का एक तिहाई भाग पेशियों का भार होता है ।

बच्चों की हड्डियों का विकास बहुत दिलचस्प ढंग से होता है, यद्यपि यह क्रिया इतने गुप्त ढंग से होती है कि हम इसकी ओर अधिक ध्यान भी नहीं देते । हड्डियों का आकार बढ़ने के साथ-साथ उनमें यह परिवर्तन भी होता रहता है कि कोमल और कुर्री हड्डियाँ धीरे-धीरे कठोर होती जाती हैं । हड्डियाँ आधार का काम भी करती हैं तथा शरीर की रक्षा भी करती हैं । हड्डियों का ही शरीर का ढाँचा बना होता है और ये हड्डियाँ पेशियों के द्वारा एक-दूसरे से बँधी होती हैं । हड्डियों की मोटाई भी बढ़ती है और ये सिरे पर भी बढ़ती हैं । सिरे पर निरन्तर नर्म हड्डी का योग होता रहता है और यही नर्म हड्डी चूने के रूप में परिणत होकर (Calcification) हड्डी बनती रहती है । बच्चे के शरीर में बड़े लोगों की अपेक्षा अलग-अलग



हड्डियों की संख्या अधिक होती है क्योंकि जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता [illegible]
हड्डियाँ एक-दूसरे में जुड़ती जाती हैं।

बच्चों की हड्डियाँ बड़े लोगों की हड्डियों की अपेक्षा कोमल होने के [illegible] उनका शरीर ज्यादा लचकीला होता है; इससे लाभ भी होते हैं और हानि [illegible] बच्चे अपने शरीर को जिस प्रकार तोड़-मरोड़ सकते हैं वैसे बड़े लोग [illegible] सकते, परन्तु इसके साथ ही इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि [illegible] कारण कहीं उनकी हड्डियाँ विकृत न हो जायँ। बच्चों को [illegible] इतना जोर इसीलिए दिया जाता है कि यदि उनको बहुत कसे [illegible] जायँ तो उनके पाँव की हड्डियों के हमेशा के लिए [illegible] रहता है। कसे हुए मोजों के कारण भी काफी हानि पहुँच [illegible] बहुत भाग्यवान होते हैं जो ऐसी जगहों पर रहते हैं जहाँ वे [illegible] देर घूम सकते हैं।

इसीलिए यह बात भी बहुत महत्त्व रखती है कि काम करते समय बच्चा अपने शरीर को किस स्थिति में रखता है। बच्चों को और किशोरावस्था के बालकों को कोई ऐसा परिश्रम नहीं करना चाहिए जिसमें देर तक उन्हीं पेशियों को प्रयोग करना पड़े। बच्चों से बहुत से ऐसे काम लिये जाते हैं, जैसे बियाड़ लगाना या खेत निराना आदि, जिनके कारण उनके शरीर पर बहुत ज़ोर पड़ता है और शरीर का विकास रुक जाता है।

पढ़ते समय या लिखते समय गलत ढंग से पीठ झुकाकर बैठना, या इस प्रकार खड़े होना कि एक कन्धा या कूल्हा झुका रहे, उचित बिछौना न होने के कारण सिमट-सिकुड़कर गठरी बनकर सोना आदि ऐसी बातें हैं जिनसे बचने का उपाय करना चाहिए। बच्चों का बिछौना बहुत सावधानी से बनाना चाहिए। बच्चों का गद्दा सख्त होना चाहिए और उनके पलंग में काफी लोच होना चाहिए। बच्चों को, कभी किसी और कभी किसी बिस्तर पर सुलाना ठीक नहीं है। पुराने गद्दों को जो बड़े लोगों के इस्तेमाल के योग्य नहीं रह जाते, बच्चों को दे देना उचित नहीं है।

बहुत ज्यादा थकावट का भी शरीर की स्थिति पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे को काफी आराम मिलना चाहिए, उसे लगातार एक ही स्थिति में नहीं पड़ा रहना चाहिए तथा उसके सारे शरीर को काम करने का अवसर मिलना चाहिए। ये बातें तो सभी जानते हैं। आजकल के आधुनिक स्कूलों में बच्चों के लिए जो, 'सक्रिय कार्यक्रम' बनाया जाता है उसका उद्देश्य यही होता है कि, अन्य चीजों के साथ, बच्चों की इन जरूरतों को भी पूरा किया जा सके।

इस बात को समझने के लिए कि बच्चे की हड्डियों का विकास किस प्रकार हो रहा है हमको एक्स-रे चित्रों का सहारा लेना पड़ेगा। हर वर्ष बच्चे का एक्स-रे लेकर हम यदि चित्रों की तुलना करें तो हड्डियों का विकास स्पष्ट रूप से समझ में आ जायगा। बचपन में बच्चे की कलाई में कोई हड्डी इतनी सख्त नहीं होती कि एक्स-रे चित्र में दिखाई दे, परन्तु जब बच्चा ६ वर्ष का हो जाता है तब उसकी कलाई में बहुत सी हड्डियाँ हो जाती हैं और जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है यही हड्डियाँ सख्त होकर आपस में जुड़ जाती हैं। यही क्रिया शरीर के दूसरे अंगों में भी चलती रहती है।

बच्चे के शरीर में हड्डियों की रचना का बहुत गहरा सम्बन्ध उसके शरीर के साधारण विकास, अर्थात् उसके शरीर के विभिन्न अंगों के विकास, के साथ होता

है। जब तक बच्चे के शरीर का ढाँचा अच्छी तरह विकसित नहीं हो जाता तब तक उनमे यौन-सम्बन्धी प्रौढ़ता नहीं आती। यदि किसी लड़की को ११ या १२ वर्ष की अवस्था से ही मासिक धर्म आरम्भ हो जाता है तो उस लड़की की हड्डियों की प्रौढ़ता भी उसी उम्र की दूसरी लड़कियो से ज्यादा होती है। जिन लड़कों का शरीर बहुत लम्बा-चौड़ा और हृष्ट-पुष्ट होता है प्रायः उनकी हड्डियाँ भी [illegible] विकसित होती हैं।

दाँत शरीर की हड्डियों का ही एक भाग है और ये बच्चे के स्वास्थ्य तथा उसके रूप दोनों ही के लिए बहुत महत्त्व रखते है। हमे दाँतों के [illegible] जानकारी होनी चाहिए और यह जानना चाहिए कि दाँतों को सड़ने से कैसे [illegible] जा सकता है। परन्तु जितनी जानकारी इस समय हमको है यदि हम उसको भी पूरा कर लें तो हम अपने दाँतो को अच्छा रखने के सम्बन्ध मे उससे [illegible] सफलता प्राप्त कर लेंगे जितनी आज तक हमने की है।

बहुत जमाने से हमको यह बात मालूम है कि ६ वर्ष की अवस्था में जो दाढ़ें निकलती हैं उनका कितना महत्त्व होता है, परन्तु फिर भी [illegible] बच्चों की इन चार दाढ़ों में कीडा लग जाता है या वे सड जाती हैं क्योंकि [illegible] के कारण हम यह नहीं समझते कि ये 'दूध के दाँत' नहीं होते [illegible] होते हैं। बहुधा ये दाढें बच्चे के दाँत गिरना आरम्भ होने से पहले ही [illegible] आती हैं और हम पूरी तरह इसको नहीं समझते कि [illegible] बाद में निकलने वाले दूसरे दाँतों की स्थिति निश्चित होती है। [illegible] जाने वाले होते हैं, जिनको 'कच्चे दाँत' या 'दूध के दाँत' [illegible] उनकी भी बड़ी सावधानी से देखभाल करने की जरूरत होती है तथा [illegible] निकलने वाले नये दाँतों का बहुत ध्यान रखना पड़ता है। [illegible] या नये दाँत निकलना आरम्भ होने से ही पुराने दाँतों को [illegible] नये दाँत सीधे नहीं निकलते, क्योंकि पुराने दाँतो को [illegible] उनके सड़ जाने के कारण जबडे की शक्ल पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

बच्चे के पक्के दाँत बाहर दिखाई देने से बहुत पहले ही [illegible] ही-अन्दर बनते रहते है, इसलिए इस अवस्था में बच्चे के [illegible] काफी मात्रा मे होने चाहिए जिनसे दाँत बनने में [illegible] रूप से फासफोरस और कैल्शियम तथा विटामिन। [illegible] फासफोरस और कैल्शियम होता है वह उस [illegible]

जब तक विटामिन 'डी' भी उपस्थित न हो, इसलिए विकास के इन वर्षों में मछली का तेल बच्चों को लगातार देना चाहिए। ऐसा भोजन, जिसको चबाने में जबड़ों का काफी प्रयोग करना पड़े, जबड़ों को पुष्ट बनाने के लिए बहुत लाभदायक होता है। बहुत सी आदिवासी जातियाँ ऐसी हैं जिनके बड़ी उम्र के लोगों में दाँतों के रोग प्रायः पाए ही नहीं जाते, परन्तु उनके बच्चों में यह रोग बहुत आम होते हैं क्योंकि वे हमारी तरह पके-पकाए भोजनों के तथा मिठाइयों आदि के बचपन ही से आदी हो चुके हैं।

हर बच्चे के पक्के दाँत एक ही उम्र में नहीं निकलते। लड़कियों के पक्के दाँत लड़कों की अपेक्षा जल्दी निकलते हैं। ८ या ९ वर्ष की अवस्था में अधिकांश बच्चों के १० या ११ पक्के दाँत होते हैं। १० या ११ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते उनके १४ या १६ दाँत दुबारा निकल आते हैं। परन्तु १२ वर्ष की अवस्था तक अधिकांश बच्चों के सब दाँत निकल आते हैं, केवल अक्ल-दाढ़ें नहीं निकलतीं जो आगे चलकर किशोरावस्था में निकलना आरम्भ होती हैं। यदि बच्चे के दाँत बहुत टेढ़े-मेढ़े निकले होंगे तो आगे चलकर अक्ल-दाढ़ों के निकलने में बड़ी कठिनाई होगी।

यदि ऊपरी और निचले जबड़े का विकास समतल नहीं हुआ है तो ऊपर और नीचे के दाँत भी ठीक से तले-ऊपर जमकर नहीं बैठेंगे। कुछ बच्चों के दाँत इतने टेढ़े-मेढ़े होते हैं कि उनको खाना चबाने में कठिनाई होती है जिसके कारण भोजन की पौष्टिकता नष्ट हो जाती है। यदि बच्चे का निचला या ऊपरी जबड़ा बहुत आगे निकला हुआ है जिसके कारण या तो नीचे के दाँत ऊपर के दाँतों के बाहर निकले रहते हैं या ऊपर के दाँत बहुत बाहर को निकले रहते हैं, तो थोड़े-थोड़े समय के बाद उसे दाँतों के किसी विशेषज्ञ को दिखाते रहना चाहिए। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है वैसे-वैसे यह विकार दूर होता जाता है परन्तु कभी-कभी विशेष रूप से इसका इलाज कराना पड़ता है ताकि उसकी सूरत-शक्ल न बिगड़ने पाए। यदि जबड़े की हड्डी पूरी तरह सख्त नहीं हो चुकी है तो उसे ठीक करने में कोई कठिनाई नहीं होती, परन्तु बाद में इस सम्बन्ध में प्रायः कुछ भी नहीं किया जा सकता।

किशोरावस्था में बच्चे के चेहरे की रूपरेखा काफी बदल जाती है क्योंकि इस अवस्था में उसकी आकृति प्रौढ़ावस्था का रूप धारण कर लेती है। इस परिवर्तन के बाद सम्भव है नाक उतनी प्रमुख न रह जाय जितनी पहले थी और न

माथा ही उतना चौड़ा रह जाय। बहुत से बच्चे, जिनको पहले अपनी सूरत बगल की तरफ से देखने पर अच्छी नहीं मालूम होती थी, अब उसे अधिक सुन्दर पाते हैं। परन्तु यदि ६ वर्ष से १२ वर्ष तक के किसी बच्चे की ठोड़ी बहुत अन्दर को धँसी हुई हो या बड़े दाँतों के कारण उसके होंठ बन्द न होते हों तो उसकी सूरत को अधिक सुन्दर बनाने में हमको कोई प्रयत्न उठा नहीं रखना चाहिए, चाहे इसके लिए उसे बार-बार दाँतों के विशेषज्ञ के पास ही क्यों न ले जाना पड़े। यदि परिवार के लोग इतना पैसा नहीं खर्च कर सकते तो उन्हें किसी ऐसे अस्पताल का पता लगाना चाहिए जहाँ इसका इलाज मुफ्त होता हो। इस इलाज के सम्बन्ध मे उसके मुँह पर कुछ समय तक पट्टियाँ आदि बाँधने की जरूरत पड़ती है जिसके कारण उसकी शक्ल कुछ दिनो के लिए खराब मालूम होती है परन्तु बच्चे को यह संतोष रहेगा कि इसका परिणाम उसके लिए अच्छा ही होगा।

कुछ बच्चों को अच्छा-से-अच्छा भोजन देने के बाद भी उनके दाँत बहुत खराब रहते हैं परन्तु फिर भी उनको ऐसी चीजें खाने के लिए देनी चाहिएँ जिनसे दाँतों के निर्माण मे सहायता मिलती है। कुछ अंश मे यह बात भी सच होती है कि कुछ परिवारों में सभी लोगो के दाँत खराब होते हैं और कुछ में सबके अच्छे। यद्यपि 'उचित' भोजन देने से, रोज दाँत माँजकर साफ रखने से और समय-समय पर दाँतों के डॉक्टर से परामर्श करने से यह निश्चित तो नहीं हो जाता कि दाँत अच्छे होंगे ही, पर इन बातों से दाँतों को स्वस्थ रखने में सहायता अवश्य मिलती है।

विकास की कुछ विशेषताए

किशोरावस्था के पहले का तीव्र विकास चूँकि लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा जल्दी होता है इसलिए अधिकांश लड़कियाँ १२ या १३ वर्ष की [illegible] में अपनी अधिकतम ऊँचाई और वजन को प्राप्त कर लेती हैं। [illegible] भागों में हाथ और पाँव सबसे पहले अपने पूरे आकार को प्राप्त करते हैं। १३ वर्ष की बहुत सी लड़कियों को इस पर आश्चर्य होता है कि उनको अपनी [illegible] के इतने बड़े, या उससे भी बड़े, जूते खरीदने पड़ते हैं। परन्तु यदि उन्हें [illegible] मालूम हो जाय कि उनके शरीर के दूसरे अंग भी 'ठीक' [illegible] समानुपातिक हो जायँगे तो उन्हें बड़ा संतोष होगा। इनके [illegible] से लड़को और लड़कियों को अपने विकास की असमानता तथा [illegible] कारण बड़ी उलझन और परेशानी होती है, परन्तु यदि उनको [illegible]

समझा दिया जाय तो उनको बहुत सी अकारण चिन्ता से बचाया जा सकता है। यदि १२ वर्ष की कोई लड़की अपनी उम्र के लड़कों से ज्यादा लम्बी है तो उसे यह समझाया जा सकता है कि २ या ३ वर्ष में वह इतनी लम्बी नहीं मालूम होगी, क्योंकि वे लड़के इस समय में बढ़कर उसके इतने ही बड़े हो जायँगे। जो लड़के और लड़कियाँ कुछ दिनों तक बहुत मोटे रहते हैं उनको यह बताना चाहिए कि कुछ वर्षों में उनका यह मोटापा दूर हो जायगा और वे अपनी अवस्था के दूसरे बच्चों की ही तरह दुबले-पतले हो जायँगे।

यदि कोई बच्चा बहुत ही ज्यादा लम्बा है और इसकी सम्भावना है कि उसकी लम्बाई बढ़ती ही जायगी तो इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि उसे अपनी लम्बाई पर गर्व हो; इसके लिए हम उसे यह समझा सकते हैं कि लम्बे होने के क्या फायदे हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई लड़की बहुत लम्बी है और उसका पिता हर लम्बी औरत को देखकर, जो बहुत अच्छे कपड़े पहनती हो, उसकी प्रशंसा करता है तो लड़की पर इसका बहुत प्रभाव पड़ता है कि उसका पिता लम्बी औरतों को प्रशंसा की दृष्टि से देखता है और वह इस बात पर प्रसन्न होती है कि वह भी लम्बी होगी।

बहुत सी लड़कियाँ जो बहुत जल्दी ही अपनी अधिकतम ऊँचाई को पहुँच जाती हैं, वे आगे चलकर इतनी लम्बी नहीं मालूम होतीं जबकि धीरे-धीरे बढ़ने वाली लड़कियाँ भी उसके बराबर पहुँच जाती हैं। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यदि कोई लड़की कुछ समय के लिए अपने साथ की लड़कियों की अपेक्षा बहुत लम्बी लगती है तो उसे यह विश्वास दिलाना चाहिए कि कुछ समय बाद दूसरी लड़कियाँ भी उसी के बराबर हो जायँगी।

यद्यपि छोटा कद स्त्रियों की विशेषता समझी जाती है और इसे उनकी सुन्दरता का अंग माना जाता है परन्तु यदि किसी छोटे कद की लड़की को नाटा कहा जाय तो वह बुरा मान जाती है। यदि माता-पिता तथा शिक्षक दोनों ही बच्चों की लम्बाई अथवा वजन के अन्तर के बारे में व्यंग्य न किया करें तो यह बहुत अच्छा होगा। जो बच्चा अपनी उम्र के हिसाब से बहुत छोटा है उसे इस भय के कारण चिन्ता हो सकती है कि वह हमेशा छोटा रहेगा। ६ से १२ वर्ष तक के बच्चों में यह समस्या इतने उग्र रूप में नहीं होती क्योंकि इस अवस्था का शायद ही कोई बच्चा ऐसा होता हो जो बहुत तेजी से बढ़ने लगता हो। परन्तु वंश की परम्परा को ध्यान में रखते हुए कुछ बच्चों के बारे में यह बात कही जा सकती है

कि वे चाहे जितने बड़े हो जायें पर उनका कद छोटा ही रहेगा। जो लोग कद में छोटे होते हैं वे अपने नाटेपन की भावना को दूर रखने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करते हैं, इसलिए ऐसे बच्चों के बारे में, जिनके नाटे रह जाने की सम्भावना हो, हमें पहले से ही उपाय सोच रखना चाहिए ताकि उनको अपने इस शारीरिक विकार के कारण चिन्तित न होना पड़े और वे किन्हीं और साधनों के द्वारा [illegible] प्राप्त कर सकें। जिस प्रकार यदि किसी बच्चे को बार-बार यह याद दिलाया जाय कि वह बहुत बड़ा हो गया है तो उसमें एक विशेष प्रकार की झिझक और [illegible] जाग्रत होता है, उसी प्रकार यदि किसी बच्चे को उसके नाटे कद के कारण बार-बार टोका जाय तो उसे चिन्ता होने लगती है और वह अपने-आपको अपूर्ण समझने लगता है। यदि उसमें कुछ विशेष गुण तथा कौशल है तो उसे अपने नाटे कद पर चिन्तित रहने का समय ही नहीं मिलेगा। अधिकांश बच्चों का तो यह होता है कि वे स्कूल जाने के प्रारम्भिक वर्षों में तो बहुत छोटे होते हैं परन्तु किशोरावस्था में वे इतनी तेजी से बढ़ते हैं कि १६ या १७ वर्ष की अवस्था तक वे भूल जाते हैं कि वे कभी छोटे भी थे। परन्तु फिर भी बहुत से छोटे बच्चों में यह [illegible] से मौजूद रहता है।

यौवन से पहले होने वाले परिवर्तन

शायद ही कोई लड़का ऐसा होता हो जिसमें १२ वर्ष की अवस्था में ही यौवन के चिह्न दिखाई देने लगते हों, परन्तु बहुत सी लड़कियों में १२ वर्ष की अवस्था में ही यौन-सम्बन्धी प्रौढ़ता के चिह्न दिखाई देने लगते हैं। [illegible] पिंडलियों का उभरना इसका एक स्पष्ट चिह्न होता है। [illegible] भी चौड़े होते रहते हैं और इस प्रकार लड़की आगे चलकर [illegible] बनती है।

आजकल लड़कियों में मासिक धर्म अपेक्षतः जल्दी आरम्भ हो जाता है, इसका कारण शायद यह है कि अब बच्चों को पहले की अपेक्षा अधिक पौष्टिक भोजन मिलता है। लड़कों और लड़कियों की शारीरिक [illegible], [illegible] तथा अंगों को फुरती से घुमा-फिरा सकने की योग्यता में जो [illegible] से १२ वर्ष तक की अवस्था में इतने स्पष्ट रूप में [illegible] चलकर दिखाई देता है। परन्तु लड़कियों में यह [illegible] है कि वे खेल-कूद में लड़कों की अपेक्षा कम [illegible] होती हैं। [illegible] लड़कों की अपेक्षा दम भी कम होता है। [illegible]

शारीरिक परिश्रम के बाद, जैसे दौड़ने आदि के बाद, उन पर थकावट का प्रभाव भी ज्यादा देर तक रहता है। १४ या १५ वर्ष की अवस्था में लड़कियाँ अपने अंगों को जितना हिला-डुला सकती हैं उतना फिर कभी नहीं हिला-डुला पातीं, यद्यपि इस सम्बन्ध में भी विभिन्न लड़कियों में बड़ा अन्तर होता है। यदि किसी लड़की के शरीर की बनावट 'लड़कों जैसी' है तो उसके शरीर में बल भी ज्यादा होता है।

बच्चों को जितना प्रोत्साहन दिया जाता है और उनको जितना अभ्यास करने का मौका मिलता है उतना ही वे अपने शरीर का सक्रिय कामों में प्रयोग करते हैं। यदि किसी लड़की को उसके बचपन की मध्यावस्था में ऐसे कामों को करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया गया है, जिनमें शारीरिक बल की आवश्यकता होती है, तो वह जितनी ही बड़ी होती जायगी उतनी ही ऐसे कामों को करने से जी चुरायगी। किशोरावस्था में लड़कियों की हाथ-पाँव आजादी से घुमाने-फिराने की क्षमता ही कम नहीं हो जाती है बल्कि समाज के रवैये के कारण भी उनको खेल-कूद में ज्यादा भाग लेने के लिए प्रोत्साहन नहीं मिलता। परन्तु जिन लड़कियों को बचपन से ही खेल-कूद के प्रति बहुत रुचि होती है वे आगे चलकर खेल-कूद में प्रशंसनीय सफलताएँ प्राप्त कर लेती हैं। यदि हम चाहते हैं कि लड़कियाँ अपनी शारीरिक शक्ति का पूरा प्रयोग करें—बर्फ पर फिसलने में, टेनिस खेलने में, या वालीबाल खेलने आदि में—तो हमें उनको उसी समय से अभ्यास कराना चाहिए जब उनमें इस प्रकार के कामों के लिए काफी उत्साह रहता है।

बच्चे को स्वस्थ रखना



स्कूल जाने के दिन बच्चे के जीवन के स्वास्थ्यमय दिन होते हैं फिर भी इन वर्षों में बच्चों की ओर जितना ध्यान दिया जाता है उसमें अनेक सुधार किए जा सकते हैं। हम निरन्तर बड़ी तेजी से इसका पता लगाते जा रहे हैं कि बच्चे को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए क्या उपाय किए जायँ, परन्तु न जाने क्यों हम अपने इस ज्ञान को कार्यरूप मे परिणत नहीं करते। उदाहरणस्वरूप, बच्चों के सूखा रोग को रोकने के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त की गई है उसके कारण अब सूखा रोग से पीड़ित होने वाले बच्चों की संख्या बहुत कम हो गई है परन्तु हमारे बच्चों को पुष्टिकारक भोजन देने की समस्या अभी भी पूरी तरह हल नहीं हो सकी है।

बच्चे के शरीर के पोषण पर उसके जीवन की हर क्रिया का प्रभाव पड़ता है—उसके भोजन का, उसकी सक्रियता का, उसके आराम का, उसकी मानसिक दशा का। बच्चो को उस समय तक वास्तव में हृष्ट-पुष्ट नहीं कहा जा सकता जब तक इन तमाम बातों की ओर पूरी तरह ध्यान न दिया जाय।

पोषण की कमी के कारण बच्चो की स्वास्थ्य-रक्षा में सबसे ज्यादा बाधा पड़ती है परन्तु इस बात को समझने में बहुधा बहुत कठिनाई होती है। जब बच्चा बहुत चिड़चिड़ा हो जाता है तो लोग सोचते है कि इसका कारण शायद यह है कि उसे या तो सन्तुलित भोजन नहीं मिल रहा है या उसे कम भोजन मिल रहा है। थकावट एक ऐसा आभास है जिससे हम सभी परिचित होते हैं और इसीलिए हम इसे कोई महत्त्व नहीं देते, परन्तु थकावट का वास्तविक कारण पोषण की कमी हो सकता है और इस कारण को सहज ही दूर किया जा सकता है। बच्चे [illegible] पोषण की कमी से बहुधा यह समझा जाता है कि इसका [illegible] भोजन के अभाव से होता है, क्योंकि हम 'पोषण' को भोजन से सम्बन्धित करते हैं। [illegible] में, ऐसे बच्चे जिनको काफी मात्रा में अच्छा भोजन तो मिलता हो [illegible] खुले मैदान में सक्रिय खेल-कूद तथा जीवन का आनन्द उठाने का [illegible] हो, उनका भी पोषण अपर्याप्त हो सकता है क्योंकि इन चीजों के बिना [illegible] उसके लिए कुछ भी नहीं कर सकता। यह सम्भव है कि उसके शरीर में [illegible] के कीटाणु हो जो उसे भीतर-ही-भीतर खोखला कर रहे हों। [illegible] कारण यह भी हो सकता है कि कुछ परिवारों में भोजन [illegible]

होता है और खाने के समय बच्चे के भोजन की ओर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है इसलिए वह बीच-बीच में भी कुछ-न-कुछ 'टूँगता' रहता है। प्रातःकाल देर तक सोते रहने तथा रात को देर से सोने के कारण भी बच्चे का पोषण खराब हो सकता है। जिस बच्चे का जीवन बहुत ही अव्यवस्थित ढंग का हो उसे सम्भव है कभी भूख न लगती हो, क्योंकि अव्यवस्था के कारण उसका जब जी चाहता है वह कुछ खा लेता है। यदि बच्चे के सोने का उचित प्रबन्ध नहीं है तो इसका परिणाम यह हो सकता है कि यद्यपि वह देर तक बिस्तर पर लेटा रहे फिर भी उसकी नींद पूरी न हो—कमरे में काफी हवा का प्रबन्ध न होने के कारण, एक ही कमरे में बहुत से लोगों के रहने के कारण या शोर-गुल के कारण। स्कूल जाने वाले किसी बच्चे की भोजन सम्बन्धी आदतें, सम्भव है, बहुत खराब हों क्योंकि खाने में उसकी रुचियों और अरुचियों की ओर जरूरत से ज्यादा ध्यान दिया जाता हो; सम्भव है वह कुछ चीजें जरूरत से ज्यादा खाता हो, जैसे चाट या पकौड़ियाँ आदि, और दूसरी आवश्यक चीजें बिलकुल ही न खाता हो।

बच्चे जो भोजन खाकर स्कूल जाते हैं उसका अध्ययन करने से पता चला है कि अधिकांश बच्चे जिस दशा में घर से निकलते हैं वह दिन-भर का काम करने के लिए बिलकुल भी काफी नहीं होती। बहुत से बच्चे तो प्रायः कुछ खाए बिना ही स्कूल चले जाते हैं और यही बच्चे होते हैं जिनको दोपहर के समय भी उचित भोजन नहीं मिल पाता। चाहे बच्चा दोपहर के लिए भोजन अपने साथ ले जाता हो या स्कूल में ही भोजन का प्रबन्ध हो, परन्तु बच्चे को वह भोजन पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता जो उसे दिन में दो या तीन बार मिलना चाहिए, जैसे तरकारी, फल आदि।

चूँकि अधिकांश बच्चे दोपहर को घर से बाहर ही कोई चीज लेकर खा लेते हैं इसलिए चौबीस घण्टे में केवल रात का ही भोजन ऐसा होता है जो वास्तव में अच्छा भोजन होता है। परन्तु एक वक्त के भोजन के द्वारा बाकी तमाम भोजनों की कमी को पूरा नहीं किया जा सकता, वह एक भोजन चाहे कितना पौष्टिक क्यों न हो।

प्रातःकाल के कार्यक्रम को व्यवस्थित रखना

स्कूल जाने से पहले ठीक से भोजन न करने का सारा दोष समय के अभाव पर डाल दिया जाता है। परन्तु स्कूल जाने की जल्दी का कारण यह होता है कि बच्चा बड़ी देर तक सोता रहा और फिर उठकर जल्दी करने लगा और देर में

उठने का दोष इस पर था कि वह रात को देर में सोता था।

कभी-कभी बच्चे का ठीक समय पर स्कूल पहुँचने के लिए चिन्तित रहने का कारण यह भी हो सकता है कि स्कूल में उस पर इस सम्बन्ध में काफी दबाव डाला जाता हो। जब बच्चे को स्कूल जाने के लिए बस पकड़नी होती है या स्कूल की लारी के लिए किसी नियत स्थान पर पहुँचना होता है तो उनकी माँ को चाहिए कि वह उसे ऐसे समय से उठा दे कि उसे नाश्ता करने के लिए जल्दी न करनी पड़े।

बहुत छोटी कक्षाओं में बच्चों को समय का कोई ज्ञान नहीं होता। उनसे 'जल्दी करो, जल्दी करो!' कहने से कोई लाभ नहीं होता, बल्कि ज्यादा अच्छा यह है कि उनके लिए एक कार्यक्रम बना दिया जाय ताकि वे समय पर स्कूल पहुँच जायँ। इसके लिए यह जरूरी है कि रात ही से उनके कपड़े निकालकर रख दिए जायँ जिनको पहनकर वह प्रातःकाल स्कूल जायगा, बटन आदि ठीक से देख लिए जायँ यदि आवश्यकता हो तो लगा दिए जायँ और यह निश्चित कर लिया जाय कि उसकी टोपी, जूते मोजे और स्कूल का सामान सब ठीक जगह पर है। इसके अतिरिक्त बच्चों की आदत बाँध दी जाय कि गुसलखाने में पहले कौन जायगा, तथा इस बात का ध्यान रखा जाय कि जब वे तैयार हो जायँ उस समय [illegible] हो। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे को [illegible] का तथा दाँत माँजने का समय मिले। ये बातें देखने में तो बहुत छोटी [illegible] है परन्तु प्रातःकालीन दिनचर्या में उनका बहुत बड़ा महत्त्व है।

यदि इसकी ओर पूरी तरह ध्यान देने के बाद भी [illegible] करने का काफी समय मिल जाय, बच्चा घबराया हुआ [illegible] तो उसके माता-पिता को चाहिए कि उसके शिक्षक से [illegible] कि कहीं उसके धीरे काम करने के कारण उसे बहुत डाँट तो [illegible]। [illegible] जीवन में चिन्ता का कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

भोजन के प्रति बच्चों का जो भी [illegible] की आदतों का बहुत बड़ा हाथ होता है। [illegible] और फिर हर काम में जल्दी करने लगते हैं और जल्दी-जल्दी [illegible] खा-पीकर स्कूल या दफ्तर चल देते हैं, तो बच्चे भी [illegible]

६ से १२ वर्ष तक के बच्चे स्कूल के लिए [illegible] रहते हैं। जिन स्कूलों में दोपहर के खाने के लिए [illegible]

यह प्रबन्ध बहुत आवश्यक है, वहाँ भी लड़के अपने खाने के पैसे इधर-उधर की चीजें खरीदकर खाने में खर्च कर देते हैं। यदि अधिक भोजन के बजाय बच्चा अपने सारे पैसे मिठाई और शरबत आदि पर खर्च कर देगा तो घर पर उसे जो नियोजित भोजन मिलता है उसका भी कोई लाभ नहीं होगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि बच्चों को इस प्रकार की चीजें खरीदने से बिलकुल ही मना कर दिया जाय; स्कूल जाने वाले बच्चे इतने क्रियाशील होते हैं कि यदि वे कोई शक्तिदायक चीजें अधिक मात्रा में भी खा लें तो उनको हजम कर सकते हैं।

किशोरावस्था को पहुँचने से पहले बच्चे अपने स्वास्थ्य की ओर प्रायः बिलकुल ही ध्यान नहीं देते और उस समय भी इसलिए देते हैं कि इससे उनकी सूरत-शक्ल पर असर पड़ता है, न कि इसलिए कि उनमें स्वयं स्वास्थ्य के प्रति कोई उत्साह होता है। परन्तु उनके स्वास्थ्य पर इससे बहुत पहले ही उनकी आदतों का प्रभाव पड़ने लगता है और इन्हीं आदतों के सम्बन्ध में माता-पिता काफी सहायता कर सकते हैं। माता पिता को ही इस बात का सबसे अच्छा अवसर मिलता है कि बच्चों को उचित ढंग का भोजन देकर उनमें स्वास्थ्य-सम्बन्धी अच्छी आदतें डालें। शायद ही कोई आदत इतनी पक्की होती हो जितनी भोजन से सम्बन्ध रखने वाली आदतें होती हैं। अपने परिवार में भोजन की एक प्रणाली बनाने में माता-पिता प्रायः बिलकुल स्वतन्त्र होते हैं; यदि भोजन के सम्बन्ध में उनके घर में लोगों की आदतें अच्छी नहीं हैं तो दोष उन्हीं का है।

यदि बच्चे दोपहर का खाना स्कूल में ही खाते हैं तो हमको उन्हें बताना चाहिए कि वे कौन-कौनसी चीजें खाएँ। जो माता-पिता इस बात में दिलचस्पी लेते हैं कि उनका बच्चा स्कूल में क्या खाता है, वे कोशिश करके स्कूल में मिलने वाली चीजों में भी परिवर्तन करा सकते हैं। अपने बच्चे की पसन्द की चीजों की ओर ध्यान देकर माता-पिता को सहज ही यह ज्ञान हो सकता है कि खाने के रंग, उसकी सूरत और उसके परोसे जाने के ढंग का बच्चे की पसन्द पर कितना ज्यादा प्रभाव पड़ता है। यदि हम बच्चे से पूछ लें कि दोपहर को उसने क्या खाया था तो हम शाम को उसे कोई दूसरी चीज खाने को दे सकते हैं, इससे यह भी लाभ होगा कि हमको यह भी मालूम होता रहेगा कि बच्चा स्कूल में किस प्रकार की चीजें खा रहा है।

बच्चों में हर समय मिठाई खाने की जो इच्छा होती है उसको रोकने का एक उपाय यह है कि उनको घर पर खाने के साथ फल तथा मिठाई आदि भी

खाने को दिए जायँ—किशमिश, अंजीर, सेब तथा फलों के रस आदि, तथा ऐसी चीजें भी दी जायँ जो शक्तिप्रद होती हैं।

भोजन की आवश्यक चीजें

स्कूल जाने वाले बच्चे चाय और कॉफी के अतिरिक्त प्रायः हर वह चीज खा सकते हैं जो उनके परिवार वाले खाते हैं, परन्तु फिर भी उनकी माँ को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे कहीं कुछ चीजें बहुत ज्यादा और कोई दूसरी चीजें बहुत कम तो नहीं खाते हैं।

अधिकांश बच्चों को खाने की वे चीजें अच्छी लगती हैं जो उनके लिए उपयोगी होती हैं : दूध, मक्खन, फल, तरकारी, गोश्त आदि। परन्तु यदि कोई बच्चा खाने-पीने की चीजों के बारे में बहुत नखरे करता है तो उस समय, जब वह स्कूल जाने लगे, उसकी इस आदत को सुधारा जा सकता है। स्कूल में उसे स्वास्थ्य-रक्षा की जो शिक्षा दी जाती है उससे हमारे इस काम में बड़ी सहायता मिल सकती है क्योंकि स्कूल की प्रारम्भिक कक्षाओं में बच्चे पर अपने शिक्षक की बातों का बहुत प्रभाव पड़ता है। बहुधा ऐसा होता है कि कोई छोटा लड़का घर आकर अपनी माँ को दोष देने लगता है कि वह उसे उतनी तरकारियाँ खाने को नहीं देती जितनी उसके शिक्षक ने खाने के लिए बताई हैं। कई दिन तक लगातार वह इस बात को बड़े ध्यान से देखता रहता है कि उसकी माँ उसके लिए [illegible] करती है या नहीं जिनके बारे में उसने सुन रखा है कि हर माँ को अपने बच्चे के लिए करना चाहिए।

यदि इस अवस्था में बच्चे की भोजन-सम्बन्धी आदतें [illegible] नहीं होंगी तो आगे चलकर उनको ठीक करने में बड़ी कठिनाई होगी। [illegible] बच्चा बड़ा होता जायगा उसका घर के बाहर खाना भी बढ़ता जायगा, [illegible] जरूरी है कि हम उसे इस योग्य बना दें कि [illegible] विभिन्न प्रकार का ऐसा भोजन खायगा जिससे शक्ति [illegible] सम्बन्ध रखने वाली तमाम आवश्यकताएँ पूरी हों [illegible] में भोजन करेगा।

यदि १२ वर्ष की अवस्था से पहले ही बच्चा [illegible] है, जैसा कि कई लड़कियों के सम्बन्ध में होता है, तो [illegible] कि उनके तीव्र विकास की तमाम आवश्यकताओं को [illegible] इस अवस्था में भूख लगने पर लड़कियों की [illegible]

जाती है। चूँकि मिठाइयों से केवल अधिक स्फूर्ति की ही आवश्यकता पूरी होती है, इसलिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह इतनी मिठाई न खा ले कि दूसरे आवश्यक भोजनों के लिए, जिनकी जरूरत इस अवस्था में बहुत बढ़ जाती है, उसके पेट में जगह ही न रह जाय।

निम्नलिखित खाद्य पदार्थ बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इनसे उनमें शक्ति भी पैदा होती है तथा उनके पोषण और शरीर-रचना के लिए आवश्यक चीजें भी प्राप्त होती हैं। इनको 'भोजन के सात मूल समूह' कहते हैं।

प्रतिदिन का आवश्यक भोजन

इन सातों समूहों के भोजनों को बच्चों के प्रतिदिन के भोजन में सम्मिलित होना चाहिए।

समूह १—गहरे हरे रंग की, पत्तेदार और गहरे पीले रंग की तरकारियाँ—जैसे फूल-गोभी, पालक का साग, हरी मिर्च, शलजम तथा अन्य हरी तरकारियाँ, गाजर, शकरकंद, लौकी।

कच्ची, पकी हुई या अचार के रूप में।

दिन में एक बार या इससे अधिक।

समूह २—नींबू की जाति के रसदार फल, टमाटर, कच्ची बन्दगोभी तथा ऐसे दूसरे खाद्य पदार्थ जिनमें विटामिन 'सी' अधिक मात्रा में हो—जैसे संतरे, नारंगियाँ, नींबू, टमाटर, अनन्नास, स्ट्राबेरी; कच्ची बन्द-गोभी, हरी मिर्च और शलजम (यदि फल मिलने में कठिनाई हो तो समूह १ तथा समूह ३ की चीजों की मात्रा बढ़ा दी जाय, विशेष रूप से इन चीजों की जो कच्ची खाई जाती हैं।)

दिन में एक बार या इससे अधिक।

समूह ३—आलू तथा अन्य तरकारियाँ और फल—जैसे आलू, चुकन्दर, साग, बैंगन, गुच्छियाँ, कद्दू आदि; सेब, आड़ू, खूबानी, नाशपाती, अलूचा, किशमिश, खजूर, अंजीर, आलूबुखारा, अंगूर, अनार तथा दूसरे फल और मेवे।

कच्चे, पके हुए, अचार के रूप में या सूखे।

दिन में दो बार या इससे अधिक।

समूह ४—दूध, दही, आइसक्रीम, खीर।

दूध—ताजा, मक्खन निकला हुआ, पाउडर के रूप में या छाछ।

दिन-भर में ३ या ६ प्यालियाँ।

समूह ५—गोश्त मुर्गी, बत्तख आदि, अण्डे, सूखी दालें, मटर, मूँगफली

आदि। यदि सम्भव हो तो रोज एक बार गोश्त या मछली।

हफ्ते में चार या अधिक अण्डे।

हफ्ते में दो बार तली हुई मूँगफली, तली हुई दालें या मटर आदि।

समूह ६—रोटी तथा अन्य अनाज; जैसे चना, दालें आदि, या दलिया आदि प्रकार की चीजें प्रतिदिन देनी चाहिए।

समूह ७—मक्खन तथा मक्खन की बनी हुई चीजें प्रतिदिन।

शक्तिदायक भोजन (जैसे मुरब्बे, मिठाइयाँ आदि चीजें) इन सात समूहों में बनाई गई चीजों के अतिरिक्त दिया जा सकता है पर इनके स्थान पर नहीं।

बच्चे को इस अवस्था में मछली का तेल देने का महत्त्व पहले बताया जा चुका है।

स्कूल जाने वाले बच्चे निरन्तर किसी-न-किसी काम में व्यस्त रहते हैं इसलिए उनको बीच-बीच में खाने की जरूरत पड़ती रहती है। यदि बच्चा अपना मुख्य भोजन पेट भरकर खाता है और उसे विभिन्न प्रकार का आवश्यक भोजन मिल जाता है तो फिर यह बात उसके निर्णय पर छोड़ देनी चाहिए कि वह इसके अतिरिक्त और क्या खाता है।

दिन और रात के भोजन के अतिरिक्त बीच-बीच में बच्चा जो-कुछ खाता है उसके सम्बन्ध में केवल एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वह जो-कुछ भी खाए नियमित रूप से खाए, यह नहीं कि जब जी चाहा थोड़ा सा खा लिया। यदि स्कूल से आने के बाद या सुबह बच्चा कुछ पूरी आदि खाता है या दूध पीता है या फल खाता है तो इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि भोजन के समय उसे भूख ही न लगे। यदि उसकी माँ उसे याद न दिलाती रहे तो सम्भव है कि बच्चा भोजन के पूर्व ही कोई चीज खा ले जिसके कारण उसकी भूख मर जाए।

साधारण से अधिक या कम वजन

यदि किसी बच्चे के माता-पिता को डॉक्टर ने यह बताया है कि उसका वजन बहुत कम है और उसके वजन को बढ़ाने का उपाय करना चाहिए, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि उसे खाना अधिक मात्रा में दिया जाने लगे क्योंकि सम्भवतः वह ज्यादा खाना खा ही न सकता हो। उसे ऐसे भोजन की जरूरत है जिसकी थोड़ी सी मात्रा भी काफी शक्तिदायक होती है जैसे अण्डे, मलाई, मक्खन आदि। ऐसे बच्चे को हम शुद्ध दूध की बनी हुई खीर आदि ज्यादा दे सकते हैं या प्रातःकाल नाश्ते के समय हम उसे मक्खन आदि ज्यादा खिला सकते हैं या

उसकी दाल में घी की मात्रा बढ़ा सकते हैं।

उसके भोजन में चिकनाई, माड़ी (स्टार्च) अथवा दूध की मात्रा तभी बढ़ानी चाहिए जब वह इनको आसानी से पचा सकता हो; इन चीजों की मात्रा को बहुत तेजी से भी नहीं बढ़ाना चाहिए और न ही यह करना चाहिए कि इनके कारण अन्य उपयोगी खाद्यों की, जैसे तरकारी और फल आदि की, मात्रा कम हो जाय।

जिस बच्चे का वज़न कम होता है उसे अधिक भोजन के अतिरिक्त अधिक आराम की भी जरूरत होती है। सम्भव है कि वह ऐसा बच्चा हो जो आवश्यकता से अधिक क्रियाशील हो और बहुत जल्दी जोश में आ जाता हो। ऐसे बच्चों के खेल-कूद को सावधानी से नियंत्रित करके उनकी सहायता की जा सकती है। उनके सक्रिय खेल-कूद को कम करने के कारण उन्हें थोड़ा सा दुख तो होगा पर उसके बदले में यदि उनको ऐसे रोचक काम बताए जायँ जिनमें ज्यादा भाग-दौड़ की जरूरत न हो तो वे अपने दुख को भूल जायँगे। यदि बच्चे के लिए यह आवश्यक है कि वह भोजन से पहले थोड़ा सा आराम कर लिया करे तथा अपने साथ के दूसरे बच्चों से जल्दी सो जाया करे तो उसके लिए पुस्तकों का, मेज़ पर खेले जाने वाले खेलों का तथा रेडियो आदि का प्रबन्ध कर देना चाहिए।

लम्बे और दुबले-पतले बच्चों के बारे में बहुधा यह समझा जाता है कि उनका वज़न साधारण से कम है, वस्तुतः उनके स्वास्थ्य में कोई खराबी नहीं होती।

जब तक कोई योग्य डॉक्टर सलाह न दे तब तक किसी बच्चे का वज़न कम करने का प्रयत्न न करना चाहिए। यदि डॉक्टर कोई विशेष भोजन बताए तो इसका ध्यान रखना चाहिए कि उसमें आवश्यक खाद्य-पदार्थों की मात्रा काफी हो (यह जरूरत फलों और तरकारियों के द्वारा पूरी की जा सकती है) और उस भोजन में विटामिन तथा ऐसे लवणों की आवश्यक मात्रा मौजूद हो जो शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक होते हैं। जिस प्रकार कम वजन वाले बच्चे को ऐसे भोजनों की आवश्यकता होती है जिनमें चिकनाई और माड़ी (स्टार्च) की मात्रा अधिक हो उसी प्रकार साधारण से अधिक वजन वाले बच्चों के लिए इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उनको मक्खन, मलाई आदि स्निग्ध चीजें अधिक मात्रा में न दी जायँ।

जो बच्चा बहुत मोटा होता है उसकी समस्या को केवल उसके भोजन में परिवर्तन करके हल नहीं किया जा सकता। कुछ बच्चे केवल इसलिए बहुत ज्यादा खाने लगते हैं कि उनको जीवन में दूसरे साधनों से काफी मात्रा में संतोष नहीं

मिलता, इसलिए वे खाने में आनन्द की खोज करते हैं और खाने में [illegible] बहुत आनन्द प्राप्त हो जाता है। जिस बच्चे की ओर दूसरे बच्चे ध्यान नहीं [illegible], जिस घर का जीवन बहुत दुखी होता है या जो किन्हीं अन्य [illegible] से दुखी रहता है वह खाने के मामले में बहुत लालची हो जाता है—बिलकुल उसी तरह [illegible] परिस्थितियों में बच्चे हवाई किले बनाने लगते हैं।

परन्तु यदि गिल्टियों की क्रिया संतुलित न होने के कारण [illegible] अधिक है तो यह भिन्न समस्या है। इस दशा में बच्चे का डॉक्टर ही [illegible] है कि उसके अधिक वजन का कारण शारीरिक है या उसका [illegible] प्रवृत्ति से है।

भोजन के लिए अच्छा वातावरण

भोजन से अधिकतम लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि [illegible] वातावरण में भोजन करता है वह अच्छा हो। यदि उनकी पाचन-[illegible] रखना है तो उनको इतमीनान से और निश्चिन्त होकर खाना चाहिए। चूँकि [illegible] जाने वाले बच्चे हमेशा जल्दी में रहते हैं इसलिए [illegible] निश्चित कर दिया जाय कि वे कम-से-कम एक निश्चित समय भोजन [illegible] करेंगे—कम-से-कम १५ या २० मिनट। यदि यह नियम [illegible] जल्दी जल्दी खाना खाकर स्कूल भाग जाने की या खेलने के लिए [illegible] इच्छा कम होगी, परन्तु उसे इस बात के लिए हर समय टोकने [illegible]।

जो बच्चे ठीक समय पर स्कूल पहुँचने का बहुत ध्यान [illegible] भय लगा रहता है कि कहीं उनको स्कूल पहुँचने में देर न हो जाय। [illegible] यह आवश्यक है कि उनको नाश्ता और भोजन ठीक समय [illegible] उनको जल्दी करने की जरूरत ही न पड़े।

चूँकि हर प्रकार की उत्तेजना का—क्रोध, भय, [illegible] भावना का—पाचन-क्रिया पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है, [illegible] इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि भोजन करते समय [illegible]

भोजन के समय बच्चे के दोषों का उल्लेख [illegible] और न ही भोजन के समय अरोचक प्रसंगों को छेड़ना [illegible] को बार-बार इस बात के लिए टोका जाएगा कि भोजन [illegible] का व्यवहार करना चाहिए तो इसका परिणाम [illegible] सामने परोसा गया है और भोजन [illegible]

माता-पिता के भोजन करने का ढंग अच्छा है तो उनकी देखा-देखी बच्चा भी धीरे-धीरे तमीज़दारी से भोजन करना सीख लेगा और उसकी समझ में आ जायगा कि भोजन करते समय उचित व्यवहार क्या होता है।

कुछ परिवारों में यह समझा जाता है कि भोजन करते समय केवल बड़े लोगों को ही बात करने का अधिकार होता है। इसके विपरीत कुछ परिवारों में भोजन के समय सारा ध्यान बच्चों पर केन्द्रित कर दिया जाता है। यदि बच्चों को बातचीत करने का ढंग सिखाना है तो उनको दूसरों की बातचीत में भाग लेने का अवसर देना चाहिए तथा उनको यह भी सिखाना चाहिए कि दूसरों की बात ध्यान से सुनना चाहिए और बीच में दूसरे की बात को काटना नहीं चाहिए। यदि उनके मित्रों को कभी-कभी उनके साथ भोजन करने के लिए बुला लिया जाय तो वे भोजन में आनन्द भी लेंगे और उनको अतिथि-सत्कार की शिक्षा भी मिलेगी।

दाँतों की रक्षा

बच्चों के दाँतों की दशा उनके पोषण की अपेक्षा ज्यादा आसानी से जानी जा सकती है क्योंकि दाँतों के विकार ऊपर से ही दिखाई दे जाते हैं।

स्कूल जाने वाले ऐसे बच्चों की संख्या जिनके दाँत सड़ने लगते हैं स्कूल की प्राथमिक कक्षाओं में लगातार बढ़ती जाती है और १२ वर्ष की अवस्था के बच्चों में तो समाज के कुछ समूहों में यह संख्या ८० से ६० प्रतिशत तक पहुँच जाती है। इसको दूर करने के लिए माता-पिता के पास जो सबसे अच्छा उपाय है वह यह कि वे बच्चों को संतुलित भोजन दें तथा ऐसे भोजन उचित मात्रा में दें जिनसे दाँतों की रक्षा होती है। पता लगाया गया है कि यदि पानी में फ्लोरीन की मात्रा काफी हो तो इससे दाँत मजबूत रहते हैं, इसलिए बच्चों के दाँतों की रक्षा के लिए फ्लोरीन का प्रयोग करने के लिए वैज्ञानिक खोज-बीन की जा रही है।

जब स्कूलों में निरीक्षण से यह पता चलता है कि बच्चों के दाँत बहुत बुरी दशा में हैं तो माता-पिता इन विकारों को दूर करने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते। इसका कारण यह भी हो सकता है कि उनके पास दाँतों का इलाज करवाने के लिए काफी पैसे नहीं होते, पर अधिकांश तो इसमें माता-पिता की उपेक्षा का ही है। इससे यह पता चलता है कि माता-पिता स्वयं इस बात को नहीं समझते कि शरीर के स्वास्थ्य के लिए दाँतों का स्वस्थ रहना कितना आवश्यक है।

६ वर्ष की अवस्था में जो दाढ़ें निकलती हैं वे विशेष रूप से जल्दी सड़ने लगती हैं इसलिए उनकी ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। बड़ी

उम्र के बहुत-कम लोग ऐसे होते हैं जिनकी ये दाढ़ें ठीक दशा में होती हैं, इससे यह पता चलता है कि बचपन में उनके इन दाँतों की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया। इन दाढ़ों की खराबी का कारण यह होता है कि बचपन में इनको उचित भोजन नहीं मिलता, क्योंकि माता-पिता को यह नहीं मालूम होता कि ये दाढ़ें स्थायी होती हैं और ये जन्म से पहले ही से बच्चे के जबड़े में मौजूद होती हैं।

चूँकि स्कूल जाने वाले बच्चों में शायद १० में से १ को इस बात का ज्ञान होता हो कि भोजन, व्यायाम और विश्राम-सम्बन्धी अच्छी आदतों का स्वास्थ्य से क्या सम्बन्ध होता है, इसलिए उनके माता-पिता को इस सम्बन्ध में अपने बच्चों की आदतों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। यदि बच्चों को यह मालूम भी हो कि भोजन के बाद दिन में बार-बार मिठाई आदि न खाना चाहिए परन्तु इस बात का विश्वास नहीं किया जा सकता कि वे ऐसा नहीं करेंगे। स्कूल में बच्चों को स्वास्थ्य-रक्षा की जो भी शिक्षा दी जाती है उसके अतिरिक्त घर पर भी माता-पिता को बच्चों को स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा देनी चाहिए। बच्चा जो चीज अपनी आँख से देखता है उसके द्वारा वह मुँह से बताई हुई बात की अपेक्षा जल्दी सीखता है, इसलिए माता-पिता को चाहिए कि वे चित्रों, तस्वीरों आदि का तथा ऐसे साधनों का ज्यादा प्रयोग करें जिनकी सहायता से बच्चा यह देख सके कि दाँतों को स्वस्थ रखना क्यों आवश्यक है।

माता-पिता कोई ऐसा काम करने पर तैयार नहीं होंगे जिससे यह डर हो कि आगे चलकर उनके बच्चों का स्वास्थ्य खराब हो जायगा। परन्तु जब वे अपने बच्चों के दाँतों का उचित ध्यान नहीं रखते और साल में कम-से-कम दो बार उनको किसी दाँतों के डॉक्टर को नहीं दिखाते तो वे वस्तुतः वही काम करते हैं जिससे आगे चलकर उनके बच्चों का स्वास्थ्य खराब हो जाने की सम्भावना रहती है।

बच्चे के कानों की रक्षा

आगे चलकर बच्चे की सुनने की शक्ति कैसी होगी यह इस बात पर भी निर्भर होता है कि बचपन में उसके कानों का किस [illegible]। यदि बचपन में उसके कानों के प्रति कोई लापरवाही की जाती है [illegible] उसे सुधारना बहुत कठिन हो जाता है। यदि बच्चे के [illegible] यदि बचपन में ही उसका पता लगा लिया जाय तो उसे [illegible] बिलकुल खराब हो जाने से बचाया जा सकता है।

बड़े लोगों में जितने प्रकार का बहरापन पाया [illegible]

तक के बच्चों में भी मौजूद होता है। अन्तर केवल यह होता है कि बचपन में यह विकार केवल प्रारम्भिक अवस्था में होता है और इसे बढ़ने से रोका जा सकता है पर आगे चलकर इसे रोकना असम्भव हो जाता है।

परन्तु अच्छा तो यह है कि उसकी सुनने की शक्ति में किसी प्रकार की कमी आने ही न दी जाय। इसका अर्थ यह है कि जब बच्चों को खसरा आदि किस्म का कोई रोग हो तो उनका बहुत ध्यान रखा जाय क्योंकि बहुधा इन रोगों के फल-स्वरूप कान में विकार पैदा हो जाता है। यदि बच्चों की हलक और नाक की गिल्टियों में बहुत समय से किसी प्रकार का विकार है या निरन्तर कोई खराबी रहती है तो इसके फलस्वरूप उनके कान बहने लग सकते हैं और वे बिलकुल बहरे हो सकते हैं। यदि बच्चे के कान में दर्द हो तो उसका 'घर पर इलाज' करने का प्रयत्न न करना चाहिए बल्कि उसे किसी डॉक्टर के पास या किसी अस्पताल में ले जाना चाहिए। बच्चों के स्कूल से गैरहाजिर रहने का एक बहुत बड़ा कारण जुकाम भी है और कान में दर्द तथा इसके बाद कान की अन्य बीमारियाँ जुकाम के कारण ही पैदा होती हैं। खेद की बात तो यह है कि हम 'जुकाम' की ओर अधिक ध्यान नहीं देते। जो माता बच्चे के स्वास्थ्य के प्रति सतर्क है विशेष रूप से उसके कानों के प्रति, वह कभी यह नहीं कहेगी, "अरे, यों ही जुकाम हो गया है ठीक हो जायगा।"

कान खराब होने का एक बहुत बुरा और तात्कालिक परिणाम यह होता है कि बच्चा स्कूल की पढ़ाई में पिछड़ जाता है। अध्ययन से पता लगाया गया है कि जो बच्चे ऊँचा सुनते हैं वे पढ़ाई में लगभग एक वर्ष पिछड़े रहते हैं। यदि हमें उनके बचपन में ही मालूम हो जाय कि उनके कान में कोई खराबी है तो इस दुर्घटना से बचने का उपाय किया जा सकता है।

बच्चे की आँखें

यदि स्कूल में भर्ती होने से पहले बच्चे का नियमित रूप से डॉक्टरी निरीक्षण कराया भी गया हो फिर भी इस बात की सम्भावना बाकी रह जाती है कि उसकी आँखों का निरीक्षण न कराया गया हो। बहुत कम डॉक्टर ऐसे होते होंगे जो बच्चे का निरीक्षण करते समय उसकी आँखों का निरीक्षण करते हों। बहुत से स्कूलों में नियमित रूप से बच्चों की आँखों का निरीक्षण किया जाने लगा है। परन्तु एक साथ इतने अधिक बच्चों का निरीक्षण करते समय केवल यही सम्भव हो पाता है कि उन बच्चों का पता लग जाय जिनकी आँखों में स्पष्टतः कोई बहुत बड़ा विकार हो।

यदि कोई बच्चा किताब आँख के बहुत निकट रखकर पढ़ता है; यदि वह कोई काम करते समय सिर को बार-बार इधर-उधर टेढ़ा करता है; यदि उसकी आँखों में अक्सर बिलनियाँ निकल आती हैं या आँखें लाल हो जाती हैं [illegible] रहता है; यदि उसकी आँखें भेंगी हैं; यदि उसको दूर की चीज देखने में कठिनाई होती है, तो उसके माता-पिता उसकी आँखों का किसी कुशल डॉक्टर से निरीक्षण करा लें।

बहुत से बच्चे अपनी कक्षा में साधारण ढंग से पढ़ते रहते [illegible] को अनुमान भी नहीं होता कि उनकी आँखें कमजोर हैं। [illegible] जानने का कोई साधन होता नहीं कि उसकी आँखें दूसरों [illegible] वह इस कमजोरी के बावजूद अपनी पूरी कोशिश करता है कि [illegible] न रह जाय। यह कर्तव्य उसके माता-पिता का है कि वे इस [illegible] रहें और उसे दूर करने का उपाय करें। जब बच्चा स्कूल जाने लगता [illegible] पढ़ाई-लिखाई आदि में अपनी आँखों पर पहले की अपेक्षा [illegible] है उस समय उसके माता-पिता को इस समस्या की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि शुरू से ही ध्यान रखा जाय तो बच्चों की आँखों के [illegible] ही पता लग सकता है और उनको दूर करने का उपाय किया जा सकता है— बहुत दूर की चीज न देख सकना, या आँख बहुत तेज होना [illegible] (Lens) में ऐसा विकार होना जिसके कारण कोई वस्तु [illegible] बगल एक समान न दिखाई देती हो या आँखों का भेंगापन आदि।

यदि निरीक्षण के बाद यह पता चले कि बच्चे को [illegible] है तो माता-पिता को चाहिए कि वे आँखों के डॉक्टर के [illegible] पालन करें कि कितने समय के बाद आँखों का फिर निरीक्षण [illegible] पर चश्मा बदलवाना चाहिए। क्योंकि बच्चों की [illegible] हैं और उनका विकास बड़ी तेजी से होता रहता है, इसलिए [illegible] बदलवाने की जरूरत पड़ती है।

सोने और आराम करने का महत्त्व

जिस समय बच्चे स्कूल जाना आरम्भ करते हैं [illegible] से लगभग ११ घण्टे सोने के आदी होते हैं। [illegible] उनका निश्चित नहीं रह सकता है कि उनको [illegible]

यद्यपि इसके बाद के कुछ वर्षों में बच्चों के सोने [illegible]

धीरे क्रमवत् कम होती जायगी, परन्तु इसके बारे में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता कि किस अवस्था के बच्चे को दिन-भर में कितना सोना चाहिए क्योंकि हर बच्चे की आवश्यकताएँ भिन्न होती हैं। जिस प्रकार कुछ बच्चे बहुत कम भोजन पर ही दूसरे बच्चों की अपेक्षा बहुत स्वस्थ रहते हैं उसी प्रकार उनके स्वास्थ्य के लिए आवश्यक नींद की मात्रा भी बहुत भिन्न होती है। इसके बारे में सबसे अच्छा नियम यह है कि स्कूल जाने वाले बच्चे रात को जल्दी सो जाया करें ताकि वे स्वाभाविक रूप से प्रातःकाल जल्दी उठ सकें। थोड़े से अनुभव से यह जाना जा सकता है कि किस बच्चे को रात को किस समय सो जाना चाहिए ताकि वह १५ या २० मिनट भी ज्यादा जागने के कारण सुबह उठते समय चिड़चिड़ाए नहीं।

बच्चे जितने बड़े होते जाते हैं उनकी रुचियाँ और उनके शौक भी उतने ही ज्यादा बढ़ते जाते हैं और उतनी ही ज्यादा उनकी यह इच्छा होती है कि वे स्वतन्त्र रह सकें। बगैर उनसे बहस किये हुए या बिना उनकी राय के उनके लिए नियम बना देने की अपेक्षा यदि उनके लिए कोई योजना बनाते समय उनकी भी राय ले ली जाय तो उनकी यह भावना नहीं होती कि उनको दबाकर रखा जा रहा है। परन्तु स्वास्थ्य के मामलों में अन्तिम निर्णय माता-पिता के ही हाथ में होना चाहिए। सम्भव है कि १२ वर्षीय मीरा को अपने स्कूल का काम पूरा करने का इतना अधिक ध्यान रहता हो कि वह नियत समय के बाद भी जागती रहे। बजाय इसके कि वह हमारी खुशामद करके हमको इस बात के लिए राजी कर ले कि यदि उसे केवल उस दिन १० बजे तक जागने दिया जाय तो वह फिर कभी ज्यादा देर तक नहीं जागेगी, ज्यादा अच्छा यह होगा कि हम उसकी प्रार्थना को सीधे-सीधे अस्वीकार कर दें, क्योंकि यदि हमने उसकी बात मान ली तो वह कुछ दिन बाद फिर उसी प्रकार की परिस्थिति खड़ी कर देगी। बाद में हम (मीरा से राय लेने के बाद) उसके शिक्षक या शिक्षकों से बात कर सकते हैं कि उसे घर पर करने के लिए कितने घण्टों का काम दिया जाता है। यदि हाई स्कूल की कक्षाओं के किसी विद्यार्थी को घर पर करने के लिए बहुत सा काम दे दिया जाता है, (जिसका कारण बहुधा यह होता है कि विभिन्न शिक्षक आपस में पूछे बिना ही अलग-अलग बहुत सा काम दे देते हैं) तो इसका उपाय केवल यह है कि माता-पिता तथा स्कूल के अधिकारी मिलकर इस समस्या को हल करने का उपाय ढूँढ निकालें।

जब बच्चों में युवावस्था के पहले वाले तीव्र विकास की अवस्था आती है—बहुत सी लड़कियों में तो यह तीव्र विकास किशोरावस्था से भी पहले ही

आरम्भ हो जाता है—तब उनको ज्यादा आराम करने और सोने की जरूरत होती है। बच्चे के विकास का उसके शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है और इन आवश्यकताओं को पूरा करने का यही उपाय है कि उसे काफी आराम मिले और ऐसा भोजन मिले जो शरीर की रचना में सहायक हो। बहुत सी माताएँ यह शिकायत करती हैं कि युवावस्था के निकट आने के साथ-ही-साथ उनकी बेटियाँ ज़रा-ज़रा सी बात पर आँसू बहाने लगती हैं या क्रुद्ध हो जाती हैं। इसका एक कारण यह है कि इस अवस्था के लगभग उनके शरीर की गिल्टियों में कुछ ऐसे परिवर्तन होते हैं जिनके कारण रोना और क्रुद्ध होना स्वाभाविक हो जाता है, पर इसका कारण यह भी हो सकता है कि उनकी भोजन तथा विश्राम-सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पातीं।

नींद में बाधा

रेडियो तथा फिल्म आदि आजकल हमें और हमारे बच्चों को काफी आनन्द प्रदान करते हैं परन्तु फिर भी यही साधन हमारे लिए बहुत बड़ी-बड़ी समस्याएँ भी खड़ी कर देते हैं। इन चीजों का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है पर इनके कारण स्वास्थ्य-सम्बन्धी बहुत सी जटिल समस्याएँ भी पैदा हो जाती हैं।

हम सब जानते हैं कि दिन-भर की थकावट के बाद बच्चों को थोड़ा सा आराम मिलना चाहिए, पर वही समय रेडियो सुनने या फिल्म देखने का होता है। क्या रेडियो सुनना या फिल्म देखना उनके लिए हानिकारक है ?

बहुत अध्ययन के बाद पता चला है कि ऐसा फिल्म देखकर, जिससे भावनाओं में ज़रा सी भी उत्तेजना पैदा होती है, बच्चों की नींद में बाधा पड़ती है। फिल्म जितनी ही उत्तेजनाजनक होगी, बच्चे की नींद में उतनी ही बाधा पड़ेगी। यह बाधा केवल एक दिन तक ही सीमित नहीं रहती पर लगातार २ या ३ हफ्तों तक इसका प्रभाव बाकी रह सकता है। ६ से १२ वर्ष तक के बच्चों पर भयानक दृश्यों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। परन्तु चूँकि प्रेम-भाव-प्रधान फिल्मों की अपेक्षा उनको रोमाञ्चकारी फिल्म ज्यादा अच्छे लगते हैं इसलिए यदि उनसे पूछा जाय तो वे उन्हीं को देखना ज्यादा पसन्द करेंगे।

यह बात न्यायसंगत मालूम होती है कि बच्चों को जो फिल्में दिखाई जाएँ उनको बड़ी सावधानी से चुना जाय। इसका एक कारण तो यह है कि सिनेमा पर देखी हुई चीजें बड़े लोगों की अपेक्षा बच्चों को ज्यादा दिन तक याद रहती हैं। जो बातें हमारे ध्यान से पलक मारते में उतर जाती हैं, वही उन पर

बहुत गहरा प्रभाव डाल देती है।

ऐसे भावुक बच्चों को, जो फिल्म देखने के बाद रात को बुरे-बुरे स्वप्न देखते हैं या सोते-सोते भयभीत होकर उठ बैठते हैं, केवल ऐसी फिल्में दिखाई जानी चाहिएँ जिनमें भयानक घटनाएँ न हों।

उन बच्चों को भी, जिन पर उत्तेजनाजनक घटनाओं का इतना ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता, स्कूल के दिनों में हर हफ्ते फिल्म देखने की इजाजत दे देना ठीक नहीं है, शाम वाले शो में भी नहीं। वे बच्चे जो बहुत जल्दी घबरा जाते हैं उनको दिन में कभी कोई हलकी-फुलकी फिल्म देखने की इजाजत दी जा सकती है, इससे अधिक नहीं। कौनसी फिल्में बच्चों के लिए उचित होंगी इसका पता हम पत्रिकाओं में देखकर पहले से लगा सकते हैं।

परन्तु बच्चे के माता-पिता को यह नहीं भूलना चाहिए कि स्कूल जाने वाले बच्चे के लिए इस बात का बहुत महत्त्व होता है कि उसे भी उन कामों को करने का, वही चीजें सुनने और देखने का अवसर मिले, जिनको करने, सुनने और देखने का उसके मित्रों को अवसर मिलता है। उसके स्वास्थ्य की चाहे जितनी सावधानी से रक्षा की जाय, परन्तु यदि उसमें यह भावना पैदा हो गई कि वह अपने साथियों से 'भिन्न' है, तो फिर स्वास्थ्य का कोई भी लाभ नहीं होगा।

फिर भी, जो माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में शुरू से ही दृढ़ रहते हैं और एक नीति पर चलते रहते हैं, उनके बच्चे भी एक नियत समय पर सो जाने की बात को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। कभी-कभी जब बच्चा किसी विशेष कार्यक्रम के प्रति बहुत उत्सुकता दिखाता है या जब घर पर 'खास' मेहमान आते हैं उस समय यदि उसे थोड़ी देर ज्यादा जागने की इजाजत दे दी जाय तो उसमें यह भावना पैदा नहीं होगी कि उसके माता-पिता उसकी राह में बाधाएँ डालकर उसे जीवन का आनन्द नहीं प्राप्त करने देते।

बच्चों को दुर्घटनाओं से सुरक्षित रखना

प्रतिवर्ष जितने बच्चे हृद्रोग तथा निमोनिया आदि रोगों से मरते हैं उससे कहीं अधिक संख्या में बच्चे दुर्घटनाओं का शिकार हो जाते हैं। यह बात तो स्पष्ट है कि छोटे बच्चों की अपेक्षा, जिनकी हम अधिक देखभाल रखते हैं, इस अवस्था के बच्चों को अधिक संकटमय परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। दुर्घटनाओं के कारण इतनी अधिक मौतें होने का अर्थ यह है कि हम बच्चों को इस बात की उचित शिक्षा नहीं देते कि वे संकटों से कैसे बच सकते हैं।

सबसे अधिक संख्या में तो बच्चे मोटर आदि से कुचलकर मरते हैं और इसके बाद उन बच्चों की संख्या होती है जो डूबकर मरते हैं। डूबकर मरने वाले बच्चों में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की संख्या ज्यादा होती है। दुर्घटनाओं के फलस्वरूप बच्चों के मरने के अन्य कारण हैं जल जाना, कहीं आग लग जाना, किसी ऊँची जगह से गिर पड़ना आदि।

घातक रोगों से तथा क्षय रोग से होने वाली मौतों की संख्या तो प्रति-वर्ष कम होती जा रही है परन्तु दुर्घटनाओं के कारण होने वाली मौतों में कोई कमी नहीं हुई है।

अकारण ही होने वाली इन मौतों को कम करने के लिए माता-पिता क्या कर सकते हैं?

१. वे इसका प्रबन्ध कर सकते हैं कि उनके बच्चे अपेक्षतः सुरक्षित स्थानों में खेलें। उदाहरण के लिए कुछ शहरों की गलियों में गाड़ियों का आना-जाना बिलकुल बन्द कर दिया जाता है ताकि उन गलियों में खेलने वाले बच्चों के मोटर आदि से कुचलने का भय न रहे। माता-पिता मिलकर बच्चों के लिए खेलने के ऐसे स्थानों का प्रबन्ध कर सकते हैं जहाँ वे बिना किसी भय के खेल-कूद तथा भाग-दौड़ सकें। माता-पिता अपने घर की खाली जमीन को ही खेलने के योग्य बना सकते हैं। वहाँ वे बच्चों के व्यायाम की सामग्री लगवा सकते हैं और बच्चों को इजाजत दे सकते हैं कि वे अपनी आवश्यकता के अनुसार वहाँ कुछ भी बना सकते हैं और जो खेल भी वे चाहें वहाँ खेल सकते हैं।

२. माता-पिता अपने बच्चों को सड़क पर चलने के नियमों का पालन करने की शिक्षा दे सकते हैं। (बहुत से बड़े लोग स्वयं ही इन नियमों का पालन नहीं करते।) बच्चों को भय की चेतावनी देने की अपेक्षा उनके सामने उदाहरण रखने तथा उनसे अभ्यास कराने से ज्यादा लाभ होता है।

३. वे अपने बच्चों को तैरना सिखा सकते हैं। वे अपने बच्चों को यह सिखा सकते हैं कि उथले पानी में ऊँचाई से कूदकर गोता लगाने से क्या हानि होती है, तथा वे बच्चों को इसकी भी शिक्षा दे सकते हैं कि डूबते हुए आदमी को कैसे बचाया जाता है। माता-पिता इस बात का प्रबन्ध कर सकते हैं कि तैरने के, तालाबों के पास तथा नदियों के घाटों पर और झीलों के किनारे तैरने वालों की रक्षा का उचित प्रबन्ध हो।

४. वे बच्चों को विचारशील और सतर्क रहने का, तथा अपने निर्णय की

प्रयोग करने की शिक्षा दे सकते हैं। मोटर से कुचलकर या डूबकर मरने वाले बच्चों में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की संख्या बहुत ज्यादा होती है जिससे यह पता चलता है कि भय और संकट की ओर ध्यान दिए बिना ही, लड़कों को लड़कियों की अपेक्षा ज्यादा आजादी दी जाती है। लड़कियों की अपेक्षा लड़के ज्यादा क्रियाशील और साहसी भी होते हैं, परन्तु यह वास्तविक परिस्थिति का केवल एक अंश है। चूँकि वे ज्यादा क्रियाशील, बहादुर और साहसी होते हैं इसलिए यह समझा जाता है कि वे अपना ख्याल भी खुद ही रख सकते हैं। आजकल संसार में भय और संकट के साधन तो बहुत बढ़ गए हैं पर अपनी सुरक्षा का ध्यान रखने की हमारी क्षमता में कोई वृद्धि नहीं हुई है। मोटर, लारियाँ, बिजली, मोटर-साइकिलें आदि दुर्घटनाओं के अनेक कारण ऐसे हैं जो हमारे जीवन का एक अंग बन गए हैं। इनके कारण यह आवश्यक हो गया है कि माता-पिता अपने बच्चों को सावधान रहना सिखाएँ और उनको ऐसी शिक्षा दें कि वे अपने हाथ-पाँव फुरती से चला सकें और संकट से बचने का स्वयं ही उपाय कर सकें। बाइसिकिल चलाने में यदि खतरा है तो इससे बचने का उपाय यह नहीं है कि बच्चे को बाइसिकिल चलाने ही न दी जाय, बल्कि उसे इस प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए कि वह सुरक्षित ढंग से बाइसिकिल चला सके। ज्यों-ज्यों वह निपुण होता जाय हम उसे ऐसी जगहों पर भी साइकिल चलाने की इजाजत दे सकते हैं जहाँ बहुत मोटर-गाड़ियाँ आती-जाती हों।

परन्तु बच्चे को डरपोक और आवश्यकता से अधिक सतर्क बना देना भी भूल होगी। यदि माता-पिता अपने बच्चे की सुरक्षा के विचार से उस पर तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगा देंगे तो उसमें यही प्रवृत्तियाँ पैदा हो जायेंगी। बच्चों को दुर्घटनाओं से बचाने का उपाय यह नहीं कि उनको कोई काम करने ही न दिया जाय, बल्कि उनको इस बात का अभ्यास कराना चाहिए कि सुरक्षित ढंग से काम करने का तरीका क्या होता है ताकि वे यह जान सकें कि किन बातों के न करने से वे संकट में फंस सकते हैं और जब उनको चेतावनी दी जाय तो वे उसका महत्त्व समझ सकें। आठ वर्ष के बच्चे बड़ी आसानी से कपड़ों पर लोहा करना या आग पर कोई चीज सेंकना सीख सकते हैं परन्तु उन पर निगाह रखने की (आलोचनात्मक निगाह नहीं) जरूरत होती है। १० वर्ष के बच्चे को यह सिखाया जा सकता है कि मरम्मत करते समय जैक की सहायता से मोटर को ऊपर कैसे उठाया जाता है।

६ वर्ष के बच्चे या इससे भी अधिक उम्र के बच्चे बहुधा दियासलाई से खेलते-

खेलते आग लगा देते हैं। यह तो असम्भव है कि इस उम्र के बच्चों के हाथ में दियासलाई पड़े ही नहीं और इसका प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए। कुछ बच्चे इतने सीधे और आज्ञाकारी होते हैं कि यदि उनसे मना कर दिया जाय कि वे दियासलाई से न खेला करें तो वे शायद मान जायें। परन्तु बहुत से बच्चे ऐसे होते हैं जिनकी इच्छा इतनी प्रबल होती है कि वे उसको रोक नहीं सकते। हम चाहे जितना प्रयत्न करें पर हम ऐसा कोई दंड नहीं मालूम कर सकते जिसके द्वारा बच्चा निश्चय ही आग से खेलना छोड़ देगा। बच्चों को इसका कोई ज्ञान नहीं होता कि इस प्रकार के खेल में क्या खतरा है। यदि हम उनको अपने सामने दियासलाई जलाने के लिए दे दें तो उनका कौतूहल दूर हो जायगा और वे कभी ऐसी जगह दियासलाई नहीं जलायेंगे जहाँ आग लगने का भय हो।

बच्चे को कब स्कूल से छुट्टी दिला देनी चाहिए

यदि जरा भी इस बात का सदेह हो कि बच्चे पर मौसम के बदलने का प्रभाव पड़ा है निम्नलिखित बातो मे से किसी बात के होते ही बच्चे को घर पर आराम करने देना चाहिए।

यदि बच्चे की नाक बह रही हो, यदि उसकी आँखों से पानी बहता हो और आँखें लाल रहती हों; यदि उसे छींकें आती हों और वह खाँसता हो; यदि उसका गला खराब हो; तो हमें समझ लेना चाहिए कि उसे या तो जुकाम होने वाला है या खसरा या काली खाँसी के प्रकार का रोग होने वाला है। परन्तु होता यह है कि जब तक बच्चे को कोई मामूली सी तकलीफ रहती है तब तक हम उसका स्कूल जाना बन्द नहीं करते।

जुकाम या बच्चो के अन्य रोग शुरू-शुरू मे बड़ी आसानी से एक बच्चे से दूसरे को लग सकते हैं, इसलिए ऐसे बच्चे को घर पर रखना उसके लिए भी लाभदायक होता है और दूसरे बच्चो के लिए भी। यदि शुरू ही मे उसका इलाज करवा दिया जाय तो संभव है कि उसे ज्यादा दिनों तक स्कूल में अनुपस्थित न रहना पड़े। जब बच्चे को कोई छूत की बीमारी हो तो उसे यदि शुरू से ही बिस्तर पर लिटा दिया जायगा तो उसके रोग मे जटिलतायें पैदा नहीं होंगी क्योंकि ये जटिलतायें कभी-कभी स्वयं रोग से भी ज्यादा घातक साबित होती हैं।

कभी-कभी रोगों के सूचक चिह्न इतने स्पष्ट नहीं होते जितने कि ऊपर बताये गए हैं परन्तु फिर भी वे बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। शिथिलता, थकावट, चिड़चिड़ापन अथवा साधारण व्यवहार मे कोई भी परिवर्तन; चेहरे पर पीलापन;

चेहरा बुखार के रोगी का सा हो जाना; गले में सूजन आदि बातें ऐसी हैं जिनके पैदा होते ही हमको बच्चे का स्कूल जाना बन्द करा देना चाहिए।

ऐसे रोग-चिह्न जिनमें बच्चे को पीड़ा का अनुभव होता है, जैसे कान में दर्द होना या कान बहना, कै होना, दस्त आना, या सर में दर्द होना आदि बातें तो इतनी स्पष्ट होती हैं कि हम फौरन बच्चे का स्कूल जाना बन्द करा देते हैं और उसे बिस्तर पर लिटा देते हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कै होने का कारण बहुधा यह समझ लिया जाता है कि बच्चे ने कोई चीज खा ली है, परन्तु इससे भी अधिक हद तक कै होना इस बात का सूचक होता है कि बच्चे को अरुण ज्वर या इन्फ्लुएन्जा आदि प्रकार का कोई रोग होने वाला है।

बीमारी का बहाना

बहुधा छोटी-मोटी बीमारी में भी बच्चे का इतना ध्यान रखा जाता है और उसे इतनी सुविधाएँ दी जाती हैं—विशेष भोजन, तरह-तरह के खिलौने आदि—कि बच्चा यदि स्कूल के काम से जी चुराना चाहता है तो वह बीमारी का बहाना करके लेट जाता है। यदि जरा भी संदेह हो जाय कि बच्चा बहाना कर रहा है तो उसकी ओर अधिक ध्यान ही नहीं देना चाहिए और उसे चुपचाप लेटे रहने देना चाहिए। कुछ ही घंटों में पता चल जायगा कि वह सचमुच बीमार है या केवल अपनी माँ की सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है क्योंकि उसे किसी और की सहानुभूति प्राप्त करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई। हमारा रवैया यह होना चाहिए "यदि तुम सचमुच इतने बीमार हो कि स्कूल नहीं जा सकते तो तुमको बिस्तर पर लेटना चाहिए।" ऐसा करने से थोड़ी ही देर में हमको पता चल जायगा कि बच्चा सचमुच बीमार है या केवल बीमारी का बहाना कर रहा है। यदि बिस्तर पर लेटा रहना विशेष रूप से रोचक और सुखमय न बना दिया जाय तो कोई भी स्वस्थ बालक बिस्तर पर लेटना पसन्द नहीं करेगा।

बीमार बच्चे



जब बच्चे स्कूल जाने लगते हैं तब उनके माता-पिता को उन्हें भयानक रोगों का इतना सामना नहीं करना पड़ता जितना उनकी बहुत छोटी अवस्था में करना पड़ता था। जब बच्चा बहुत छोटा होता है और उसका बुखार बहुत तेजी से बढ़ जाता है और वह ठीक से बता नहीं पाता कि उसे क्या पीड़ा है तब माता-पिता बहुत निस्सहाय अनुभव करते हैं और उनको बड़ी चिन्ता होने लगती है। परन्तु जब बच्चे इस अवस्था में पहुँच जाते हैं तब उनके माता-पिता को इस लाचारी का सामना नहीं करना पड़ता।

इसके अतिरिक्त जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है तब उसकी माँ भी उसके रोग-चिह्नों को आसानी से पहचानने लगती है। वह इससे भली-भाँति परिचित हो जाती है कि जुकाम का बच्चे के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है और पाचन-सम्बन्धी विकार के बाद वह किस प्रकार का भोजन आसानी से पचा लेता है, वह उसके व्यवहार को देखकर बता सकती है कि उसे आराम की ज़रूरत है।

बीमार पड़ने पर बड़ा बच्चा आदेशों का पालन भी ज्यादा आसानी से कर सकता है। वह आसानी से इस बात को समझ जाता है कि दूध और फलों का रस आदि पीना उसके लिए क्यों आवश्यक है, वह कड़वी दवा भी पीने पर राजी हो जाता है। बीमारी के बाद कमजोरी की दशा में भी वह ज्यादा खुश रह सकता है क्योंकि वह पढ़ सकता है और अपने हाथों से तरह-तरह के काम कर सकता है।

बीमारी के चिह्न

इसमें संदेह नहीं कि शिशुकाल की तरह इस अवस्था में भी बीमार पड़ने पर बच्चे के लिए डॉक्टर को बुलाने की ज़रूरत होती है परन्तु इस अवस्था में डॉक्टर को बुलाने की ज़रूरत कम पड़ती है। यदि बच्चे में निम्नलिखित बातों में से कोई भी बात पाई जाय तो डॉक्टर बुला लेना ही उचित होगा :

१. यदि १०२° या उससे अधिक बुखार हो या निरन्तर १००° से अधिक बुखार रहता हो।

२. यदि बार-बार बहुत सी कै होती हो।

३. यदि गले में खराश हो।

४. यदि शरीर के किसी अंग में निरन्तर पीड़ा हो। यदि कान में दर्द हो,

सिर में बहुत तेज़ दर्द हो या पेट में, आमाशय में, सीने में या जोड़ों में दर्द हो तो इसका अर्थ यह हो सकता है कि उसे कोई भीषण रोग लगने वाला है या उसे कहीं बहुत चोट लग गई है।

५. यदि गरदन या पीठ अकड़ जाय।

६. यदि बच्चे की खाल पर कहीं फोड़ा हो जाय या खुजली आदि के दाने पड जायँ।

डॉक्टर के आने से पहले

यदि बच्चे के रोग की सूचना डॉक्टर को टेलीफोन पर दी जाय तो रोग के बारे में जितना विस्तारपूर्वक सम्भव हो बता देना चाहिए और डॉक्टर के आदेश का पूरी तरह पालन करना चाहिए।

डॉक्टर के आने से पहले कुछ काम कर लेने चाहिएँ।

१. बच्चे को किसी ऐसी शान्त जगह पर लिटा दिया जाय जहाँ वह आराम कर सके या सो सके।

२. दूसरे बच्चों को उससे दूर रखा जाय।

३. यदि वह कै कर रहा है तो उसे कोई भोजन न दिया जाय परन्तु पानी काफी दिया जाय। यदि कै करना बन्द न करे तो पानी भी बन्द कर दिया जाय। जब बच्चा कै करना बन्द कर दे तब उसे फिर दो-एक घूंट पानी या जिंजर (Ginger) या बहुत हल्की मीठी चाय दी जाय। उसे कुटी हुई बर्फ भी चूसने के लिए दी जा सकती है।

४. यदि बच्चा न कै कर रहा हो और न उसे दस्त आ रहे हों तो उसे द्रव्य पदार्थ—पानी, फलों का रस, दूध आदि—जितना भी वह मागे दिये जायँ। बीमार बच्चे को खाना खिलाने का प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिए।

५. यदि उसे बहुत तेज बुखार हो और वह बेचैन हो तो ठंडे पानी में स्पंज भिगोकर उसका शरीर पोंछ दिया जाय, इससे उसे काफी आराम हो जायगा।

६. हर चार घंटे के बाद उसका टेम्प्रेचर लिया जाय और उसे कागज पर लिख लिया जाय।

७. डॉक्टर को दिखाने के लिए बच्चे का थोड़ा सा पेशाब रख लिया जाय।

८. जब तक डॉक्टर न कहे उसे कोई दवा न दी जाय।

बीमार बच्चे की देखभाल

जब तक डॉक्टर निश्चित रूप से यह न बता दे कि बच्चे को संक्रामक रोग नहीं है तब तक उसके रूमाल, तौलिए, अँगोछे, खाने के बरतन तथा लोटा, बाल्टी आदि अलग रखने चाहिएँ, और साफ करवाने से पहले इनको खौलते पानी में उबाल लेना चाहिए। विशेष रूप से रूमालों को अच्छी तरह उबाल लेना चाहिए। रोगियों के प्रयोग के लिए कागज के रूमाल भी मिलते हैं जिनको बाद में जला दिया जा सकता है।

रोगी के कमरे में एक बड़ा सा लबादा या ऐप्रन होना चाहिए जिसे रोगी की सेवा करते समय पहन लेना चाहिए। रोगी के कमरे से बाहर जाते समय ऐप्रन को उतारकर वहीं कमरे में टाँग देना चाहिए। ऐप्रन को रोज बदलने का ध्यान रखना चाहिए।

रोगी की सेवा-शुश्रूषा के बाद हाथ साबुन से अच्छी तरह धो लेने चाहिएँ। यदि गुसलखाना रोगी के कमरे के पास न हो तो दरवाजे के पास ही मेज पर किसी बरतन में पानी तथा साबुन रख लेना चाहिए ताकि कमरे से बाहर निकलते समय हाथ धोने में सुविधा हो।

बीमारी को फैलने से रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। घर में एक बीमार ही बहुत होता है। बीमार बच्चे को, चाहे उसे मामूली जुकाम ही क्यों न हो, बिस्तर पर लिटा देना चाहिए।

जब बच्चा बहुत बीमार होता है, विशेष रूप से जब उसे बहुत तेज बुखार होता है, तब वह आसानी से बिस्तर पर लेटने पर राजी हो जाता है। इस दशा में उसे नींद बहुत आती है और वह अधिकांश समय सोता रहता है। वह चाहता है कि कोई उसे न छेड़े और खिलौनों तथा खेल-कूद से भी उसकी रुचि हट जाती है। इस दशा में बच्चे की ओर जरूरत से ज्यादा ध्यान देकर उसे परेशान नहीं करना चाहिए।

डॉक्टर के आदेशों के अतिरिक्त कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे उसके आराम में बाधा पड़े।

जब बच्चा बीमारी से अच्छा होने लगता है तब उसकी समस्या ही बिलकुल भिन्न होती है। बहुत सी माताओं का यह अनुभव है कि बीमारी के बाद बच्चे को बिस्तर पर लिटाए रखना प्रायः असम्भव हो जाता है। बच्चे बीमारी से इतनी जल्दी अच्छे हो जाते हैं कि भीषण-से-भीषण रोग के दूर होते ही उनके खेल-

न्यता आ जाती है और वे हठ करने लगते हैं कि उनको बिस्तर से उठने की इजाज़त दे दी जाय, यद्यपि ऐसा करने से उनके फिर रोगग्रस्त हो जाने का भय रहता है।

जिस बच्चे को बुखार रहा हो उसे बुखार उतरने के बाद (जब ताप ६८.६° से ६६.६° के बीच रहने लगे) कम-से-कम २४ घंटे तक बिस्तर से उठने नहीं देना चाहिए। यदि उसे २ या ३ दिन से ज्यादा दिनों तक बुखार रहा है तो बुखार उतरने के २ या ३ दिन बाद तक उसे बिस्तर पर लेटे रहने देना चाहिए। यदि इस बात का ध्यान रखा जाय तो बीमारी के बाद बहुत से भीषण परिणामों से बचा जा सकता है।

सफ़ाई

बीमार बच्चे के शरीर को स्वच्छ रखना चाहिए। दिन में एक या दो बार गरम पानी के स्पंज से उसका बदन पोंछ देना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इस बीच में उसे सरदी न लग जाय। यदि कमरा अच्छी तरह गरम किया हुआ न हो तो उसके शरीर पर के सब कपड़े नहीं उतारना चाहिए।

मल-मूत्र आदि त्याग करना

यदि बच्चे को बीमारी में बहुत ज्यादा खाना नहीं दिया जा रहा है तो उसे हमेशा की तरह पाखाना नहीं होगा। यदि ४८ घण्टे तक बच्चे को पाखाना न हो, या उसके पेट में दर्द हो तो उसे गरम पानी का एनीमा देना चाहिए। डॉक्टर से पूछे बिना बच्चे को कोई जुलाब की दवा नहीं देनी चाहिए। कभी-कभी इस प्रकार की दवाएँ देने से बहुत हानि भी हो सकती है, विशेष रूप से ऐसी दशा में जब पेट में दर्द या सूजन हो।

यदि बच्चे को साधारण की अपेक्षा कम पेशाब आ रहा हो और यदि वह कै न कर रहा हो तो उसे पानी अधिक मात्रा में दिया जाना चाहिए।

बीमार बच्चे को खाने की बिलकुल इच्छा नहीं होती और न वह स्वस्थ अवस्था की भाँति खाना पचा ही सकता है। यदि बीमार बच्चे की पाचन-व्यवस्था में कोई खराबी नहीं है तो उसे सादा भोजन देना चाहिए जिसमें दूध, फलों का रस, अंडा, टोस्ट तथा तरकारियाँ आदि तथा कुछ मामूली खीर आदि हो। यदि डॉक्टर कोई विशेष भोजन बताए तो फिर वही देना चाहिए।

बीमार बच्चे को पानी की बहुत जरूरत होती है, विशेष रूप से यदि उसे बहुत तेज बुखार हो। जितनी देर बच्चा जागता रहे उसे हर घण्टे के बाद पीने के

लिए पानी देना चाहिए। यदि बच्चे का पेट खराब नहीं है तो उसे फलों का रस भी काफी मात्रा में दिया जा सकता है। यदि बच्चा कै कर रहा हो, तो उसे कुछ समय के लिए पानी देना बन्द कर देना पड़ता है, परन्तु जैसे ही वह पानी हजम करने योग्य हो जाए उसे फिर पानी देना आरम्भ कर देना चाहिए। पानी पचा सकने योग्य होने से पहले कभी-कभी बच्चा कुटी हुई बरफ या जिंजर आसानी से पचा सकता है।

बीमार बच्चे का टेम्प्रेचर लेना

हर माँ को बच्चे का टेम्प्रेचर लेना जानना चाहिए। अच्छा हो कि जब बच्चा स्वस्थ हो तभी एक थर्मामीटर खरीदकर इसका अभ्यास कर लिया जाए। ६ बरस के या इससे बड़े बच्चों का टेम्प्रेचर मुँह में थर्मामीटर लगाकर लिया जा सकता है। परन्तु उनको याद दिलाना पड़ता है कि वे थर्मामीटर को दाँतों से तोड़ न दें।

टेम्प्रेचर लेने से पहले थर्मामीटर को झटका देकर उतार लेना चाहिए ताकि पारा 'नार्मल' बिन्दु के काफी नीचे उतर जाय। घड़ी देखकर दो मिनट तक थर्मामीटर बच्चे के मुँह में लगा रहने देना चाहिए। टेम्प्रेचर की मात्रा और टेम्प्रेचर लेने का समय किसी कागज पर लिख लेना चाहिए।

जुकाम

जिस बच्चे को जुकाम हो उसे दूसरे बच्चों से अलग रखना चाहिए। जुकाम के अतिरिक्त कई संक्रामक रोग ऐसे होते हैं जिनके आरम्भ में गले में खराश होती है और नाक बहने लगती है। जिस बच्चे में इनमें से एक भी चिह्न मौजूद हो उसे दूसरे बच्चों से दूर अलग एक कमरे में रखना चाहिए।

जुकाम के इलाज के लिए लेटकर आराम करना आवश्यक है और इससे जुकाम अच्छा भी जल्दी होता है।

यदि जुकाम के साथ खाँसी भी है तो वह भपारे से दूर की जा सकती है। इसके लिए बच्चे को खौलते हुए पानी की भाप में थोड़ी देर साँस लेने देना चाहिए। यदि दिन में कई बार और रात को सोने से फौरन पहले यह किया जाए तो बच्चे को बहुत जल्दी आराम हो सकता है।

डॉक्टर से पूछे बिना बच्चे की नाक में कोई दवा नहीं डालनी चाहिए।

यदि बच्चे की नाक बह रही हो तो नाक के नीचे थोड़ा सा कपूर या कोई सी क्रीम लगा देने से खाल में चिनचिनाहट नहीं होती।

बच्चों को खाँसते और छींकते समय मुँह और नाक पर रूमाल रखना सिखाना चाहिए तथा यह भी सिखाना चाहिए कि वे कभी किसी दूसरे का रूमाल इस्तेमाल न करें।

हलक और नाक की गिल्टियों का बढ़ जाना या रुग्ण हो जाना

यदि हलक और नाक की गिल्टियों में निरन्तर कोई खराबी हो तो इसके कारण ज़ुकाम, हलक में खराश, कान में दर्द, कान का बहना, या गिल्टियों का सूज जाना आदि विकार पैदा हो सकते हैं।

यदि हलक की गिल्टियाँ (Tonsils) केवल बड़ी हों और उनमें कोई रोग न हो तथा उनसे साँस लेने में या खाना निगलने में कोई कठिनाई न होती हो तो उनको कटवाना नहीं चाहिए। नाक की गिल्टियों (Adenoids) के बारे में भी यही नियम है। यदि इन गिल्टियों में बार-बार कोई रोग पैदा हो जाता हो या बहुत समय से कोई रोग हो तो इनको कटवा देना चाहिए।

हलक या नाक की गिल्टियाँ कटवाने से पहले डॉक्टर से परामर्श कर लेना चाहिए। बहुत से बच्चों को कभी इसकी ज़रूरत ही नहीं पड़ती।

गले में खराश

बहुत से बच्चों के गले में, विशेष रूप से छोटे बच्चों के गले में-खराश होती है पर वह इसकी कोई शिकायत नहीं करते। जब गले में खराश होती है तब गला सूजकर लाल हो जाता है। यदि हलक में सफेद धब्बे या चित्तियाँ पड़ गई हों तो समझना चाहिए कि रोग ज्यादा भीषण है। सम्भव है कि यह केवल हलक की गिल्टियाँ सूज जाने का चिह्न हो या किसी अधिक भीषण रोग का चिह्न हो जैसे रोहिणी (Diptheria) का या हलक में पूय-दोष (Septic) हो जाने का।

यदि बच्चे को बुखार हो या वह कै कर रहा हो या सहसा वह खाना बन्द कर दे तो उसके हलक का निरीक्षण करना चाहिए और फौरन डॉक्टर को बुलवा लेना चाहिए।

गिल्टियों की सूजन

ज़ुकाम के कारण या गले की खराश के कारण जो गिल्टियाँ सूज जाती हैं वे वास्तव में गर्दन की दोनों तरफ जबड़ों के ठीक नीचे तन्तु की छोटी-छोटी गुत्थियाँ होती हैं। जब मुँह, नाक, गले या कान में कोई रोग होता है तब ये गिल्टियाँ सूज जाती हैं। गिल्टी में ज्यों ही सूजन हो फौरन डॉक्टर को सूचना देनी चाहिए।

निमोनिया (Pneumonia)

निमोनिया बहुत भीषण रोग है। निमोनिया का रोग जुकाम, खसरा, काली खाँसी या अन्य रोगों के फलस्वरूप भी हो सकता है या सहसा बिना किसी पूर्व रोग के भी हो सकता है, जैसे कर्ण-नाली-सम्बन्धी निमोनिया।

निमोनिया के चिह्न हैं: ज्वर, खाँसी और साँस का तेज चलना तथा साँस लेने में कठिनाई होना।

यदि बच्चे को निमोनिया हो जाने का सन्देह हो तो फौरन डॉक्टर को बुलाना चाहिए। निमोनिया की प्रारम्भिक दशा में 'सल्फा' औषधियों का तथा पेनिसिलीन का सेवन सचमुच प्राण-रक्षा का काम करता है। परन्तु ये दवाएँ केवल डॉक्टर से पूछकर ही देनी चाहिएँ।

स्वरनाली प्रदाह (Laryngitis)—

यदि बच्चे की आवाज कई घण्टे तक भर्राई हुई रहे तो इसकी संभावना है कि उसे स्वरनाली प्रदाह हो गया है। यह दशा बहुधा रोहिणी (Diptheria) के पहले उत्पन्न हो जाती है। यह दशा गले की खराश के कारण या उसके बाद भी उत्पन्न हो सकती है। यदि बच्चे की आवाज बैठी हुई और भर्राई होने के अतिरिक्त उसे साँस लेने में तकलीफ होती है और साँस लेने में खर-खर का स्वर निकलता है और देखने में बच्चा रोगी लगता है तो जितनी जल्दी सम्भव हो डॉक्टर को बुलवा भेजना चाहिए। थकावट और कमजोरी बहुत खतरनाक चिह्न हैं।

यदि बच्चे को स्कूल में भरती होने के समय या बहुत हाल में डिप्थीरिया टाक्साइड दिया गया है तो उसे डिप्थीरिया होने की संभावना बहुत कम हो जाती है।

इन्फ्लुएन्ज़ा (Influenza or Grippe)

स्पर्श-संचारी इन्फ्लुएन्ज़ा बड़े लोगों की अपेक्षा छोटे बच्चों में बहुत भीषण रोग प्रमाणित हो सकता है।

इन्फ्लुएन्ज़ा के प्रारम्भिक चिह्न प्रायः वही होते हैं जो साधारण जुकाम के होते हैं। तेज बुखार, सारे शरीर में असहनीय-सा दर्द, तथा अत्यधिक कमजोरी से जुकाम और इन्फ्लुएन्ज़ा का अन्तर जाना जा सकता है। ये चिह्न इन्फ्लुएन्ज़ा के होते हैं।

इन्फ्लुएन्ज़ा के फलस्वरूप बहुधा निमोनिया जैसा भीषण रोग हो जाता है, इसलिए जिस बच्चे को इन्फ्लुएन्ज़ा हो उसे फौरन किसी डॉक्टर को दिखा

देना चाहिए।

आँख के रोग

यदि आँखें सूजी हुई या लाल हों और उनमें से पानी बहता हो तो इसके कई कारण हो सकते हैं—आँख में धूल या कंकड़ पड़ गया हो, आँख में कोई सूजन आ गई हो या कोई विकार हो, या बच्चे को 'हे फीवर' हो।

सूजन और बेचैनी को कम करने के लिए बिना किसी भय के आँखों को ठंडे या गरम पानी के फाहों से धोया जा सकता है।

यदि आँख में कोई ऐसी चीज पड़ गई है जो आँख से पानी बहने के साथ बाहर नहीं निकल जाती तो उसे डॉक्टर से निकलवा देना चाहिए। यदि आँख की कोमल झिल्लियों को कोई क्षति पहुँच गई है तो समस्या गम्भीर है।

यदि आँख में पीप निकलता है तो इसका अर्थ है कि आँख में कोई रोग है जो बहुत संक्रामक भी हो सकता है। यदि आँख के रोगों के प्रति लापरवाही बरती जाय तो आँख को स्थायी रूप से क्षति पहुँच सकती है या बच्चा अन्धा भी हो सकता है। यदि आँखों में पीड़ा रहती है और आँखों से पानी बहता रहता है तो किसी डॉक्टर से इलाज करवाना चाहिए।

यदि बच्चे की आँखें भेंगी हैं, या वे ठीक से किसी वस्तु पर केन्द्रित नहीं हो पातीं तो आँख की पेशियों के व्यायाम के लिए या इलाज के लिए डॉक्टर से परामर्श करना चाहिए। हाल ही में पता लगाया गया है कि यदि बचपन में ही आँख की पेशियों का आप्रेशन कर दिया जाय तो बहुत से रोगियों के ये विकार दूर किये जा सकते हैं।

यदि बच्चे की आँख पर बहुत जोर पड़ता है तो इसका प्रमाण इससे मिलता है कि उसकी पलकें लाल रहने लगती हैं, बच्चा जल्दी-जल्दी पलकें मारने लगता है और बहुत जल्दी चिड़चिड़ाने लगता है। आँखें कमजोर होने का पता माता-पिता को बहुत देर से चलता है। बहुत से बच्चे अपना काम ठीक से नहीं कर पाते और पढ़ाई में कमजोर होते हैं, इसका कारण कभी-कभी यह होता है कि उनकी आँख में कोई खराबी होती है। यदि बच्चे में यह कमजोरियाँ दिखाई दें तो फौरन सोचना चाहिए कि कहीं उसकी आँख तो कमजोर नहीं है।

आँख की बिलनी

पलक की कगर पर बिलनी या दाना निकलने का कारण यह होता है कि पलक के बाल की जड़ में कोई विकार पैदा हो जाता है जिसके कारण यह बिलनी

निकल आती है। यह रोग आँखों को मलने के कारण पैदा होता है और जब झिल्ली निकल आती है तब बच्चा अपनी आँखों को और भी ज्यादा मलने लगता है। यदि गरम पानी के फाहों से उसकी आँखें दिन में कई बार सेंक दी जायें तो बच्चा आँखें नहीं मलेगा। आँख मलने से इसका भय रहता है कि एक झिल्ली के संक्रमण से दूसरी झिल्ली पैदा न हो जाय।

आँख उठ आना

आँख उठ आने में सूजन के कारण आँख लाल रहने लगती है और आँख से कीचड़ निकलता रहता है। यह रोग बहुत संक्रामक होता है इसीलिए स्कूल के बच्चों में आसानी से फैल जाता है। गरम पानी से सेंकने से और बोरिक ऐसिड से आँखें धोने से आँखों की पीड़ा कम हो सकती है। जिस बच्चे की आँखें उठ आई हों उसके तौलिए और अँगौछे अलग रखने चाहिए ताकि परिवार का दूसरा व्यक्ति उनको इस्तेमाल न कर सके।

कान के रोग

जुकाम या किसी अन्य बीमारी के साथ ही कान में दर्द होने लगता है और कान बहने लगता है। बिना डॉक्टर से पूछे अपने मन से कान के दर्द या या कान बहने का कोई इलाज नहीं करना चाहिए।

यदि कान के रोगों के प्रति लापरवाही बरती जाय तो परिणामस्वरूप आदमी बहरा हो सकता है या उसे (Mastoiditis) कान की हड्डी की सूजन (मैनिनजाइटिस) या गरदनतोड़ बुखार (Meningitis) आदि रोग हो सकते हैं।

मैस्टाइडाइटिस का रोग पहले बहुत आम था पर अब जब से कान के रोगों के इलाज में नई-नई दवाओं का प्रयोग होने लगा है तब से यह रोग बहुत कम हो गया है।

त्वचा का रोग

बचपन में होने वाले त्वचा के कुछ आम रोग ये हैं :

पीले रंग की फुन्सियाँ—(Impetigo Contagiosa) यह बहुत ही संक्रामक त्वचा-रोग होता है जिसमें पहले छाले निकलते हैं, जो धीरे-धीरे पीले पड़ जाते हैं और फिर मवाद में परिणत हो जाते हैं और उन पर पपड़ी जम जाती है। ये छाले बहुधा हाथ और मुँह पर निकलते हैं तथा शरीर के एक भाग से दूसरे भाग में और एक बच्चे से दूसरे बच्चे में फैलते जाते हैं।

खुजली

शरीर की त्वचा पर और हाथों और पाँवों पर ऐसे दाने पड़ जाते हैं जिनमें बहुत खुजली होती है। यह रोग बहुत संक्रामक होता है और स्पर्श से एक आदमी से दूसरे आदमी को लग जाता है।

दाद

यह संक्रामक त्वचा-रोग होता है जो पहले एक लाल वृत्त के रूप में पैदा होता है, फिर यह बीच में सूखता जाता है और किनारों पर फैलता जाता है। इसमें खुजली भी हो सकती है। यह कभी-कभी सिर में हो जाता है जिसके कारण बाल गिरने लगते हैं।

फोड़े और दाने

त्वचा पर बहुधा इस प्रकार के फोड़े और दाने निकल आते हैं जो खुजाने के कारण फैल भी सकते हैं, इसीलिए अक्सर एक साथ कई फोड़े और दाने निकल आते हैं। त्वचा पर जहाँ कहीं भी इस प्रकार का विकार हो उसे साफ रखना चाहिए और उसे कुरेदना या फोड़ना नहीं चाहिए।

ऊपर बताये गए तमाम रोगों का इलाज डॉक्टर के परामर्श से करना चाहिए।

जो व्यक्ति त्वचा के किसी संक्रामक रोग से पीड़ित हो, उसके कपड़े, बिस्तर, तौलिए और दूसरी चीजें खौलते पानी में उबाल लेनी चाहिए या उनको अच्छी तरह धूप दिखा लेनी चाहिए, क्योंकि इन चीजों से दुबारा रोग लग जाने का भय रहता है।

केंचुए या पेट के कीड़े

बचपन में बच्चों के पेट में जो कीड़े पाए जाते हैं उनमें राउण्ड-वर्म और पिन-वर्म सबसे आम हैं। राउण्ड वर्म तो मामूली केंचुओं जितने बड़े होते हैं और आसानी से पहचाने जा सकते हैं। पिन-वर्म डोरे की तरह पतले और सफेद होते हैं और आध इंच से कुछ कम लम्बे होते हैं। फौरन किये हुए पाखाने में ये कीड़े हिलते-डुलते दिखाई दे सकते हैं। बिना डॉक्टर के कहे इन कीड़ों को दूर करने की कोई दवा रोगी को कभी नहीं देनी चाहिए। यदि दवा इतनी तेज है कि कीड़े उससे मर जायँ तो उससे बच्चे को सहज ही हानि पहुँच सकती है। इसीलिए यह दवा उचित मात्रा में और उचित परिस्थितियों में ही दी जानी चाहिए।

पिन-वर्म का इलाज करते समय सफाई पर जितना जोर दिया जाय कम है।

चूँकि दवा खाने के बाद भी बच्चे अपने शरीर को खुजाकर फिर यह रोग लगा सकते हैं, इसलिए उनके हाथों को साफ रखना तथा उनके नाखूनों को बढ़ने न देना बहुत आवश्यक है। रात के समय इन बच्चों को पाजामा और हाथ में दस्ताने पहनाकर सुलाना चाहिए। इन कीड़ों को दूसरे बच्चों के लग जाने से रोकने के लिए रोगी बच्चे के तमाम कपड़े और बिस्तर अलग रखने चाहिएँ तथा धुलवाने से पहले उनको खौलते पानी में उबाल लेना चाहिए। यदि बच्चे कमोड पर बैठकर पाखाना करते हों तो कमोड की सीट को कीटनाशक दवा से बार-बार धोकर साफ कर देना चाहिए।

बहुत सी माताओं को यह गलत धारणा हो जाती है कि जो बच्चा परेशान हुआ रहता है, या बार-बार अपनी नाक खुजलाता है, या रात को सोते समय दाँत किटकिटाता है, उसके पेट में केंचुए होते हैं। बच्चा ये तमाम हरकतें पेट में केंचुए होने के कारण नहीं करता है।

जिन प्रदेशों में हुक-वर्म का रोग बहुत आम हो, वहाँ यदि इस रोग के चिह्न किसी बच्चे में पाए जायें (रंग पीला पड़ जाना, बिगल बन्द हो जाना, पेट खराब रहना, और तलवों में खुजली होना आदि) तो फौरन उनके पाखाने का निरीक्षण कराना चाहिए। यदि पाखाने में ये कीड़े या इनके अंडे पाए जायें तो फौरन किसी डॉक्टर से इलाज कराना चाहिए।

जूँ पड़ जाना

बच्चों के बालों में और सिर में अक्सर जूँ पड़ जाती हैं। इन कीड़ों के काटने से खुजली होने लगती है। इसके कारण जख्म भी पड़ सकते हैं और गरदन के पीछे की गिल्टियों में सूजन पैदा हो सकती है।

जूँ को दूर करने के लिए बाल में ९० प्रतिशत खड़िया के पाउडर में १० प्रतिशत डी० डी० टी० का पाउडर मिलाकर डालना चाहिए, परन्तु इसका ध्यान रखना चाहिए कि यह पाउडर आँख में न गिरने पाए। इसलिए पाउडर छिड़कने समय आँखों को जाली से ढक देना चाहिए। इसके बाद पूरे सिर पर कोई साफ रूमाल या तौलिया लपेट देना चाहिए। कई घंटों के बाद, बल्कि अच्छा तो यह है कि सोते समय, रूमाल या तौलिए को खोल लेना चाहिए। दूसरे दिन प्रातःकाल बारीक कंघी से बालों को साफ करके लीखें और मरे हुए जूँ निकाल देना चाहिए। पाउडर छिड़कने के सातवें दिन बालों को साबुन और गरम पानी से धोकर सुखा देना चाहिए और इसके बाद फिर पहले की तरह डी० डी० टी० पाउडर छिड़कना चाहिए। [illegible]

दिन फिर बालों को बेसन से, या रीठे से, या शैम्पू से धोकर साफ कर लेना चाहिए। यद्यपि डी गर पाउडर छिड़कने के बाद सब जूँ दूर हो जाते हैं परन्तु संभव है कि इस क्रिया को एक बार और करने की आवश्यकता पड़े। एक आदमी के सिर के जूँ दूसरे के सिर में चढ़ सकते हैं इसलिए सबके बालों को गौर से देखना चाहिए और जिसके बालों में जूँ या लीखें हों उसका इलाज करना चाहिए। ऐसे लोगों के इलाज के बाद कंघों को तथा बालों के ब्रुश को साबुन से घिसकर और खौलते पानी में उबालकर साफ कर लेना चाहिए। जिस बच्चे के सिर में जूँ हों उसकी टोपी पर भी डी० टी० टी० का ५ प्रतिशत घोल छिड़ककर उसे साफ कर देना चाहिए।

कै करना

कै करने के कई कारण हो सकते हैं—बदहजमी, थकावट या अत्यधिक उत्तेजना। यह शरीर के किसी व्यापक रोग या विकार का भी सूचक हो सकता है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि खाने की नली में किसी प्रकार की सूजन या कोई अवरोध हो। कभी-कभी यह भी होता है कि यदि बच्चा कोई ऐसी चीज खा ले जो उसे अच्छी न लगती हो तो उसे कै हो सकती है। यह किसी छूत की बीमारी का सूचक चिह्न भी हो सकता है। यदि बच्चे को एक बार से ज्यादा कै हो तो उसे बिस्तर पर लिटा देना चाहिए। यदि वह देखने में रोगी मालूम होता हो या उसे बुखार हो और कै बन्द न हो तो फौरन डॉक्टर को बुलवाना चाहिए, क्योंकि यदि शरीर के द्रव्य पदार्थ बहुत ज्यादा कै करने के कारण, विशेष रूप से उस दशा में जब साथ ही दस्त भी आ रहे हों, बाहर निकलते रहे तो शीघ्र ही बच्चे की हालत चिन्ताजनक हो जायगी।

यदि बच्चे ने बहुत थकावट की हालत में या रोते समय, क्रोध, भय या अत्यधिक उत्तेजना की दशा में बहुत ज्यादा खा लिया है तो उसका खाना पचता नहीं और वह न हजम होने वाला भोजन कै के द्वारा शरीर के बाहर निकल जाता है। इस कारण कै होना कोई गम्भीर बात नहीं है क्योंकि इस दशा में एक बार पेट साफ हो जाने पर तकलीफ दूर हो जाती है।

कभी-कभी कै करने की बच्चे को आदत-सी हो जाती है। यह कभी कभी काली खाँसी आदि में होता है या यह बात अकारण ही पैदा हो सकती है। यदि बच्चे को कै करने की आदत-सी पड़ गई है तो उसकी इस आदत को छुड़ाना बहुत कठिन काम होता है, इसके लिए किसी डॉक्टर की सहायता लेनी चाहिए।

कब्ज

यदि बच्चे को रोज खुलकर पाखाना आता है और किसी एक दिन उसे पाखाना न हो या बहुत थोड़ा सा सख्त पाखाना हो, तो उसकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यदि बच्चा देखने में बीमार मालूम हो तो ध्यान और दें। सम्भव है कि दूसरे दिन से उसे फिर खुलकर पाखाना आने लगे।

यदि बच्चे के पेट में दर्द है, उसे मतली होती है और वह कै करता है तथा इसके साथ-ही-साथ उसे कब्ज़ भी है तो ये किसी गम्भीर रोग के चिह्न हो सकते हैं। इस दशा में उसे हल्का-सा एनीमा दिया जा सकता है पर उसे जुलाब की कोई दवा हर्गिज नहीं देनी चाहिए। यदि एनीमा से बच्चे को फौरन आराम न हो तो डॉक्टर को बुलवा लेना चाहिए।

जिन बच्चों को अच्छा भोजन मिलता है, जो काफी मात्रा में पानी पीते हैं और जिनकी स्वास्थ्य-सम्बन्धी आदतें अच्छी और नियमित होती हैं उनको कभी कब्ज़ नहीं होता। अपने बच्चों को इसकी शिक्षा दीजिए कि यदि उनको एक दिन से ज्यादा तक पाखाना न हो तो वे आपको इस बात की सूचना दें। यदि बच्चे को अक्सर कब्ज़ रहता है तो अपने डॉक्टर की सलाह लीजिए।

छोटी माता या चिकेन पाक्स (Chicken Pox)

चिकेनपाक्स कोई भीषण रोग नहीं है और इसमें कभी कोई जटिलता उत्पन्न नहीं होती। इस रोग का चेचक से, जिसे अंग्रेजी में स्माल-पाक्स (Small Pox) कहते हैं, कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि किसी को यह रोग है और कोई दूसरा व्यक्ति उसके शरीर के अथवा नाक या मुँह के अन्दर के घावों से निकलने वाले पदार्थ के सम्पर्क में आ जाता है तो उसे भी यह रोग हो सकता है। सम्पर्क और रोग के प्रकट होने के बीच में प्रायः दो हफ्ते का समय बीत जाता है।

इसका पहला चिह्न बुखार हो सकता है जिसके २४ या ३६ घण्टे के बाद शरीर पर दाने निकलने लगते हैं। परन्तु कभी-कभी तो दाने निकलने से पहले इस रोग का कोई चिह्न दिखाई ही नहीं देता। ये दाने पहले छोटे-छोटे लाल धब्बों की शक्ल के होते हैं, फिर ये बढ़कर छोटे-छोटे छाले बन जाते हैं जिनके अन्दर कुछ निर्मल द्रव-पदार्थ भरा होता है पर बाद में पीप पड़ जाता है। इन धब्बों के केवल दो या तीन ही दाने एक साथ निकलते हैं, परन्तु बहुत से दाने तीन-चार दिन तक धीरे-धीरे निकलते रहते हैं। जब ये फूटते हैं तो उन पर पपड़ी जम जाती है। इन दानों में खुजली होती है पर खुजाने का परिणाम यह होता है कि ये

दानों के दाग स्थायी रूप से पड जाते हैं, इसलिए बच्चों को इन दानों को खुजाने न देना चाहिए। यदि खाने का सोडा पानी में घोलकर इन दानों पर लगा दिया जाय तो खुजली कम हो जायगी। यदि रात को सोते समय बच्चों के हाथ थैलियों में बाँध दिए जायँ तो वे सोते में इन दानों को नहीं खुजायेंगे।

रोहिणी या डिप्थीरिया (Diptheria)

जब डिप्थीरिया के किसी रोगी की या इस रोग के वाहक किसी व्यक्ति की नाक से और हलक से निकलने वाले पदार्थों के सम्पर्क में कोई निरोगी मनुष्य आ जाता है तो उसे भी यह रोग लग जाता है। कभी-कभी रोगी व्यक्ति के हलक से ये कीटाणु दूध में मिल जाते हैं और जो भी इस दूध को पीता है उसको यह रोग लग सकता है। रोग से सम्पर्क में आने के बाद रोग के प्रकट होने में २ से ५ दिन तक का समय लगता है। इस रोग के पहले चिह्न होते हैं गले में खराश, आवाज में भर्राहट, साँस लेने में कठिनाई और बुखार। हलक में एक भूरे रंग की झिल्ली भी पैदा हो जाती है। बुखार तो ज्यादा तेज नहीं होता परन्तु बुखार के अनुमान से बच्चा अधिक बीमार मालूम होता है। सिर में दर्द और कै की भी सम्भावना होती है।

यदि डिप्थीरिया का सन्देह हो तो फौरन डॉक्टर को बुला लेना चाहिए क्योंकि जितनी जल्दी एन्टीटाक्सीन (विषनाशक औषधि) दे दी जायगी उतना ही ज्यादा उसका असर होगा। डिप्थीरिया बहुत भयंकर रोग है और यदि इलाज में देरी की जाय तो बहुधा यह रोग बहुत भीषण रूप धारण कर लेता है।

यदि बचपन में टाक्साइड के इंजेक्शन लगवा दिए जायँ तो डिप्थीरिया से सुरक्षा हो जाती है। जिन बच्चों के बचपन में टाक्साइड का इंजेक्शन लगवा दिया गया हो उनको स्कूल में भरती कराते समय फिर एक बार इंजेक्शन लगवा देना चाहिए।

बहुत कम लोगों को एक से अधिक बार डिप्थीरिया होता है।

खसरा

यह रोग बड़े बच्चों के लिए उतना भयंकर नहीं होता जितना छोटे बच्चों के लिए। खसरा बहुत संक्रामक रोग है। रोगी बच्चे की नाक या उसके मुँह से निकलने वाले पदार्थों के द्वारा इस रोग के कीडे निरोगी बालक तक पहुँच जाते हैं। बहुधा रोग से सम्पर्क में आने तथा रोग के प्रकट होने के बीच में १० से १४ दिन तक का समय बीत जाता है। परन्तु कभी-कभी यह रोग ७ दिन के अन्दर ही प्रकट

हो जाता है और कभी २१ दिन तक लग जाते हैं। इसके प्रथम चिह्न हैं बुखार, खाँसी, आँखों से पानी बहना, नाक बहना, और हर समय थकावट का अनुभव होना। इसके दाने लाल रंग के होते हैं तथा अनियमित क्रम से निकलते हैं और पित्ती की तरह के होते हैं। प्रथम चिह्नों के दिखाई देने के ३ या ४ दिन बाद ये दाने निकलना आरम्भ होते हैं। ये दाने पहले गरदन में और कान के चारों तरफ निकलते हैं, फिर सारे शरीर पर और मुँह पर। छोटे-छोटे नीले रंग के दाने (जिनको Koplik Spot कहते हैं) इन दानों के निकलने से पहले ही होंठों और गालों के अन्दर निकल आते हैं। रोग के प्रथम चिह्नों के दिखाई देने के समय से लेकर दानों के निकलने के एक सप्ताह बाद तक यह रोग एक रोगी से दूसरे स्वस्थ आदमी को लग सकता है।

कुछ बच्चों को खसरा के बाद कान में तकलीफ पैदा हो जाती है या निमोनिया हो जाता है। यदि डॉक्टर के आदेशों का ध्यानपूर्वक पालन किया जाए और बच्चे को काफी समय तक के लिए बिस्तर पर लिटाए रखा जाए तो ये जटिलताएँ रोकी जा सकती हैं।

यदि बच्चे की माँ को मालूम हो जाय कि उसे खसरा है तो उसे फौरन बच्चे को डॉक्टर के पास ले जाना चाहिए।

एक बार खसरा निकलने के बाद बच्चा दूसरी बार इस रोग के कीटाणुओं का सफलतापूर्वक मुकाबला कर लेता है पर कुछ लोगों को एक से अधिक बार भी खसरा निकलता है।

जर्मन मीज़िल्स

जर्मन मीज़िल्स या 'तीन दिन का' खसरा भयंकर रोग नहीं होता और न ही इसके परिणामस्वरूप कोई दूसरे रोग ही उत्पन्न होते हैं परन्तु यह रोग बहुत संक्रामक होता है।

इसके कारण मुँह पर जो चित्तियाँ पड़ जाती हैं वे या तो खसरा के [illegible] प्रकार की होती हैं या अरुण ज्वर के समान होती हैं (अन्तर केवल इतना [illegible] है कि ये हल्के लाल रंग की होती हैं)। ये चित्तियाँ रोग लगने के [illegible] के अन्दर प्रकट होने लगती हैं और यही रोग का प्रथम [illegible] होता है। इसके फलस्वरूप खोपड़ी की तली वाली ग्रन्थियाँ [illegible]

इस रोग का कोई विशेष इलाज नहीं है परन्तु रोग का निश्चित [illegible] पता लगाने के लिए किसी डॉक्टर को बुलाकर दिखा लेना चाहिए।

कर्णमूल या मंप्स (Mumps)

कर्णमूल कोई भयंकर रोग नहीं है, परन्तु इसके परिणामस्वरूप भयंकर रोग पैदा हो सकते हैं पर सौभाग्यवश ऐसा कभी-कभी ही होता है।

कर्णमूल के चिह्न हैं—बुखार तथा कान के ठीक नीचे और सामने वाली गिल्टियों में (एक तरफ या दोनों तरफ के कानों के पास) सूजन और दर्द; खाना चबाने और निगलने में भी पीड़ा हो सकती है।

जिस बच्चे को कर्णमूल हो जाने का संदेह हो उसे किसी डॉक्टर को दिखा देना चाहिए। डॉक्टर ही बता सकता है कि उसे कर्णमूल है या केवल गिल्टियाँ सूज आई हैं क्योंकि इन दोनों रोगों का इलाज भिन्न है।

काली खाँसी

यह रोग बहुत छोटे बच्चों के लिए बहुत भयंकर होता है पर बड़े हो जाने पर यह रोग इतना भयंकर नहीं रह जाता। जिस व्यक्ति को यह रोग होता है उसको हलक से निकलने वाले पदार्थों के द्वारा यह रोग दूसरों को लग जाता है। काली खाँसी बहुत धीरे-धीरे शुरू होती है और समय के साथ धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। शुरू-शुरू में तो इसमें वैसी ही खाँसी आती है जैसी साधारण जुकाम के साथ आती है। दो हफ्ते तक इस प्रकार की खाँसी जारी रहती है, उसके बाद काली खाँसी आरम्भ होती है। चूँकि इस दशा में रोग का पता लगाना कठिन होता है इसलिए यह पता लगने से पहले ही कि बच्चे को काली खाँसी है वह यह रोग दूसरे बच्चों को लगा देता है। यदि पास-पड़ोस के बच्चों को काली खाँसी है तो बच्चे को ज़रा भी खाँसी आरम्भ होते ही उसकी माता को सचेत हो जाना चाहिए। यदि इस सम्बन्ध में बहुत अधिक ध्यान न रखा जाय तो इसकी संभावना रहती है कि स्कूल जाने वाला बच्चा यह रोग अपने साथ लाकर छोटे बच्चों के लगा दे जिनके लिए यह रोग बहुत भयंकर होता है।

यदि माँ को किसी कारण भी यह संदेह है कि उसके बच्चे को काली खाँसी है तो डॉक्टर को बुलाकर बच्चे को दिखा देना चाहिए।

अरुण ज्वर (Scarlet fever)

अरुण ज्वर हल्का भी हो सकता है और बहुत तेज भी। चाहे तेज हो या हल्का यह ज्वर एक बच्चे से दूसरे बच्चे को लग सकता है। रोगी या वाहक व्यक्ति की नाक या हलक से निकलने वाले पदार्थों के द्वारा यह रोग एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को लग जाता है। यह रोग ऐसे दूध के द्वारा भी फैलता है जिसमें

इस रोग के कीटाणु किसी रोगी व्यक्ति या रोग-वाहक व्यक्ति से पहुँच गए हों।

रोगी से सम्पर्क में आने के २ से ७ दिन बाद तक इस रोग के चिह्न दिखाई देना आरंभ होते हैं। यह रोग सहसा आरम्भ हो जाता है। शुरू-शुरू में मतली होती है, कै होती है, बुखार आता है और हलक में जलन पैदा हो जाती है। इसके दूसरे या तीसरे दिन चकत्ते पड़ना आरम्भ होते हैं। चकत्ते सबसे पहले गर्दन और सीने पर निकलते हैं और धीरे-धीरे सारे शरीर में फैल जाते हैं, केवल मुँह और सिर पर इनका प्रकोप नहीं होता। ये चकत्ते लाल पृष्ठ-भूमि पर सुई की नोक के बराबर लाल दानों की शक्ल के होते हैं।

यदि संदेह हो कि बच्चे को अरुण ज्वर है तो फौरन डॉक्टर को बुलवाना चाहिए। डॉक्टर ही इस रोग का इलाज इस प्रकार कर सकता है कि रोग भयंकर रूप धारण न करने पाए। वह इसका भी उपाय करेगा कि रोग परिवार के दूसरे लोगों को तथा पास-पड़ोस के लोगों को न लगने पाए। कुछ रोगियों को 'सल्फा' औषधियाँ, कनवैली सेंट सेरम, तथा स्कारलेट फीवर एन्टीटाक्सीन आदि औषधियाँ दी जाती हैं।

सुषुम्ना प्रदाह अर्थात् पोलियो (Poliomyelitis)

जिन बच्चों को पोलियो हो जाता है उनमें से केवल १० से ५० प्रतिशत तक बच्चे रोग की चरम अवस्था को पहुँच पाते हैं। भाग्यवश ऐसे बच्चों की संख्या बहुत कम होती है जो बहुत बुरी तरह या हमेशा के लिए अपाहिज हो जाते हों, और रोग का आक्रमण होने के एक साल बाद तक बच्चे का इलाज हो सकता है। बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जिनको यह रोग एक से अधिक बार होता है।

इस रोग के प्रथम चिह्नों में से कुछ हैं: हल्का-हल्का बुखार, सिर में दर्द, बार-बार कै होना, नींद बहुत आना, तथा चिड़चिड़ापन। पीठ में या गरदन के पिछले भाग में दर्द या ऐंठन इस रोग का विशेष चिह्न है। यदि बच्चा सख्त बीमार होता है तो वह इन चिह्नों के प्रकट होने के कुछ घंटों के अन्दर ही या कुछ दिनों के बाद मर जाता है। [illegible] बिना किन्हीं पूर्व-चिह्नों के भी आक्रमण कर सकता है।

यदि ये चिह्न मौजूद हों और पोलियो का सन्देह हो तो फौरन डॉक्टर को बुलवाना चाहिए। इस रोग का कोई निश्चित इलाज नहीं है, पर शुरू-शुरू में बच्चे की पूरी देखभाल तथा उसकी देख-शुश्रूषा का बहुत ध्यान रखना चाहिए।

गरदन तोड बुखार (Meningitis)

गरदन तोड़ बुखार बहुत भयंकर संक्रामक रोग है। यह रोग कई प्रकार के कीटाणुओं से पैदा हो सकता है पर जिस कीटाणु के द्वारा रोग की मेनिनजाइटिस होती है उसे मेनिन्जोकोकस कहते हैं। इस रोग के प्रथम चिह्न हैं : सहसा बुखार आ जाना, सिर में दर्द, कै, और गरदन का अकड़ जाना। कै बहुत जोर से होती है और बड़े वेग से बाहर निकलकर दूर जाकर गिरती है। गले में खराश और सूजन भी हो सकती है।

यह बहुत जरूरी है कि इन चिह्नों के दिखाई देते ही डॉक्टर को फौरन बुलवा लिया जाय क्योंकि जितनी जल्दी इलाज आरम्भ कर दिया जायगा उतनी ही रोग के अच्छे होने की सम्भावना होगी। हर प्रकार के गरदन तोड बुखार का इलाज नहीं किया जा सकता है, परन्तु इस रोग के इलाज के जो नये तरीके ढूँढे गए हैं उनके कारण अब यह रोग उतना भयानक नहीं रह गया है जितना एक जमाने में था।

योनि-प्रदाह (Vaginitis)

कभी-कभी बहुत छोटी-छोटी लड़कियों की योनि में से एक विशेष प्रकार का द्रव्य पदार्थ निकलने लगता है। यह रोग किसी रोग के कीटाणुओं की उपस्थिति के कारण या सफाई के अभाव के कारण हो सकता है। यह रोग 'गोनोकोकस' नामक कीटाणु के द्वारा भी पैदा हो सकता है। यदि ऐसा है तो रोग गम्भीर है और संक्रामक भी। जिस लडकी की योनि में से इस प्रकार का द्रव्य निकलता हो उसे डॉक्टर को दिखाना चाहिए। विशेष रूप से डॉक्टर को इस द्रव्य-पदार्थ का निरीक्षण करना चाहिए कि यह गोनोकोकस कीटाणु के कारण है या नहीं। यदि इस रोग का जल्दी ही पूरी तरह इलाज करा लिया जाय तो इलाज के नये तरीकों की सहायता से इस रोग को समूल नष्ट किया जा सकता है।

आमवातिक ज्वर (Pneumatic Fever)

आमवातिक ज्वर एक ऐसा रोग है जो बचपन में आरम्भ होता है। यह रोग स्कूल जाने वाले बच्चों में बहुत पाया जाता है और एक बार अच्छा हो जाने के बाद बार-बार फिर हो जाता है। इसके कारण का पता अभी तक नहीं चला है पर इतना मालूम हुआ है कि स्ट्रेप्टोकोकस नामक कीटाणु के शरीर में उपस्थित होने पर बार-बार इस ज्वर का आक्रमण होता है।

बचपन की दूसरी बीमारियों की ही तरह आमवातिक ज्वर के भी प्रथम चिह्न होते हैं—भूख न लगना, वजन न बढ़ना, नाड़ी की गति तेज हो जाना,

जोड़ों तथा पेशियों में दर्द (अस्पष्ट-सा और क्षणिक)। यदि पहले शरीर के किसी एक जोड़ में दर्द और सूजन हो और बाद में दूसरे जोड़ों में, और साथ ही तेज बुखार भी हो तो निश्चय इस ज्वर की सम्भावना होती है।

कम्पवात (Chorea) आमवातिक ज्वर का ही एक रूप है। भोजन करते समय, कपड़े पहनते समय, अथवा कोई चीज उठाते समय जब बच्चे को मुँह, हाथ और पाँव में विचित्र प्रकार के झटके-से लगते हैं और कम्पन होता है और बच्चा अकारण ही रोने लगता है तो इसकी संभावना होती है कि बच्चे को कम्पवात रोग हो। यदि बच्चे में आमवातिक ज्वर के चिह्न दिखाई दें तो फौरन डाक्टर से परामर्श करना चाहिए।

क्षय रोग अर्थात् टी० बी० (Tuberculosis)

बचपन में क्षय रोग शरीर के किसी भी अंग में हो सकता है। फेफड़ों पर इसका आघात हो सकता है, पर बहुधा यह गिल्टियों पर ही आक्रमण करता है—विशेष रूप से सीने और आमाशय के अन्दर की गिल्टियों पर—और कभी-कभी हड्डियों और उनके जोड़ों पर भी इसका आघात होता है। क्षय रोग के कारण फेफड़ों की झिल्ली में (प्लूरिसी), दिमाग की झिल्ली में (मेनिनजाइटिस), पेट की झिल्ली में (पेरिटोनाइटिस), अथवा आँख की झिल्ली में (कंजंक्टीवाइटिस) सूजन भी हो सकती है तथा त्वचा भी सूज सकती है।

क्षय रोग बहुधा इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के सम्पर्क में आने, क्षय-रोग-ग्रस्त गायों का दूध पीने, या इस दूध की बनी हुई चीजें खाने से ही होता है।

हर प्रकार के क्षय रोग में ये चिह्न अवश्य पाए जाते हैं: वजन कम होना या वजन न बढ़ना, अकारण ही ज्वर रहना, गिल्टियों में सूजन रहना, चेहरा पीला पड़ जाना और थकावट का अनुभव होना। बड़े लोगों की तरह बच्चों को इस रोग में खाँसी नहीं आती और आती भी है तो किसी-किसी रोगी को।

यदि घर में किसी को क्षय रोग है तो वहाँ बच्चे को न रखना चाहिए। जितने बच्चे भी उस व्यक्ति के सम्पर्क में आए हों उनका डाक्टरी निरीक्षण कराना चाहिए और उनका ट्यूबरक्युलीन परीक्षण करा लेना चाहिए। इस परीक्षण के बाद जिन बच्चों में पाज़िटिव प्रतिक्रिया हो उनके सीने का एक्स-रे लेना चाहिए, और जिनमें नेगेटिव प्रतिक्रिया हो उनका थोड़े-थोड़े समय के बाद फिर परीक्षण करते रहना चाहिए।

जब बहुत छोटे बच्चों को क्षय रोग हो जाता है तो उनका इलाज बड़ी

आसानी से हो सकता है, बशर्ते रोग का पता जल्दी लग जाय। इसलिए यदि किसी बच्चे में क्षय रोग के ऊपर बताये गए कोई चिह्न पाए जायँ या वह किसी ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आया हो जिसे क्षय रोग है या क्षय रोग का सन्देह है तो फौरन बच्चे का अच्छी तरह डाक्टरी निरीक्षण करा लेना चाहिए, एक्स-रे लेना चाहिए और ट्यूबरकुलीन परीक्षण करवाना चाहिए।

पाण्डुरोग अर्थात् खून की कमी (Anemia)

पाण्डुरोग उस दशा को कहते हैं जब बच्चे के खून में लाल रंग के कण साधारण दशा की अपेक्षा कम होते हैं। यदि बच्चा लगातार पीला पड़ता जाता है तो डाक्टर से परामर्श करना चाहिए। डाक्टर खून का परीक्षण करके बता देगा कि बच्चे को पाण्डुरोग है या नहीं।

बच्चे को पाण्डुरोग होने के कई कारण हो सकते हैं—

१. वह कभी बहुत सख्त बीमार पड़ा हो जिसके कारण उसका खून कम हो गया हो। यदि ऐसा है तो रोग के बाद जब बच्चा धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगेगा तब इस अभाव की पूर्ति होती जायगी और यह रोग दूर हो जायगा।

२. उसके कोई ऐसा घाव लगा हो जिसमें से बहुत-सा खून बह गया हो। यदि बहुत ज्यादा खून बह गया है तो सम्भव है उसके शरीर में किसी दूसरे व्यक्ति का खून संचारित कराना पड़े। यदि बहुत ज्यादा खून नहीं बहा है तो बच्चा धीरे-धीरे अपने-आप इस रोग से मुक्त हो जायगा।

दमा तथा पित्ती उछलना

जब बच्चों पर ऐसी चीजों का प्रभाव पड़ता है जिनको वह सहन नहीं कर सकते तब उनमें दमा, छोटी माता आदि रोगों के चिह्न दिखाई देने लगते हैं।

दमा में बच्चे को साँस लेने में इतनी कठिनाई होती है कि बच्चे की साँस में खर-खर का स्वर पैदा हो जाता है। दमा का आक्रमण हल्का भी हो सकता है, पर कभी-कभी तो यह इतना तेज हो जाता है कि बच्चे के लिए लेटे रहना असम्भव हो जाता है और उसे कुरसी पर टेक लगाकर बैठे रहना पड़ता है। दमा के आक्रमण के साथ प्रायः खाँसी का भी दौरा पड़ता है, परन्तु यदि रोग के अन्य कीटाणु शरीर में नहीं हैं तो बुखार नहीं आता। दमा का कारण यह हो सकता है कि बच्चे ने कोई ऐसी चीज खा ली हो जो उसे पसन्द नहीं है, जैसे अंडा, या किसी प्रकार की गर्द या दूसरी बारीक चीजें, जैसे घर की धूल, छोटे-छोटे पर, या जानवरों के

तेल, श्वास के साथ उसके शरीर में चले गए हों। कभी-कभी दमा जुकाम और दूसरे रोगों के फलस्वरूप भी हो जाता है।

पित्ती उछलने पर शरीर में खुजली होती है और सारे शरीर पर लाल चट्टे उभर आते हैं—बिलकुल वैसे ही जैसे मच्छर के काटने से उभर आते हैं। यह पित्तियाँ सहसा उभर आती हैं और सहसा गायब हो जाती हैं और बहुधा इसका कारण यह होता है कि बच्चा कोई अरुचिकर चीज खा लेता है।

यदि बच्चे में स्थायी रूप से यह बात है कि कुछ खाद्यों का तथा पराग आदि का उस पर बहुत जल्दी प्रभाव पड़ जाता है तो उसे किसी डाक्टर को दिखा देना चाहिए। डाक्टर विभिन्न परीक्षणों के द्वारा, विभिन्न प्रकार के भोजन आजमा कर, तथा रहने के स्थान में परिवर्तन करके यह पता लगाने का प्रयत्न करेगा कि बच्चे पर किन चीजों का बहुत जल्दी प्रभाव पड़ता है। हर बच्चे में इस रोग का कारण अलग होता है और इलाज भी भिन्न ही करना पड़ता है। कुछ बच्चों में तो यह पता लगाने में कठिनाई नहीं होती कि उनको किस चीज से अरुचि है और उस चीज को दूर कर देने से रोग पूरी तरह दूर हो जाता है। कुछ बच्चों पर इतनी अधिक चीजों का अरुचिकर प्रभाव होता है कि उन तमाम चीजों का पता लगाना कठिन हो जाता है। यदि बार-बार बच्चे पर इस रोग का भीषण आक्रमण होता हो तो यत्न करके उसका कारण मालूम करना चाहिए और उसे दूर करना चाहिए। यदि इसके लिए यह आवश्यक हो कि बच्चे को खाने की कोई विशेष वस्तु बहुत समय तक न देनी पड़े तो उसकी जगह कोई दूसरी वस्तु दी जा सकती है। किसी बच्चे को आवश्यक भोजन पदार्थों से वंचित नहीं रखना चाहिए। यह बात याद रखना चाहिए कि इस रोग के कारण मृत्यु शायद ही कभी होती है। और बहुत से बच्चों में तो यह रोग उनके बड़े होने के साथ अपने-आप दूर हो जाता है।

शरीर के विभिन्न अंगों का फड़कना तथा अन्य आदतें

चेहरे का फड़कना, जल्दी-जल्दी पलक मारना, टेढ़े-मेढ़े मुँह बनाना तथा अन्य बेतुकी हरकतें बहुत से बच्चों में पाई जाती हैं। ये आदतें विभिन्नता की अपेक्षा बहुधा किसी शारीरिक वेदना की सूचक होती हैं. परन्तु बहुधा इनका कारण यह होता है कि बच्चे के दिल या दिमाग पर कोई ऐसा दबाव या बोझ होता है जिसका वह निवारण नहीं कर पाता और जिसका न उसको न उसके माता-पिता को पता होता है। तुतलाना और हकलाना भी इसी प्रकार की आदतें हैं। इन आदतों

में इस प्रकार के चिह्न दिखाई दें उसे किसी डाक्टर के पास ले जाना चाहिए। यदि इसके मूल कारण का पता लगाना है तो यह आवश्यक है कि डाक्टर को परिवार के जीवन से तथा बच्चे की दिनचर्या से परिचित करा दिया जाय।

गुर्दों की बीमारी

बच्चों में गुर्दों की बीमारी कई रूप में पैदा हो सकती है। इनमें से दो रूप प्रमुख हैं—एक है गुर्दों में भीषण सूजन (Nephritis) और दूसरा है पेडू का शोथ (Pyelitis)।

गले की खराश, अरुण ज्वर तथा किसी अन्य रोग के फलस्वरूप गुर्दों में भीषण सूजन का रोग भी हो सकता है (Nephritis)। कभी-कभी बच्चों में बिना किसी पूर्व रोग के भी गुर्दों में सूजन हो सकती है। इस रोग में पेशाब कम आता है और उसका रंग गहरा होता है, कभी-कभी पेशाब का रंग हल्का लाल या बिलकुल खून के रंग का होता है। सम्भव है कि इस रोग से ग्रस्त होने के बाद भी बच्चा बहुत बीमार न मालूम हो, परन्तु चूँकि यह रोग भीषण रूप धारण कर सकता है, इसलिए यदि बच्चे में इस रोग के चिह्न पाए जायँ तो डाक्टर को बुलवाना चाहिए।

पेडू का शोथ (Pyelitis) गुर्दों की वह बीमारी है जिसमें पेशाब में पीप आने लगता है। इस रोग के चिह्न बहुधा अस्पष्ट होते हैं। बच्चे को बुखार आता है और उसके सिर में दर्द होता है पर वह किसी पीड़ा की शिकायत नहीं करता, यद्यपि वह देखने में ही रोगी प्रतीत होता है, या सम्भव है उसको पेशाब बहुत जल्दी-जल्दी आता हो और पेशाब करते समय पीड़ा होती हो। यह रोग लड़कियों में ज्यादा पाया जाता है।

मधुमेह (Diabetes mellitus)

मधुमेह का रोग बच्चों और बड़े लोगों दोनों को ही हो सकता है। इस रोग का कारण यह होता है कि भोजन का शकर और माँडी का अंश शरीर में पूरी तरह इस्तेमाल नहीं होता और यह शकर पेशाब के साथ बाहर निकल जाती है। शुरू में यह रोग बच्चों में साघातिक होता था। अब इनसुलिन (insulin) के प्रयोग के द्वारा तथा रोगी को उचित भोजन देकर रोग को इस हद तक वश में किया जा सकता है कि बच्चा साधारण और स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सके।

यदि बच्चा जरूरत से ज्यादा पानी पीने लगे, उसे पेशाब बहुत ज्यादा आने लगे, उसकी भूख बहुत बढ़ जाय पर वजन कम होता जाय तो फौरन डाक्टर

को बुलाना चाहिए क्योंकि सम्भव है कि यह सब चिह्न मधुमेह के हों। इसके अतिरिक्त बच्चे के पेशाब का भी परीक्षण करा लेना चाहिए।

अपेंडीसाइटिस (Appendicitis)

यदि इस रोग का शुरू में ही पता चल जाय और जल्दी ही आपरेशन कर दिया जाय तो यह रोग निश्चित रूप से ठीक हो सकता है। केवल इसी दशा में इस रोग का जल्दी पता नहीं लगता और आपरेशन करने में देर होती है तभी यह रोग भीषण रूप धारण करता है।

इस रोग के प्रथम चिह्न हैं: मतली होना, बुखार (बुखार बहुत हल्का भी हो सकता है), पेट में दर्द रहना और कभी-कभी कै होना। दर्द आमाशय के घेरे में हो सकता है या दाहिनी तरफ (बाईं तरफ दर्द बहुत कम होता है)। यदि किसी बच्चे में ये चिह्न पाए जाते हैं तो उसे फौरन डाक्टर को दिखाना चाहिए। यदि इनमें से बाकी चिह्न मौजूद न भी हों, केवल बच्चे के पेट में लगातार दर्द रहता हो जो बड़ी देर तक जारी रहता हो तो डाक्टर को बुलाकर दिखा देना चाहिए। बच्चे को पेट के दर्द के लिए जुलाब की दवा कभी नहीं देनी चाहिए।

दुर्घटनाएँ

हर प्रकार की चोट और क्षति का इलाज केवल डाक्टर से ही करवाना चाहिए, चाहे चोट घर पर लगे, या दफ्तर में या अस्पताल में। यदि किसी चीज से शरीर का कोई अंग बहुत हल्का-सा कट गया है, या बहुत मामूली-सा जल गया है तो अपने-आप भी उसका इलाज किया जा सकता है। यदि किसी को फर्स्ट-एड की शिक्षा मिली है तो उस शिक्षा का प्रयोग करना चाहिए। याद रहे कि फर्स्ट-एड केवल प्राथमिक सहायता होती है। छोटी-मोटी चोट या दुर्घटना के अतिरिक्त हर मामले में फौरन डाक्टर की सहायता लेनी चाहिए।

कट जाने पर

यह करो	यह मत करो
१. यदि बहुत जरा-सा कटा है तो शरीर के उस भाग को साबुन और साफ पानी से धो डालो और उस पर साफ कपड़े की पट्टी बाँध लो।	१. यदि बहुत छोटा है तो [illegible] एन्टीसेप्टिक औषधियों प्रयोग न करो। ताजी टिन्चर आयोडीन या [illegible] प्रयोग किया जा सकता है। [illegible] साफ पानी से धोने से [illegible] नहीं रह जाता।
२. यदि बहुत-ज्यादा कट गया है तो [illegible] अस्पताल में प्रयोग की जाने वाली	

यह करो

कपड़े की जाली रखकर जोर से दबाओ ताकि खून बहना बन्द हो जाय, और घाव में इसी दशा में रखकर डाक्टर की प्रतीक्षा करो।

यह मत करो

२. यदि जख्म बहुत बड़ा है तो कपड़े की जाली से ढकने के अलावा कुछ न करो; खून बन्द करने का प्रयत्न करो; बाकी सब-कुछ डाक्टर स्वयं कर लेगा।

खुले हुए जख्म

यह करो

१. यदि खून बहुत नहीं बह रहा है तो जख्म के ठीक ऊपर दबाकर जख्म से खून निकालने का प्रयत्न करो। यदि हाथ या पैर की उँगली में जख्म है तो उसे मरोड़कर या दूध दुहने की भाँति निचोड़कर खून निकालो।

२. डाक्टर से पूछ लो कि जहरबाद को मारने वाली दवा (Tetanus anti-toxin) देने की जरूरत तो नहीं है।

यह मत करो

१. खुले हुए जख्म को पट्टी से बाँधकर बंद करने का प्रयत्न न करो, न उस पर चिपकने वाला फाहा या कोई अन्य चीज लगाओ। डाक्टर के आने तक कपड़े की जाली कीटनाशक दवा में भिगोकर रखी जा सकती है।

२. यदि बच्चे को पहले किसी सेरम का इंजेक्शन दिया गया है तो डाक्टर को उसकी सूचना देना मत भूलो।

खून बहना

यह करो

१. यदि हाथ या पाँव की किसी रग से खून बह रहा है तो उससे सम्बन्धित दबाव-बिन्दु (प्रेशर प्वाइन्ट) को दबाओ। यदि दबाव-बिन्दु न मालूम हो तो हाथ या पाँव के ऊपर कसकर पट्टी का बन्धन बाँध दो। डाक्टर को फौरन बुलवा लो।

२. यदि शरीर के किसी और भाग से खून निकल रहा है तो उस पर साफ जाली की मोटी-सी गद्दी रखकर ढक दो या साफ तौलिया डालकर जोर से दबाए रखो। डाक्टर को फौरन बुलवा लो।

यह मत करो

१. पट्टी १५ मिनट से अधिक मत बाँधे रखो। १५ मिनट के बाद २ मिनट के लिए पट्टी खोल दो और यदि आवश्यकता हो तो फिर कसकर बाँध दो।

जल जाना

यह करो

१. यदि हल्का-सा जल गया है तो साफ कपड़े के फाहे पर तेल-रहित

यह मत करो

१. जले हुए स्थान पर तेल या चिकनाई-युक्त चीजों का प्रयोग न करो।

यह करो

मलहम या खाने वाले सोडे का पानी में लेप बनाकर जले हुए स्थान पर रख दो।

२. यदि बहुत ज्यादा जल गया है और शरीर-भर में जलने के चिह्न हैं तो बच्चे को एक साफ चादर से लपेटकर उसे कम्बल में लपेट लो और उसे अस्पताल या डाक्टर के पास ले जाओ।

यह मत करो

जले हुए स्थान पर रुई मत रखो।

२. जल जाने को मामूली बात समझकर टाल मत जाओ।

हड्डी टूट जाना

१. उस अंग को हिलने-डुलने से रोकने के लिए उस पर एक खपाच बाँध दो। सबसे आसान तरीका यह है कि उस अंग को तकिए पर रखकर बाँध दो। [illegible] देने के लिए उस अंग के नीचे एक तकिया लगा दो और यह देख लो कि तकिया इतना लम्बा है कि हड्डी टूटने के स्थान के दोनों तरफ के जोड़ उस तकिए पर रहें। फिर तकिए को मोड़कर अंग पर लपेट दो और ३-३ या ४-४ इंच के अन्तर पर कसकर बंधन बाँध दो।

२. यदि हड्डी टूटकर खाल के बाहर निकल आई है तो हड्डी और जख्म पर साफ कपड़ा डाल दो। टूटे हुए अंग को तकिए से बाँधकर सीधा रखो और बच्चे को डाक्टर के पास ले जाओ।

१. यदि हड्डी टूटने का सन्देह है तो बच्चे को चलने न दो या हाथ न हिलाने दो।

२. खपाच या पट्टी को बहुत कसकर मत बाँधो। इतना ढीला छोड़ो कि अंग को सूजने का मौका मिले। [illegible] और खपाच के बीच [illegible] दो।

३. यदि हड्डी टूटकर बाहर निकल आई हो तो उसे हिलाने का प्रयत्न न करो। जख्म पर [illegible] या कोई दूसरी चीज मत लगाओ। घाव पर केवल साफ कपड़ा डाल दो, [illegible] डाक्टर स्वयं कर लेगा।

खाने के साथ विष प्रवेश कर जाना

१. गर्म पानी में नमक घोलकर या किसी अन्य साधन से बार बार कै कराओ।

२. यदि तीन-चार गिलास साबुन

१. [illegible] पानी [illegible] घबराओ नहीं।

२. [illegible]